

विज्ञापन—
मुकुन्ददाम पुत्र एण्ड कंपनी,
बदायन सिटी ।



उत्पादक—
श्री १० कल्याणदास एण्ड. भाग्यशंकर,
कल्याणदास केका एण्ड कल्याणदास, बदायन

मुद्रक—
उत्पादक एण्ड कल्याणदास—
मिलनदास केका,
बदायन सिटी ।

समर्पण

केशवजी,

आपकी वस्तु आपही को देना, यही तो 'दीन' से हो ही सकता है। अन्य कोई वस्तु 'दीन' लावेगा कहाँ से, जो देगा। समय के फेर से तुम्हारी यह कीर्ति कुछ मैली सी हो रही थी। मुझसे देखा नहीं गया, अपने काव्य-ज्ञान के गंदे साबुन से उसने घोने का आडम्बर रच बैठा। मैं तो आडम्बर ही समझता हूँ। पर यदि कुछ सफाई आ गई हो तो काव्यरसिक जन या आप जानें। मैंने आपका दामन इसलिये पकटा है कि आपके नाम की बढ़ोल्त संभव है मुझे भी कुछ सुयथा प्राप्त हो जाय, क्योंकि दुधेष्टिर के गुणगान के प्रसंग में उनके कुत्ते का भी नाम यदा कदा लोग लेते ही हैं।

चाहे आप स्वीकार करें या न करें, पर मैं तो आप को ही इस वस्तु के योग्य समझता हूँ। इस समय न तो कोई रामसिंह ही दिखाई देता है और न इन्द्रजीत ही नजर आता है, फिर इस टीका को समर्पित कैसे करूँ।

आप सदेह तो इस संसार में नहीं हैं, पर यशमयं निर्मल देह से आप सदैव हिन्दी-साहित्य-संसार में ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। आपके उसी रूप को मैं यह टीका समर्पित करता हूँ और विनयपूर्वक आप्रह करता हूँ कि स्वीकार कीजिये। यहानेवाजी या टालमट्टल भी मुझसे न चल सकेगी, क्योंकि स्वीकृति वा अस्वीकृति का अनुमान स्वयं मेरे मनके अनुभव करने की बात है। यदि वर्तमान काल के साहित्य-सेवियों तथा आपके प्रेमियों ने इसे अपनाया तो मैं जानदूँगा कि आपने स्वीकार कर लिया है, और न अपनाया तो अस्वीकृति प्रत्यक्ष है। पर मुझे दोनों दशाओं में संतोष ही होगा। स्वीकृति हो या न हो मुझे तो इस विचार से संतोष होगा कि मैंने अपने परिश्रम का फल एक उपयुक्त व्यक्ति को समर्पित किया है, किसी बेकदरे को नहीं।

काशी ।

श्रीरामनवमी सं० १९८० वि०

विनीत-

'दीन'



वक्तव्य

(जीवनी)

कवि का परिचय उसकी कृति से ही होता है। वह कहाँ का निवासी था, किस वंश का था, किसका पुत्र था, कब पैदा हुआ, किसके यहाँ रहता था, कब मरा, कितने पुत्र छोड़ गया इत्यादि बातें मालूम हुईं, तो क्या ? और अज्ञात रहीं तो क्या ? इन बातों से उसकी कृति पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। कालिदास, तुलसीदास, और विविध अन्य कवियों के बारे में इन बातों की अबतक खोज होती ही जाती है, पर क्या बिना इनके जाने उनकी कविता का कुछ बिगड़ गया ? कदापि नहीं। केशवदास का इस प्रकार का परिचय उनके ग्रन्थों में काफी है। इसके सिवा मिश्रबंधु महोदयों ने 'हिन्दी नवरात' में बहुत कुछ लिखा है। जिन्हे इन बातों के जानने का शौक हो, वे वहाँ से जान लें। हम यहाँ केवल इसी ग्रंथ के आधार पर केशव के विषय में सिर्फ़ वेही बातें कहना चाहते हैं जिनसे उनका निर्मल कविरूप आंखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई दे।

(हमारा मत)

इस पुस्तक को गौरि से पढ़ने से केशव जी केवल कवि ही नहीं, वरन् काव्याचार्य के रूप में सामने आते हैं। पहले ही प्रकाश में छंद नं० ८ से लेकर नं० १६ तक ऐसे छंद लिखे हैं, मानो किसी शिष्य को सिखलाने के लिये एकाक्षरी छंद से लेकर क्रमशः अष्टाक्षरी छंद तक के उदाहरण लिख रहे हों। वर्णिक छंदों की भरमार से भी यही बात प्रमाणित होती है कि मानो उनको इस बात का बड़ा ध्यान था कि विविध प्रकार के छंदों के उदाहरण प्रस्तुत कर देना ही चाहिये। अलंकारों की भरमार से जान पड़ता है, मानो उन्हें यह ध्यान था कि सब प्रकार के अलंकारों के उदाहरण हमारी पुस्तक में होने ही चाहिये। केवल यही नहीं, वरन् काव्य दोषों के उदाहरण भी जहाँ तहाँ जान बूझकर प्रस्तुत किये से जान पड़ते हैं।

(अलंकारिकता)

केशव आचार्य होने के कारण अलंकार के षडे शौकीन थे। उत्प्रेक्षा, रूपक, और परिसंख्या के तो भक्त ही जान पड़ते हैं। संदेह और श्लेष की भी भरमार है, पर देव और दीन-दयाल की तरह यमक और अनुप्रास की षड़ी रूचि न रखते थे।

(विशेष शब्दों का प्रयोग)

'सुख' शब्द का प्रयोग इन्होंने बहुधा 'सहज' के अर्थ में किया है, और 'जू' शब्द का व्यर्थ प्रयोग भी जहाँ तहाँ देखा जाता है। 'देवता' शब्द सदा स्त्रीलिंग में लिखा है। स्थों, गौरमदाइन और बहुत से अन्य शब्द और मुहावरों भी ठेठ बुंदेलखंडी पाये जाते हैं। यथास्थान इनका उल्लेख किया गया है।

(निवेदन)

स्वर्गीय पं० जानकीप्रसाद जी की टीका से मुझको षड़ी सहायता मिली है, अतः मैं उनकी स्वर्गीय आत्मा के सन्निकट अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सरदार कवि की टीका तलाश ही करता रहा पर मिल न सकी। तीन हस्त लिखित तथा दो छपो हुई प्रतियों के सहारे इसका पाठ शुद्ध किया गया है।

टीका के साथ छंदों के अलंकार भी दिखलाये गये हैं। यह मेरी अनधिकार चेष्टा है। इस सागर में से मैं सबही रत्न निकाल सका हूँ, ऐसा मेरा दावा नहीं। विद्वान लोग यदि कुछ बतलाने की कृपा करेंगे तो दूसरे संस्करण में सहर्ष सम्मिलित कर दूँगा। जिन छंदों के अलंकार नहीं लिखे उनमें मैं जान नहीं सका कि कौन अलंकार लिखूँ। कहीं २ अति सरल जान कर पुस्तक बढ़ने के भय से भावार्थ भी नहीं लिखा गया है। पूर्वार्द्ध में इतना ही हो सका है। यदि राम जी की कृपा ऐसी ही बनी रही तो इसके उत्तरार्द्ध की टीका में अलंकारों के अलावा लक्षणा, व्यंजना और ध्वनि इत्यादि के संबंध में भी

बुद्ध बुद्ध श्रावस्त्यां गच्छन्ति के सामने उपस्थित हो जायगी, जिसमें सर्वशक्तिविशेषों को बुद्ध नाम मान्य होगा ।

एतद्दीक्षा के सिद्धाने में पूर्व उपरोक्त दिशाया है काठिया-
वाड़ का नामाकरण 'मभीद' विद्यापीठ श्रीमान् डाक्टर
लेखकानिद आं मे, कला में इसका परम हस्त है ।
कलागर्भ की ही का नैवार हो रही है । संमन्त्रणः मागामी विद्यापा-
ठाली तद्वत् प्रवृत्तियं श्रावस्त्यां, आगे मर्यादा मॉलक की ।

काठियावाड़ी क्षेत्रोंकी कला के अनुसार ही ही ही ही
पूर्वका विद्यापीठ श्रीमान् डाक्टर मूर्तिदा मे ही उपरोक्त मद्रिद
कांश की मर्यादा को अनुभव करेगा में समझ नहीं करता ।
श्रीमान् मूर्तिदा मे ही ही मद्र ही है कि काठिया क्षेत्र मूर्तिदा
ही अनुभव अनुभव रूप देने है, ही ही क्षेत्र ही अनुभव ही
रहने है । मर्यादा मद्र मद्र ही का कद्र ही उपरोक्त । में
केवल ही अनुभव का कद्र ही का कद्र ही का कद्र ।

विद्यापीठ में विवेक दे कि मद्र मद्र को कद्र ही में
मुरुका ही ही मर्यादा मद्र ही मद्र विवेक ही कि में ही
एत मर्यादा मद्र ही कद्र मर्यादा मद्र ही मद्र मद्र ही
मर्यादा के मद्र में मद्र मर्यादा मद्र ही ही मद्र ही
मर्यादा मद्र ही

कांश मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही
मर्यादा मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही
मर्यादा मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही
मर्यादा मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही
मर्यादा मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही

काठिया } विद्या-
मर्यादा मद्र मद्र ही मद्र मद्र मद्र ही } मर्यादा मद्र मद्र ही

॥ श्रीः ॥

प्रस्तावना

“भाषाकाव्यरसासक्त—चकोरानन्ददायिनी ।

सन्मनोकुमुदोफुल्लकर्त्री, केशवकौमुदी ॥” (गोस्वामी)

सहृदय दीन ने मुझ सदीन को अदीन बनाने के लिये अपने साथ ही साथ इस भयानकाव्यर्त्तशताकुला केशव-काव्य-नदी में क्यों धर घसीटा, यह समझ में नहीं आता ! मुझसे यह कहा गया है कि, “इस ‘केशवकौमुदी’ पर कुछ लिख दो” । बस ! अच्छी बात है, मैं कुछ लिख देता हूँ, परन्तु मेरा विश्वास है कि मेरे इस कुछ लिख देने से सदाशय दीनजी के साथ ही साथ औरों को भी निराश ही होना पड़ेगा ! किन्तु यह क्यों ? बस इस “क्यों ?” का उत्तर मेरी यह लटपटी लिखावट ही दे देगी ।

नीचे लिखा दोहा बहुनों के मुखसे सुना गया है कि—

“सूर सूर, तुलसी ससी, उद्दगन केशवदास ।

अवके कवि खद्योत-सम, जहँ तहँ करत प्रकास ॥”

इस दोहे का अर्थ स्पष्ट है । वास्तव में भाषा के कवियों में महात्मा सूरदास और महानुभाव तुलसीदास का वही स्थान है, जो संस्कृत में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि और भगवान् वेदव्यासजी का है । सच है, सूर सूर (सूर्य) ही हैं और तुलसी शशि (चन्द्रमा), कि जिन युगल मूर्ति ने काव्य-जगत् को अखण्ड रूप से प्रकाशित कर रक्खा है । यह तो सूर और तुलसी की बात हुई । अब उद्दगणसम केशवदास के विषय में यह वक्तव्य है कि आचार्य केशवदास

को दुरुपयोग में लाना का मैं उन्हें प्रयत्न करि ही नहीं।
 काल्य विपरीतकारिण का प्रथम आचार्य सम्प्रदाय है। इनका
 उद्देश्य ही विभागानुसार माना है। यही ही गणना है। जो
 भगवत् में काल्यव्यापककार सम्प्रदाय, दशकालकार घनत्रय,
 काल्यव्यापककार अपराधविधनाश और साहित्यद्वयकार
वैराग्य करिगणना है। इसका आद्य है और यह यह है
 कि इन्हीं विधियों में माना है सर्वप्रथम विधि मध्य लिख कर,
 और इनमें से विषय कर, माना है कांचो का मान्य
 सम्प्रदाय सुप्रदाय बना दिया। इसीसे इम कविसम्प्रदाय को
 "दुरुपयोग" कहना ही विभागानुसार इनका सममान करना
 है। इनके ही ही का उल्लास है यदि भाग्यफल के क्षण-
 काल्य विधियों के विषय में विचारों दिया जाय तो ही
 मरण है, यानु पूर्व-सुखी कीट केसाव से आरम्भ करके
 काल्यव्यापककार के साथ सह ऐसे ऐसे सुप्रदाय कभी-
 काल काल में देनी देनी कभी। काल्य रचना कर मरण है कि
 इन्हीं का ही अद्यतन करके माधुकर्यन चर्च सुधारण ही
 ही सुप्रदाय है। मरण यह ही का उल्लास में ही
 काल्य के उल्लास है।

काल्यव्यापककार केसावसागरी के ज्ञानि-उल्लासि के
 विषय में ही ही ही ही के अथवा से महत्त्व ही कर सुप्रदाय
 काल्य काल्य, काल्ये इस विषय में धीनुम विभागानु
 काल्यव्यापककार के ही ही ही ही के साथ "विन्दीमवास" में ही
 काल्य विभागानु ही ही ही ही कर काल्य पर ही काल्य
 काल्य वि वि वि वि का ही ही ही ही विभागानु काल्यव्यापक
 काल्य है।

काल्यव्यापककार के ही ही ही ही के ही ही ही ही के ही
 काल्यव्यापककार के ही ही ही ही के ही ही ही ही के ही

देखिये या कविप्रिया, अथवा रामचन्द्रिका,—बानन्द अनोखा ही पाइयेगा। यहाँ पर मैं रसिकप्रिया या कविप्रिया के विषय में कुछ न कह कर प्रसङ्गवशात् केवल रामचन्द्रिका के विषय में धीयुत् मिथयन्धुक्त हिन्दी नवरत्न में से घन्यवाद पूर्वक कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किये देता हूँ। आशा है कि सहृदय काव्य-कुशलजन उतनेहीसे परम सन्तोष प्राप्त कर लेंगे।

“रामचन्द्रिका को केशवदास ने सं० १६५८ वि० में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंहजी ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है। केशवदासजी ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरंभ किया है। इन्होंने रामकी बाल-लीला बिल्कुल नहीं कही। केशवदास को वाल्मीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया था। उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्टदेव माना। विश्वामित्र के अयोध्या प्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जाना जाता है कि राजाओं की सभा कैसी होती थी। तुलसीदासजी ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है। परन्तु केशवदासजी नित्य सभाएँ देखते थे, सो वह सभे गलती कैसे करते? इन्होंने विमति से सीता-स्वयं-वरमें एक शंका उठाई है, परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

‘शवण, बाण महानली जानत सब संसार।

जो दोऊ धनु कर्षि हैं, ताको कहाँ विचार ! ॥’

यह शंका उठानी न चाहिए थी, क्योंकि जो व्यक्ति पहले नुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जानकीजी उसीको व्याहृत जाती और प्रणपूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे चाहे सैकड़ों

को उद्गुणनमन न ममम् कर म उम्हें प्रधान कवि ही नहीं, वरन् हिन्दी-साहित्य का प्रथम भाषार्थ समझता हूँ। इनका स्थान मेरे विचारानुसार भाषा में यही हो सकता है, जो संस्कृत में काव्यप्रकाशकार मम्मट, दशरूपककार घनञ्जय, रसतंगापरकार जगन्नाथ पण्डितराज और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराजका है। इसका कारण है और वह यह है कि इन्हीं कविवर ने भाषा में सर्वप्रथम रीति ग्रन्थ लिख कर, और उद्योगता से लिख कर, भाषा के कवियों का मार्ग प्रशस्त सुगम बना दिया। इसलिये इन कविसम्राट् को "उद्गुणनमन" कहना मेरे विचारानुसार इनका अपमान करना है। उपर्युक्त दोहों का उल्लास यदि भाजकल के क्षण-उन्मा कवियों के विषय में चरितार्थ किया जाय तो ही सकता है, वरन्तु सुर-गुलर्सी और केदार से आरम्भ करके मारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल तक ऐसे ऐसे घुरघुर कवी-हर भाषा में ऐसी ऐसी मजूरी काव्य रचना कर गए हैं कि इनके रस का अनुभव करके मायुकुञ्ज स्वर्ग-नुषारस को भी तुच्छ समझने हैं। अतएव उक्त दोहों का उल्लास मेरी समझ से प्रत्यामन्य है।

कवि-गुल-गौरव केदारदासजी के आति-उन्मादि के दिग्गज में मैं भी शीतली के कथन से सहमत होकर कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि उस विषय में श्रेष्ठ मिथवन्धु महाशयों ने बड़ी योज-हूँद के साथ 'हिन्दी नवरत्न' में बहुत मर्यादा विवेचन किया है। हाँ, एक बात यहाँ पर मैं अवश्य कहूँगा कि केदार का यह मंत्रपत्र निरामृत कवि-कल्याण-प्रद है।

महाशय केदारदासजी के चारों ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं। तर्जनी एवं दिहातगीता को उंगु कर चारों पल्लविया

देसिये या कविप्रिया, अथवा रामचन्द्रिका,—आनन्द अनोखा ही पाइयेगा। यहाँ पर मैं रसिकाप्रिया या कविप्रिया के विषय में कुछ न कह कर प्रसङ्गवशात् फेरल रामचन्द्रिका के विषय में श्रीयुक्त मिश्रवन्द्युक्त हिन्दी नवरत्न में से धन्यवाद पूर्वक कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किये देता हूँ। आशा है कि सहृदय काव्य-कुशलजन उत्तनेहीसे परम सन्तोष प्राप्त कर लेंगे।

‘रामचन्द्रिका को केशवदास ने सं० १६५८ वि० में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंहजी ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है। केशवदासजी ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरंभ किया है। इन्होंने रामकी बाल-लीला बिल्कुल नहीं कही। केशवदास को घावमीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया था। उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्टदेव माना। विश्वामित्र के अयोध्या प्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जाना जाता है कि राजाओं की सभा कैसी होती थी। तुलसीदासजी ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है। परन्तु केशवदासजी नित्य सभाएँ देखते थे, सो वह इसमें गलती कैसे करते? इन्होंने विमलि से सीता-स्वयं-वर्षमें एक शंका उठाई है, परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

‘रावण, बाण महानली जानत सब संसार।

जो बोक धनु कर्षि हैं, ताको फहाँ विचार ? ॥’

यह शंका उठानी न चाहिए थी, क्योंकि जो व्यक्ति पहले धनुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जातकीजी उसीको प्याहरी जाती और प्रणपूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे साहेबैकड़ों

मनुष्य धनुष बढ़ाया करने, परन्तु उनसे और राजा जनक के प्रण से कोई सम्बन्ध न होता। रावण के धनुष न उठा सकने पर उसका बाण से-यह यहाँना करना कि "मैं तो इसे आजमा चुका और पल भर में उठा लूँगा, अब कुछ भाव भी तो कर दिखाएँ" बढ़ा ही उत्तम है। वैसेही बाण का बढ़ाना भी देखने योग्य है। केशवदासजी कथा के अमुख्य वर्णनों के लिए न ठहर कर, तुरन्त मुख्य कथा का वर्णन करने लगते हैं, यह इनमें बढ़ा गुण है। इन्होंने ज्योतिरमें गाली बढ़ाही उत्तम गवाई है, और परशुराम व रामके झगड़ेके समय महादेव को बुला कर मरुटा निघटेरा करा दिया। और जब मरुत राम को घन से काने गये थे, उस समय मरुत को मागीन्धीजी से समझवा दिया। यह भी झगड़ा निघटाने का मरुटा हंग है। यद्यपि इस स्थान पर तुलसीदासजी का काव्य अपूर्व भावम्ब देता है। केशवदास ने विमोचन की कठोर चार्ना पर रावण को झुद्ध कराया है। जब भंगद रावण से बसोही करने गया था, तो उस समय रावण ने उसे मिला मने का पूरा प्रयत्न किया। रावण के सोझामों का बढ़ा उत्तम परिचय दिया गया है। जब रावण ने कुम्भकरण से कठोर चान कही, उस समय मन्दीरि ने अपने तीनों सङ्घों का पुकार कर कहा कि तुम्हारे पिता प्रियों ने मिदने हैं, तुम उन्हें क्यों नहीं समझाते? इनके पीछे उनमें कुम्भकरण की प्रशंसा की। मन्दीरि का चारों से डर कर विशाला में मागना और भंगद का उसकी दुर्गति हानो और तब रावण का वह छोड देना परम श्यामाधिक है। इन सब वर्णनों की उत्तमता देख कर केशवदास की अपूर्व कविशक्ति की अग्रणी भाव, घोंड़ी है।

रामचन्द्रिका ग्रंथ भाषा-काव्य का शृंगार है। ऐसी रोचक ग्रंथ भाषा-साहित्य में सिधा तुलसीकृत रामायण के एक भी नहीं है। इस ग्रंथ में यद्यपि गणनामें कविप्रियासे उत्तम छन्द अधिक नहीं है, परन्तु इसमें एक उत्तम कथा भी वर्णित है, इसी कारण इसकी रोचकता बहुत बढ़ गयी है। इसे एकबार उठा कर रामचन्द्र के लंका जीत कर अयोध्या लौटने तक बिना पढ़ लिए पुस्तक रखने का चिन्त नहीं चाहता। इस ग्रंथ में केशवदास छन्द इतनी शीघ्रता से बदलते गये हैं कि वे कहीं अलचिकर नहीं होते।”

बस, इससे अधिक जानने के लिये 'हिन्दीनगरन' का अवलोकन करना चाहिये।

अब मैं केशव-कौमुदी अर्थात् रामचन्द्रिका सटीक पूर्वा-र्ध के विषय में अपना निराला मत प्रकट करता हूँ। जबकि हिन्दी-साहित्य-सेवा से माहेश आलस्यपुत्र जन एक वस से एटे हुए हैं, तब सदाशय लाला भगवानदीनजी कमर कसकर निरन्तर बहुत कुछ किया करते हैं। यह बड़े ही सन्तोषकी बात है। मेरे विचार से रामचन्द्रिका पूर्वाधकी टीका बहुत अच्छी हुई है, और मेरा अनुरोध है कि सहृदय दीनजी इसका उत्तरार्ध भी शीघ्र ही सुलभ कर देंगे। इस (केशवकौमुदी) के गुणदोष का विवेचन तो सज्जन समालोचक ही मार्मिकता से कर सकेंगे और ऐसी ही आशा धारित लालाजी ने भी प्रकट की है। अतएव मैं इस गुणदोष-प्रदर्शन के शगङ्गे में न पड़ कर केषल इतनाही कह देना बलम् समझता हूँ कि मेरे विचारानुसार टीका अच्छी हुई है। इसमें दोषों का रहना कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि दोष-मय तो यह संसार ही है, परन्तु मेरे लिये सब गुण ही गुण हैं। यहां तक कि मुझे तो दोष भी गुण ही दिखाई देते हैं।

इस विषय में एक मार्मिक कवि का यह कथन बहुत ही उप-
युक्त जान पड़ता है कि—

“गुणायन्ते दोषाः मुञ्जनवदने, दुर्वनमुखे,
गुणा दोषायन्ते, तदिदमपि नो विस्मयपदम् ।
यथा जीमूतोऽयं लवणजलधेर्वादि मधुरं,
कनी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुस्तद्वपरम् ॥”

मैंने इस कथन का कुछ यह अभिप्राय नहीं है कि धीयुन
आर्याजी की टीका सर्वथेय निर्दोष होगी । हाँ, दोष भी
हों, परन्तु यहाँ तो गुणमात्र का ग्रहणही स्वभाव-
मिथ है । क्योंकि जिन फूल से मधुकर रस लेता
है, तितली उसी में विष ग्रहण करती है और शालक जिस
फल का रुच पात्र करता है, उसीमें यदि अंक लगा दी
जाय तो वह दधिर का ही पात्र करती । अतएव मैं केवल
गुणमात्र का आत्मन् लेकर दोषोद्घाटन का काम कुछ समा-
प्तियों के लिये छोड़ देता हूँ ।

अन्त में कुवलयामन्दार की इन मन्त्री उल्लि की
उद्धृत करके अपने कथन को मैं मधुरेण समाप्त करता हूँ ।

“गुणदोषौ बुधो गृह्णात्किन्दुश्चेद्भाविविन्धरः ।

शिरसा क्षापते पूरं परं दृष्टे नियच्छति ॥”

मलमतिविस्तरेण ।

रसिकानुगापी,

किशोरीबालगोस्वामी

प्रकाशक के दो शब्द

हिन्दी-साहित्य-संसार में कविवर केशवदासजी का जो स्थान है तथा उनकी रचनाओं में रामचन्द्रिका का जो सम्मान है, वह हिन्दी-भाषा-भाषियों से अविदित नहीं। अपने महत्त्व और उत्कर्ष के ही कारण इस ग्रन्थने हिन्दी-साहित्य की प्रायः सभी ऊँची परीक्षाओं के पाठ्य-ग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान पाया है और इस कारण से ही हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में इसकी कई टीकाएँ विद्यमान हैं। किन्तु खेद है कि ये सभी टीकाएँ, पुरानी ढंग की और ब्रजभाषा में होने के कारण, विद्यार्थियों और साधारण पाठकों को केशवकी कविता का असली मजा चखाने में असमर्थ-सी हैं।

इसी कमी की शीघ्र पूर्ति करने के लिए, हमारे पास हिन्दी-साहित्यके लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों और साहित्य-प्रेमियों के अनेक आग्रह-सुचक पत्र तभी से आरहें हैं जब से इस ग्रन्थ-माला के प्रथम पुष्प, बिहारी बोधिनी का साहित्य-क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। इस कारण से ही अन्यान्य उत्तम ग्रंथों का प्रकाशन रोककर प्रस्तुत टीका इतनी शीघ्रताके साथ प्रकाशित करके आपलोगों के सम्मुख लायी गयी है। इस बात पर प्रायः सभी किसीने जोर दिया है कि टीका शुद्ध पाठ-सहित, सरल, सुबोध तथा इस ढंग की होनी चाहिये जो साहित्य-सम्मेलन आदिकी परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिये अधिक उपयोगी हो और जिसमें पुस्तक में समाविष्ट सभी ज्ञातव्य बातों का पुरा विवेचन और स्पष्ट व्याख्या हो।

प्रस्तुत टीका में उपर्युक्त गुण आये हैं या नहीं, व केशव-काव्य-सुधा-पिपासुओं की कुछ भी व्यास बुझा सके या नहीं, इसकी परीक्षा काव्य-मर्मज्ञ जन स्वयं करें। इस पर हमें कुछ बक्तव्य नहीं। यदि टीका प्रस्तुत करने के लिये उपयोगी-प्रतीत हुई, और यदि इससे 'कठिन

के प्रेम' केशव को समझने में साधारण पाठकों को कुछ भी विशेष सहायता मिली तो हम अपना प्रयत्न और टीकाकार की इनने दिनों की साहित्य-सेवा सफल समझेंगे।

उनका प्रथम कारण है पुस्तक का अतिशीघ्र मुद्रण और इतना प्रेमपाठों की कृपा। अगले संस्करणमें ये अनुसूचियाँ भी सुधार दी जाएँगी। १४० वें पृष्ठ में एक अनुसूचि यह रह गयी है कि उस पृष्ठ की १८ वीं पंक्ति बाइकी पंक्ति, मूलसे, १४१वें पृष्ठक यादि में रख दी गयी है। शिवा पाठकगण कृपया इसे सुधार लें। पुस्तक का उत्तरार्द्ध भी, जिसमें पूर्वांश की विशेषताओं के अतिरिक्त लक्षणा, व्यञ्जना और ध्वनि इत्यादि विषयों का भी विवेचन रहेगा, यथासाध्य शीघ्र प्रकाशित होगा।

मालाके द्वितीय प्रन्थारम्भमें हमका उद्देश्य बनलाने हुए हमने स्थिरमात्रक-संख्या बढ़ाने के लिये हिन्दी हितैषियों से एक अनुरोध की थी। हमें है कि उस अनुरोधका अच्छा प्रभाव पड़ा और उसके उत्तर में बहुत से सज्जनों ने नाम लिखा। फिर भी, वर्तमान संख्या किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं करी जा सकती। अतएव मालुमावानुरागियों से पुनः प्रार्थना है कि यदि वे प्रार्थना सुकवियों की सुधाप्रयी धार्या का समास्थापन करना चाहते हों, यदि वे मञ्जमायाकी प्रहृत माधुर्य का मञ्जु साधना चाहते हों, यदि वे आधुनिक कवियों और सुन्दरों के साद्वितीय प्रन्थ-रत्नों का अग्र शोचन करना चाहते हों, तो प्रार्थना ॥) प्रवेश-मुद्रक में, कृपाया-मात्रक-धर्या में नाम लिखाकर हमारे उत्साह और गौरव का प्रदर्श।

२ (सरस्वती वंदना)

मूल—(दंडक) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहौ धौ उदार यौन की गई । देवता प्रोसद्ध सिद्ध ऋषिगज तपवृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न कहें लई । भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है, केशोदास कहु ना बखानी काहु पै गई । वर्षे पाते चार मुख पूत वर्षे पांच मुख नाती वर्षे पटमुख तदपि नई नई ॥ २ ॥

शब्दार्थ—बानी=सरस्वती । उदारता=दातारपन, फैयाजी । उदार=बड़ी । महान् । हारे=थके । भावी=भविष्य । भूत=गत, गुजरा हुआ । वर्तमान्=मौजूद । तदपि=तोभी ।

भावार्थ—कहो तो भला ऐसी बड़ी बुद्धि किसकी हुई है जिससे संसार की रानी श्री सरस्वतीजी की उदारता कही जाय (अर्थात् ऐसी बुद्धि किसी की नहीं कि सरस्वतीजी की पूर्ण प्रशंसा कर सके) । देवता, गणेश्वर सिद्ध, बड़े बड़े ऋषि, और बड़े बड़े तपस्वी लोग कह कह कर थक गये, पर किसी ने पूरी न कह पाई । भूतकाल के संसारी लोग कह गये, वर्तमान् काल के कह रहे हैं और भविष्य काल के कहेंगे तौगी (केशोदास कहते हैं) पूरी प्रशंसा न हुई और न हो सकेगी । (लौकिक वा अन्य लोगों की तो बात ही क्या स्वयं उनके तर्वाभी जो उनकी उदारता की भली भाँति जान सकते हैं) पति (ब्रह्मा) चार उरते, पुत्र (महादेव) पाँच मुखे, और नाती (यज्ञानन) छः मुख से वर्णन करते हैं तो भी

मन्त्रार्थ—जैसे हाथी का बच्चा सब फाल में (हर एक दशा में) कमलनाल को तोड़ डालता है वैसे ही श्री गणेशजी अकाठ के बड़े बड़े और फाटन और (कराल) मयंकुल दुःखों को तोड़ डालते हैं । (और) विपत्ति को, कठघंके, पुरान के पत्तों के समान (हरत) खींचकर तोड़ डालते हैं, और पाप को दबा कर पाताल को भेज देते हैं । (और) अग्ने शम के शरीर से, कलंक का चिह्न दूर करके, मित्र के मन्त्र पर रहने वाले चंद्रमा के समान (कलंक रहित और बंदनीय) कम्के उसकी (सदैव) रक्षा करते हैं । (और) मन्मुख होते ही संकट की बंजीरों को तोड़ देते हैं । (पेमा दुःख-निवारक, पाप-हारक, और दास-रक्षक संमश ४) दशो दिशाओं के लोग श्री गणेश जी का मुँह ताका करते हैं—अर्थात् कृपा के आकांक्षी रहते हैं ।

विशेष—गणेश को 'गजमुख' कहने के कारण उनके मुख कामों को हाथों के बच्चे के कामों के समान वर्धन किया । गणेश के आंशु से चंद्रमा कलंचित है, और गणेश के अनु-प्रद ही से केरट द्वितीया का चंद्रमा निःकलंक है । इस अक्षर में कोई कोई 'दशमुख' शब्द का अर्थ 'ब्रह्मा, विष्णु और शिव' ल्याते हैं—कभीक ये शिद्व निरुद्ध 'दशमुख' है, अर्थात् गण=काशुग, विष्णु=एकमुख, शिव=पंचमुख ।
अकार-उत्ता, परिश्रुग ।

x (सरस्वती वंदना)

मूल—(दंडक) यानी जगरानी की उदारता बतानी जाय ऐसी मति कहौ थी उदार कौन की भई । देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न कहि लई । भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है, केशोदास कह ना बखानी काहू पै गई । वर्ण पाते, चार मुख पूत वर्ण पाच मुख नाती वर्ण पटमुख तदापि नई नई ॥ २ ॥

शब्दार्थ—रागी=सरस्वती । उदारता=दातारपन, फेराना । उदार=बड़ी । महान् । हारे=थके । भावी=भविष्य । भूत=गत, गुजरा हुआ । वर्तमान=गौजूद । तदापि=तौभी ।

भावार्थ—कहो तो भला ऐसी बड़ी बुद्धि किसकी हुई है जिससे संसार की रानी श्री सरस्वतीजी की उदारता कहा जाय (अर्थात् ऐसी बुद्धि किसी की नहीं कि सरस्वतीजी की पूर्ण प्रशंसा कर सके) । देवता, मजहूर सिद्ध, बड़े बड़े ऋषि, और बड़े बड़े तपस्वी लोग कह कह कर थक गये, पर किसी ने पूरी न कह पाई । भूतकाल के संसारी लोग कह गये, वर्तमान काल के कह रहे हैं और भविष्य काल के कहेंगे तौभी (केशोदास कहते हैं) पूरी प्रशंसा न हुई और न हो सकी । (लौकिक या अन्य लोगों की तब बात ही क्या स्वर्ग के संदेही जो उनकी उदारता को भली भाँति जान सकते हैं) भक्ति (गाना) चार मुखसे, हुत्र (महादेव) पाँच मुख और नाती (पञ्चजन) छः मुख से ध्वनि करते हैं ।

कुछ न कुछ नवीन उदारता उनको कहने के लिये मिलती ही जाती है-अर्थात् वे भी पूर्णतया नहीं कह सकते, तब हम मनुष्यों की क्या गति है कि उनकी उदारता का कुछ भी वर्णन कर सकें।

अलंकार—मंत्रधात्रिगयोक्ति ।

(श्रीरामयोजना) ← -

मूल—(दंडक) पूरण पुराण अथ पुराण पुराण परिपूरण
 धार्यै न धार्यै और उक्ति को । दर्शन देत जिन्हें
 दर्शन ममुझे न नेति नेति कहै वेद छाँड़ि आन-युक्ति को ।
 आनि यह केशोदात्म अनुदिन राम राम रटत रहत न दारत
 पुनरुक्ति को । रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि मकि
 दाँद माहिमाहि नाम देहि मुक्ति को ॥ ३ ॥

शाब्दार्थ—पूरण=मपूर्ण, सब । परिपूरण=सब प्रकार
 पूर्ण । उक्ति=वाक्य, कथन । दर्शन=परिदृश्य । अनु-
 दिन=आज गेव, नित्य । पुनरुक्ति=दोबारा कहने का
 दोष । अनिमा=बहु सिद्धि त्रिमसे छोटे में छोटा रूप
 धारण किया वा सङ्घटा है । गरिमा=बहु सिद्धि त्रिमसे
 बज्जती में बड़नी जगैर धारण करने हैं । माहिमा=बहु
 सिद्धि त्रिमसे बड़ा में बड़ा रूप धर सकते हैं । मुक्ति=जीवन
 मरण में पृथक्ता ।

साधार्थ—एव पुण्य (मंत्र) और पुण्य लोग जिन्हें
 और कथन छेद सब प्रकार पूर्ण कहते हैं । (आज

मूल— मुनि)—नगस्वरूपिणी छंद—भलो बुरो न नू
गुने । वृथा कथा कहै सुने । न राम देव गाइहै । न देवलोक
पाइहै ॥ १६ ॥

भावार्थ—तू भला बुरा नहीं विचारता, व्यर्थ बातें कहा
सुना करता है । (यह बात निश्चयहै कि) जब तक राम
देव का गुण नहीं गावैगा, तबतक कदापि देवलोक (वैकुण्ठ)
की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

मूल—पद्यपद्य छंद—बोलि न बोल्यो बोल द्यो फिर ताहि
न दीन्हो । मारि न मारयो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हो ।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी । दान सत्य स-
न्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी । मन लोभ मोह मद काम
यश भये न केशवदास भणि । सोइ परब्रह्म श्री राम हँ अव-
तारी अवतारमणि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—मुरे=मुड़े, पीछे हटे । संग्राम=युद्ध ।
लीक=प्रशा, रीति । ओपी=प्रकाशित हैं । भणि=कहताहै ।
अवतारी=अवतार धारण किये हुए । अवतारमणि=ईश्वर के
सब अवतारों में श्रेष्ठ ।

भावार्थ—एकवार जो कुछ कह दिया, फिर दोबारा
उस विषय में कभी कुछ नहीं बोले (जो कुछ कहा सो कर
छाता । बचन का हेरफेर नहीं किया), जिसको एक बार
दिया उसे फिर कुछ नहीं दिया (पहली ही बार इतना दे
दिया कि दोबारा देने की जरूरत न रही) एक बार शत्रु को
मारकर दोबारा फिर नहीं मारा (पहली बार में उसका शत्रु

हैं तथापि तेरे समझने के लिये) हम उस हरि का माहात्म्य अक्षरों (शब्दों) द्वारा वर्णन करेंगे । वह हरि संसार के लिये रक्षा का स्थान है ।

मूल—प्रिया छंद—सुखछंद हैं । रघुनंदजू ॥

अग्यो कहे । जगबंदजू ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—छंद=मूल, जड़ । रघुनंद=रामचंद्र ।

भावार्थ—संसार तो यों कहता है कि श्रीरामचंद्र नू मुम के मूल कारण हैं और संसार मर से बंदना किये जाने योग्य है ।

मूल—सोमराजो छंद—गुनो एक रूपी, सुनो वेदगाथें ।

महादेव जाघो, सदा चिच लावें ॥ १४ ॥

भावार्थ—मरल है ।

मूल—कृमारटलितो छंद—विरांचि गुण देसै । गिरा गुणान लेसै । अनंत मुख गावै । विशेषहि न पावै ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—विरांचि=ब्रह्मा । गिरा=सरस्वती । अनंत=शेषनाग । विशेष=निर्णय, निश्चय ।

भावार्थ—ब्रह्मा तिमके गुणों को देखा करते हैं (पर पूर्णतया कह नहीं सकते) सरस्वती तिमके गुणों का लेखा किया करती है (पर टीका गणना नहीं बना सकती) शेष नाग तिमके गुणों को दृष्ट कर मुख से कहा करते हैं तो भी अत नै निश्चय नहीं कर सकते कि उनके गुण कितने हैं ।

अलंकार—संबन्धविशयोक्ति

नेत्र भौरे का सा आचरण करते हैं (जैसे भौरा कमल पर आसक्त होता है वैसेही केशव की बुद्धि रामचरणों पर प्रेम करती है) ।

अलंकार—रूपक ।

मूल—चतुष्पदी छंद *—

जिनको यशहंसा, जगत प्रशंसा; मुनिजनमानस रंता ।
लोचन अनुरूपनि श्यामस्वरूपनि अंजन अंजित संता ॥
कालत्रयदर्शी निर्गुण—परशी होत विलंब न लाने ।
जिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागे ॥२०॥

शब्दार्थ—मानस=(१) मन (२) मानसरोवर ।
रंता=अनुरक्त, प्रेमी । अनुरूप=योग्य, मौजूं । अंजित=अंजन लगाकर । पुरातन=प्राचीन ।

भावार्थ—(मुनि का उपदेश सुनकर केशव की प्रतिज्ञा)
जिनके यशरूपी हंस की संसार भर में बड़ाई होती है,
जो यशरूपी हंस मुनियों के मनरूपी मानसरोवर से प्रेमरखता
है, और जिनके श्यामस्वरूप रूपी अंजन को अपने नेत्रों के
अनुसार आंखों में आजकर संतलोग त्रिकालदर्शी और निर्गुण-
प्राप्त की स्पर्श करनेवाले (सायुज्यमुक्तिलब्ध) होजाते हैं, में
वन्ही रामके गुण कहूंगा जिससे सब सुख पाऊंगा और
प्राचीन (अनेकजन्मों के संजित) पाप छूट जायेंगे ।

अलंकार—रूपक ।

(इति प्रस्तावना)

(अथ कथारम्भः)

मूल—दोहा—जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छन्द ।
राम चन्द्रकी चन्द्रिका वर्णतहाँ बहु छन्द ॥२१॥

शब्दार्थ—ज्योति=प्रकाश, रोशनी । एकरूप=सर्वदा एकही । स्वच्छन्द=बिना किसीके सहारे । चन्द्रिका=चौदनी, जोह ।

भावार्थ—जिमकी रोशनी मदा एकसी और बिना किसी के सहारेके (जैसे इस हमारे चन्द्रमा की रोशनी सूर्य के सहारे पर निर्भरहै, ऐसी नहीं) सारे संसार में जगमगाती है, उम राम रूपी चंद्रमा की चादनी (कीर्ति, यश) का अब मैं अनेक प्रकार के छन्दों में वर्णनकरता हूं ।

मूल—दोहा छन्द—शुभ सृज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति ।
तिनके सुत भये चाटि चतुर चित चारु पाव मति । रामचन्द्र भुवचन्द्र भरत भारत-भुव भूषण ।
शशमन अट शत्रुप दीद दानध-दल-दूषण ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—शशमन=शिरोमणि । चारु=सुन्दर, पवित्र । भुव चन्द्र=सूर्यके चन्द्रमा । भारत-भुव=भारतवर्ष, हिंदुस्तान । दीद=दीप, बड़ा । दूषण=विनाशक, संहारक ।

भावार्थ—अच्छे सूर्यवंश के शिरोमणि राजा दशरथ जब गंगा हुए, तब उनके चार पुत्र हुए जो बड़े चतुर, शुद्ध चित और अच्छी मति वाले थे । श्री रामचन्द्रजी तो हम

पृथ्वी के चन्द्रमा ही थे, भरत जो इस भारत वर्ष के मूषण थे और लक्ष्मण और शत्रुघ्न जो दानवों के बड़े बड़े दलों को विनाश करने वाले थे ।

अन्तंकार-रूपक । x

मूल—धत्ता छन्द—सरजू सरिता तट नगर वसै वर, अवधनाम यशधाम धर । अधओध विनाशी सब पुरवासी, अमरलोक मानहु नगर ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—यशधाम=सुयश का घर, मशहूर, प्रसिद्ध । धर=धरा, पृथ्वी । अध=पाप । ओध=समूह ।

भावार्थ—सरजू नदी के तीर पर एक सुंदर नगर बसता था, जिसका नाम 'अवध' (अयोध्या) था । वह नगर पृथ्वी भर में प्रसिद्ध था (और है) । वहाँ के सब पुरवासी लोग पापों के समूह को नाश करनेवाले थे (पापकरते ही न थे) इसी कारण वह नगर देवलोकके समान था ।

(विश्वामित्र का अवधयागमन) x

मूल—छप्पय छन्द—गाधिराज को पुष साधि सब मित्र शत्रु बल । दान दूपान विधान पश्य कीन्हो भुवमण्डल । के मन अपने साधे जाति जग इन्द्रियमण जाति । तपपल पा ही देह भये क्षणियते क्षणियति । तेहि पुर प्रसिद्ध केजव सुमति काल अतीतागतनि शुनि । तहाँ अद्भुत गति, पशु धारियो विश्वामित्र पवित्र शुनि ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—साधि=अपने क्रावू में करके । दूपान विधान=दण्ड । पश्य=परीक्षित । जग=जन्मल । अतीतागतनि (अतीत-आगत-नि)=गतकर और आगत काल दोनों को ।

हाथी सरजू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अत्यंत पतितपावन है । बहुत जीव इसके जल में संप्रेम स्नान करके सब-यहां तक कि सुअर तक-सदेह स्वर्ग को जाते हैं ।

विशेष—इन दोनों छंदों में विरोधाभास अलंकार है । इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं ।
(राजा दशरथ के हाथियों का घर्षण)

✓ **मूल**—नषपदीछंद—जहाँ तहाँ लसत महा मदमत्त । वर वार न बलदत्त । अंग अंग चरचे अति चंदन । सुंदर देखिय बंदुन ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—वारन=हाथी । वार न=देर नहीं लगती । दलते हुए, मारने में । चरचे=लगाये पट्ट । मुक्के=हुरे । बंदन=सेदुर ।

भावार्थ—जहाँ तहाँ बड़े बड़े मदमाते हाथी (में बंधे हुए) शोभा देते हैं । वे ऐसे बली हाथी हैं कि की-सेना दलते हुए कुछ देर ही नहीं लगती । अंगों में चंदन लगा हुआ है । और सिरों पर सिंदूर हुआ देख पड़ता है ।

मूल—वा०—दीह दीह दिग्गजन के केशव दीन्हें ॥ दशरथहि दिग्पालन उर ॥

मति वाले (विश्वामित्र) ।

भावार्थ—सरल ही है

(सरजू का वर्णन)

मूल—प्रच्छटिका छंद--अति निपट कुटिल गति
यदपि आप । तड देत शुद्ध गति छुवत आप । फलु आपुन
अध अधगति चलति । फल पतितन कहँ ऊरध फलति ॥२६॥
मद-मत्त यदपि मातंग संग । अति तदपि पतित पावन
तरंग । बहु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह । सत्र जात स्वर्ग
सूकर सदेह ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—आप=स्वयं, खुद । आप=पानी, जल ।
आपुन=खुद । अध=नीचे (नीचे की ओर) । पतितन=पापियों ।
ऊरध=(ऊर्ध्व-) ऊंचा । मदमत्त=(१) मस्तक से बहते हुए
मदके कारण मत्त (२) शराब से मत्त । मातंग=(१) हाथो,
(२) चांडाल । सनेह=(१) सप्रेम (२) तैलयुक्त । सूकर=(१)
अच्छे काम करने वाले (२) सुअर । सदेह=शरीररहित ।

भावार्थ—यद्यपि आप स्वयं तो टेढ़ी चाल वाली है
(नदियों की टेढ़ी नैदी चाल होती ही है) तो भी अतिस
मे पानी छूत ही (सधे मात्र से) सधी गति (अच्छी
गति=स्वर्गवागइत्यादि) देती है । आप तो खुद नीचे की ओर
से चलती है (नदी नीचे का बहती है) परंतु पापियों को
उंचे जाने का फल देती है (देवलोक भेजती है) ।

यदि मद से मत्त हाथियों का संग रचती है (मद माते

दाही सरजू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अत्यंत पतिसपावन है । बहुत जीव इसके जल में संप्रम स्नान करके, राव-गद्दी तक कि सुअर तक-सदेह स्वर्ग को चले जाते हैं ।

विशेष—इन दोनों लहरों में विरोधाभास अलंकार है । इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं ।

(राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन)

मूल—नवपरींठर—जहं तहं लसत महा मदमत्त । वर वार मार न इलरत । भंग अग चरचे अति चंदन । मुंडन भुरके दोखिय बंदुन ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—वारन=हाथी । वार न=देर नहीं लगती । वर दलते हुए, मारने में । चरचे=हगाये एह । भुरके=छिड़क ३९ । बंदन=सेदुर ।

भावार्थ—जहाँ तहाँ बड़े बड़े मदमाने हाथी (राजशाल में बंधे हुए) शोभा देते हैं । वे ऐसे बली हाथी हैं जिन्हें सेना की सेना दलते हुए कुछ देर ही नहीं लगती । उनके सिरों में पंशन लगा हुआ है । और सिरों पर सिंदूर छिड़का गया पड़ता है ।

दीद विगगजन के केशव मतहुं कुमार ।

जिन्हें राजा दशरथहि विगपालन उपहार ॥२९

— बड़े । हुनार=पुत्र । उपहार=

भेंट, नजर ।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि वे हाथी बड़े बड़े हैं, जान पड़ता है कि वे दिग्गजों के लड़के हैं और दिक्पालों ने उन्हें राजा दशरथ को भेंट में दे डाला है ।

अलंकार-उत्प्रेक्षा ।

(वाग-वर्णन)

मूल—अरिल्लल्लंद—देसि वाग अनुराग उपल्लिय । घोळत फल ध्वनि कोकिल सज्जिय । राजति रति की सखी सुबेपनि । मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—फल=मनोहर, मधुर । सुबेपनि=सुन्दर भेस वाली । बहति=पहुँचाती है । मनमथ=कामदेव ।

भावार्थ—वाग को देखकर आपसे आप अनुराग पैदा होता है । मधुर ध्वनि से कोयल बोलती हुई शोभा दे रही है । (अपने सुन्दर भेस के कारण) रति की सखी भी जान पड़ती है, (और मधुर स्वर से) ऐसा जान पड़ता है मानो लोगों को काम का संघसा सुना रही है ।

विशेष—जिस समय विश्वामित्र अयोध्या में आये थे उस समय वसंत ऋतु न थी । परंतु यह काव्य-नियम है कि वाग के वर्णन में उसका ऐसा वर्णन किया जाता है मानो वसंत या वर्षा काल में देख-देख कर उसकी उदा वर्णन कर रहे हों, क्योंकि पत्नी दो ऋतुओं में वाग आटिकादि अपनी पूर्ण शोभा से संपन्न होते हैं ।

अलंकार-उत्प्रेक्षा ।

मूल—अरिल्लछन्द—फूलि फूलि तं क फूल बढ़ावत । मोदत
महा मोद उपजावत । उदत पराग न चित्त उड़ावत
अमर अमन नहि जीव अमावत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—फूल=हर्ष । मोदत=सुगंध फैलाते हुए । मोद=
मानंद । पराग=पुष्प-धूलि । उड़ावत=उड़ते हैं । अमावत=
फिरते हैं ।

भावार्थ—फूल फूल कर वृक्षगण बागमें सैर करनेवालों के
हर्ष को बढ़ाते हैं, और अपनी सुगंध फैला कर उनके हृदयमें
अत्यंत आनंद पैदा करने हैं । (यह) फूलों का पराग नहीं
उड़ाता है, वरन् लोगों के चित्त हैं जो उड़ रहे हैं । (वे
अमर नहीं हैं जो अमर रहे हैं वरन् लोगों के जीव हैं जो मृत
बनकर इधर उधर घूम रहे हैं ।

अलंकार-शुद्धापरवृत्ति ।

मूल—पादाकुलकछन्द—शुभसरसोमं । मुनि मन लोभै ।
सगमित फुले । अलि रस भूले ॥ ३२ ॥ जल चर डोले । वा
सग सोले । बरनि न जाही । उर परझाही ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सर=जाशय । सुसित्र=कमल । अलि=मोग
रस=रसदंड । जलचर=जल में रहने वाले जीव मछली इत्यादि ।

भावार्थ—(बाग के मध्य में) एक सुन्दर तालाब सोमा
दे गता है जो सुन्दरों के मन को भी सुमा लेता है । उसमें

मूल—चतुष्पदीछंद । पुनि गर्भसँयोगी रतिरस भोगी जग जन
 लीन फहावे । गुणि जगजन लीना नगर प्रवीना अति पति
 के मन भावे । अति पतिहि रमावे चित्त भ्रमावे सौतिन प्रेम
 प्रदावे । अब यौं दिनरातिन अद्भुत भातिन कविकुल कीरति
 गावे ॥ ३५ ॥

वदार्थ—रतिरस=(१) प्रेम (२) स्त्री-पुरुष संभोग सुख ।

ति=(१) मालिक, राजा । (२) स्वपति, अपना खाबंद ।

भावे=(१) चित्तको प्रसन्न करती है (२) संभोग सुख देती है ।

वदार्थ—वह फुलवारी फल गर्मा है और प्रेमी-जनों

सदा भरीरहती है—अर्थात् सब लोग वहाँ सैरकरने को

ते हैं । (कन्या पक्षमें-गर्भवती होने पर भी अनेक जग

के सम्भोग-सुख में लीन रहती है—यही विरोध है) ।

र के गुणीजन और नगर के प्रवीन लोग उस फुलवारी में

फिरते हैं और वह अपने मालिक (राजादशरथ) के मन

में खूब भाती है । (कन्या पक्षमें-संसार-भरके गुणियों

नगर निवासियों के प्रेम में लीन रहकर भी अपने

को प्यारी है—यही विरोध है) । राजा का चित्त इस फुल-

में बहुत रमता है वहाँ तक कि यह बाटिका राजा के

को डालती है—अर्थात् इस फुलवारी की उदीपक

राजा का मन कामवश होता है और वे

में प्रेमललाप करने लगते हैं, इसी

(इस फुलवारी पर

श्रीरामचन्द्रिका

बधा भोग कराती हैं और राजा समेत बार बार इस में भगण करने को जाती हैं—और इस प्रकार यह अपनी सौतिनों के चिप में भी प्रेम की मात्रा बढ़ाया है । (कन्या पक्ष में—पति को अपने में रमाना और का भोग बढ़ाना विरोध है) इसी प्रकार यह कुलवारी दिन अनुगुण कार्य किया करती है जिस से अनेक का मश गाया करते हैं ।

तीस—कालोक तरो व विभिन्नम भक्तकार है । अर्धम एत है । का महापत प्रकार एत है । एत एतौ तदी मे शब्दो की शक्ति, अर्थो ही विभक्ता और सराफा राजा केवतो के तिनो माननीय है ।

मूल—शौचोला चन्द्र—संग लिये अग्नि शिष्यन पायक से तपतेजनि सने । देखत पाग तद्गगन भले अधिपुरी कर्ते बले ॥ २६ ॥

पादार्थ—कविः (यहाँ पर) विश्वामित्रजी । घने—पायक—अग्नि । तप तेजनि सने—तप तेज मुक्त । भावार्थ—सख ही है ।

(अवध पुरी—नगर—वर्षान)

अथे अवास । एत एत
प्रकाश ॥ २७ ॥

नकर, पर ।

शोभा वि
पादार्थ—

और—

२२३

र वा होमि=शोभा ।

मा वाचार्थ—उंन उंन कं कं

ना वाचार्थ—पताकायें फहरा रही हैं अतः (पताकायें) शोभा का प्रकट का

ल—आभीर छन्द—अति सुन्दर
रहत पल आशु । परम योग्य
नी जानि ॥ ३८ ॥

वाचार्थ—साधु=सीधी, जो कि
दुःख न दे । तपोभव=तपस्विनी ।

वाचार्थ—(पताकायें कैसी हैं कि) अति
बहुत सीधी हैं । (परंतु) आधा पल

(उनके फुररे सदैव चलायमान रहते हैं)
हैं (क्योंकि एक पैसे रात दिन खड़ी रहती हैं)

धारण करने वाली भी हैं (दण्ड धारण करने वाली)
सिगों का चिह्न है । पताकाओंके बाँस दण्ड कहलाते हैं

अलंकार—विरोधाभास, साधु में चंचलता विरोध है ।

मूल—हरिगीत छन्द—शुभ द्रोण गिरि गण निज
पर उदित ओपधि सी गतौ । बहु वायु बरा वारिद यथा
जलीस दामिनि दुति मनौ । अति कियो सचिर प्रताप
यक प्रगट सुरपुर फो चली । यह कियो सरित सुदेश
करी दिवि सेलत भली ॥ ३९ ॥

वाचार्थ—गिरि=चोटी । ओपधि=जड़ी चूटी । वारिद
बल । बहुसहि=लौटा लेजाती हैं । सरित=नदी ।

य विधि क्षम वस्त

=डरते हैं, ईर्ष्या
। क्षम=योग्य ।

के बने हैं इ-
तें घात ही
यौंकि मुनि
करते हैं)

म होता
द्वार
माने
होते

बन
ही

सुन्दर । मेरी करी=मेरी बनाई हुई (विश्वामित्र कृत आकाश-गंगा) । दिवि=आकाश ।

भावार्थ—(अक्षरों के पताका-पट) अथवा द्रोणाक्षर पर्वत के शिखर पर मानो दिव्य जड़ी बूटियों के प्रकाश चमक रहे हैं, अथवा विजय की ज्योति जो ध्वजाओं के दंडों से उल्लस गई है उसी की, बादलों के वशवर्ती होने के कारण, हक पुनः बादलों की तरफ लौट रही है; वा खुबुंधियों के प्रचंड प्रताप की आग (पृथ्वी पर न लट सकने के कारण) वह सुरपुर की ओर जा रही है । (और मंदिर रंगके पताका-पट) अथवा यह मेरी बनाई हुई कौटिली गंगा है जो आकाश में संचर रही है, (इस छंद से नगर के घरों का अति ऊंचा होना दर्शाया गया है) ।

अलंकार—उपदेश, संबन्धविशेषोक्ति और संदेह ।

मूल—दोहा-ज्योति ज्योति कीरति लई शत्रुन की बहु भांति ।
पुर पर बांधी शोमिजे मानो तिनकी पांति ॥ ४७ ॥

भावार्थ—(मंदिर पताकापट) राजादशरथ ने शत्रुओं की बल कील पर उनकी कीर्तियां छीन ली हैं । मानो (ये स्वतः पताका) उन्हीं कीर्तियों की पंक्ति है जो नगर के ऊपर बंधी हुई शोमा दे रही है । (अलंकार—उपदेश)

उक्ति—विमर्गाछंद—सम सभ पर शोमै मुनि मन लोमै रि
गला छोमै दोमि सबै । बहु हुहुनि बाजै अनु घन गाजै दिमा
इ माजै मुनन उबै । उई उई भृति पइहौ विचन न उवई

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक्र ।
 विद्याधर=देवविशेष । कलाधर=चन्द्रमा । राजराज=कुबेर ।
 गणपति=गणेश । मुखदायक=इंद्र । पशुपति=मदादेव । सूर=
 सूर्य । सेनापति=पड़ानन । बुधजन=बुद्ध । मंगल=मंगल ग्रह ।
 गुरु=बृहस्पति । धर्मराज=यम । मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु ।
 करुणामय=विष्णु । सुरतरंगिनी=आकाशगंगा ।

भावार्थ—(इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान्
 कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और
 सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं। सुख देने वाले (मुलायमत
 और प्रेम से कामलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और
 गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने
 वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती । अच्छे २ सेना
 नायक हैं, पांडित है, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक
 हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं ।
 बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की
 इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर
 सरजू नदी भी बहती है ।

मल्लकार-मुद्रालंकार ।

शूल—हीरकलंद-संघित गण मंडित गुण दंडित मति दे
 क्षत्रियवर धर्म प्रवर कुरु समर ललिते । विद्वान्
 रहित पाप प्रगट मानिये । शूद्र सफाति विप्र
 जगत जानिये ॥ ४३ ॥

धर्मराज मन बुद्धि धनी । यहू शुभ मनसाकर, करुणामय अरु
सुरतरंगिनी शोभसनी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—विद्याधर=विद्वान् । कलाधर=कलाओं को जानने वाले ।
राजराज=श्रेष्ठ क्षत्री । गणपति=एक एक समूह का प्रधान मनु-
ष्य, अफसर, अधिकारी । पशुपति=अश्वशाला, गजशाला,
गोशाला इत्यादिके अधिकारी । सूर=वीर, योद्धा । सेनापति=
रायक, दफ्तरदार, हवालदार इत्यादि । बुधजन=बुद्धिमान् लोग ।
मंगल=मांगलिक पाठ करनेवाले ब्राह्मण । गुरुगण=पाठ्या-
रामों के शिक्षक, गुरु, सुदर्शन, स्कूलमास्टर । धर्मराज=न्या-
यज्ञों, जज, मुसिक, कारी, सुफती इत्यादि । मनसाकर=न-
बकाएँ फल देनेवाला । करुणामय=दयावान् । सुरतरंगि-
नी=परनू नदी । शोभसनी=शोभायुक्त ।

विशेष—४१ वें छंद में अयोध्या नगर को देवपुरी कह
आये हैं । इस कारण 'मुद्रालंकार' से देवपुरी की बस्तुओं
की सूचना इस छंद में देते हैं । इस अलंकार को उर्दू में
'मिराभासुप्रनूर' कहते हैं । क्या उर्दू में इतना अच्छा
और इतना बड़ा वर्णन इस अलंकार का उर्दू-साहित्य में
दिखा सकते हैं ? उर्दू में चार शब्द तक का निर्वाह देना
संभव है । यहाँ १६ शब्द तक निर्वाह किया गया है । अलंकार

ये सब अलंकार का एक ही छंद में उदाहरण है—“यत्र बदनी जे
अप ही । कही अदे ने पुंछे पर एप ही” । यहाँ अलंकार का उदा-
हरण है ।

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक्र ।
 विद्याधर=देवविशेष । कलाधर=चन्द्रमा । राजराज=कुबर ।
 गणपति=गणेश । सुखदायक=इंद्र । पशुपति=मदादेव । सूर=
 सूर्य । सेनापति=पडानन । बुधजन=बुद्ध । मंगल=मंगल ग्रह ।
 गुरु=बृहस्पति । धर्मराज=यम । मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु ।
 करुणामय=विष्णु । सुरतरंगिणी=आकाशगंगा ।

आवार्थ—(इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान्
 कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और
 सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं । सुख देने वाले (मुलायमत
 और प्रेम से कागलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और
 गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने
 वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती । अच्छे र सेना
 नायक हैं, पंडित हैं, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक
 हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं ।
 बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की
 इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर
 नरजू नदी भी बहती है ।

इलाकार—हुद्रालकार ।

ल—हारकालंद—पंडित गण मंडित गुण बंधित मति
 शत्रियवर धर्म प्रचर कुल समर लोभिये । धैर्य स
 िहित पाप प्रगट मानिये । शूद्र लफाति विप्र भगति
 तपत जानिये ॥ ४९ ॥

यशवाली है और (चूंकि) सदा चन्द्र सहित है
 नित्य वहां रहते है) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मा
 जी का ललाट है (सरजू तट पर बंसी हुई अयोध्या
 बालकरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है
 द्वितीया के कलंकहीन चंद्र सहित महादेवका ललाट है)

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कुंडलिया—पण्डित अति सिंगरी पुरी मन्द
 गूढ । सिंह चर्दी अनु रति मूढ
 मूढ देवलंगदिति ज्यो सोहे । सब शृंगार
 मन्मथ मोहे । सधे सिंगार सदेह, सकल सुख
 ल । मनो शची विधि रची विविधि विधि

मान्दार्थ—गिरा=सरस्वती । गूढ=गुप्त । चंडि
 गूढ=गुप्त । अमूढ=जानी । दिति=अदिति (यहाँ अ
 लंकार) । सदेह=देह सहित । मन्मथ=कामदेव ।

शची=इन्द्रानी ।

दे. मानो पुप

हृद है

नगर निवासियों सहित ऐसी सोदती है जैसे (निज पुत्रों)
 देवताओं सहित आदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी
 को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब
 शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो ।
 सब शृंगार किये हुए और सदेह;सकल सुखों और शोभाओं
 से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा
 विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

शुद्धि—काव्य छन्द—मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव
 गुणाशय । होम हुताशन घूम नगर एक मलिनाशय । दुर्गति
 दुर्गन ही लु कुटिल गति सरित्तन ही में । श्रीफल को बभ्रु
 ज्ञाप प्रगट कवि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

विवरण— मूलन=जड़ों । अधोगति=नीचे को गतन, नीचगति ।
 गुणाशन=अग्नि । मलिनाशय=मलीनता, मैलापन । दुर्गति=
 पुरीदशा, जपहुँचपन, दुर्गमत्व । दुर्गन=जड़ों, किलों । कुटिल
 गति=टोड़ी चाल । सरित्तन=नदियाँ । श्रीफल=द्रव्य, बेल का
 फल (उपमान होने के कारण यहाँ ' लुच ' का अर्थ है)

व्यार्थ—(परितोष्या अलंकार समझकर इसका लर्थ
 भाषिये तो भजा आजाय) केशव कहते हैं कि अधोव्या
 ती की अधोगति नहीं होती, यदि किसी का अधो

होती है तो केवल वृत्तों की जड़ों ही की होती है । नगर किसी प्रकार की मूर्खता है ही नहीं, यदि है तो केवल होनामि के घुवा ही की है । दुर्गति किसी की नहीं, यदि है तो केवल दुर्गों ही की दुर्गति है अर्थात् दुर्गों के समेत ऐसे कवि कि शत्रु भीतर नहीं जा सकता, और अयोध्या में किसी भी टंढा चाल नहीं है, यदि है तो केवल नदियों की (श्रीफल) की अभिलाषा किसी को नहीं है (सब सहज ही बनी हैं), यदि नाम मात्र को किसी को श्रीफल की अभिलाषा है तो केवल कवियों को है (अर्थात् शृंगार वर्णन में कभी कविलोग कुत्तों की तपमा श्रीफल से दे देते हैं) ।

मूल—दो—अति चंचल उन्हें चलदले विधवा बनी न नरि
मन मोहो कविराज को अद्भुत नगर निहारि

अर्थ—चंचल=चलायमान, होलनेवाला । चलदले=
का पला ॥ विधवा=(१)पतिहीना, रांड (२)धवा नामक
से हीन । बनी=बाटिका ।

अर्थ—उदां केवल श्रीफल के पते ही चंचल हैं (कोई व्यक्ति चंचल प्रकृति का नहीं है) और उदां के नरि विधवा (रांड) नहीं है, यदि नाम मात्र को कोई विधवा (धवा नाम वृत्त में हीन) है तो केवल बनी (बाटिका) ही है । ऐसा अद्भुत नगर देस कर विश्वामित्र का मोहित हो गया ।

लंकार—परिसंख्या ।

ल—सोरठा—नागर नगर अपार, महा मोह तम मित्र मंत्र ।
 तृष्णा लता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य सोम ।

वदार्थ—नागर=चतुर, विद्वान । तम=अंधकार । मित्र=मित्र ।

वदार्थ—अयोध्या में असंख्य ऐसे विद्वान और चतुर मनुष्य ।

जो महामोह रूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान, तृष्णा

रूपी लता को काटने के लिये कुठार के समान, और लोभ

रूपी समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य के समान हैं ।

लंकार—इस में रूपक और उल्लेख का संकर है ।

ल—दोहा—विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धि उदार ।
 देखत शोभा नगर की गये राज दरवार ॥ ५० ॥

वदार्थ—केशव कवि कहते हैं कि इस प्रकार पवित्र मुनि

और उदार बुद्धिवाले विश्वामित्र मुनि नगर की शोभा देखने

एक राजा दशम्य के दरवार तक जा पहुँचे ।

पहिला प्रकाश समाप्त ।

दूसरा प्रकाश

मूल—या द्वितीय परकाश में, मुनि आगमन प्रकाश
राजा सौ रचना वचन, राघव चलन बिलास

भाषार्थ—इस दूसरे प्रकाश में विश्वामित्र मुनि का
आना, प्रकट होना, राजा दशरथ से बात चीत होना
गन जीका विश्वामित्र जी के साथ जाना वर्णित है ।

मूल—इंस छंद—आवत जाता । राजके लोगा ।

मूरति धारी । मानहु भोगा ॥ १ ॥

भाषार्थ—प्रजा गण दरवार में आ जा रहे हैं, मानो
भोग बिनास ही हैं (अर्थात् सब लोग अत्यंत मुसी
बान्नेव देख पढ़ने हैं) ।

अक्षंकार—उत्पंक्षा ।

मूल—माटठी छंद—^X—वहँ दरवारी । सब सुखकारी ॥
कृतयुग कैसे । जनु जन येस ॥ २ ॥

भाषार्थ—दरवारी=दरवार के लोग, राजकर्म चारी,
के अमना अकसर लोग । कृतयुग=सतयुग । येस=येस हैं

भाषार्थ—राज दरवार के राजकर्म चारी लोग सब को
सुख सुग देनेकाले हैं । वे दरवार में अपने स्थान पर

कार बैठे हैं मानो सतयुग के लोग हों (अर्थात् बहुत वृद्ध, विद्विमान, और न्यायपरायण हैं) ।

ल—दोहा—मदिर मेघ मृग वृषभ कहुँ भिरत मल्ल नजर राज ।
लरत कहुँ पायक सुभट कहुँ नरत नटराज ॥३॥

आगत
चलना
वार्थ—(राज महल के आगे वाले मैदान में) कहीं भैंसों
कहीं भैलों, भृगों, बैलों, कहीं मल्ल लोगों और कहीं हाथियों के
पुद्ग हो रहे हैं (लड़ भिड़ रहे हैं), कहीं पायक (पटे
बाज) और कहीं सैनिक योद्धा लड़ रहे हैं (दैनिक परेड
कर रहे हैं) और कहीं अच्छे अच्छे नट लोग नाट्य कला
कर रहे हैं ।

ल—समानिकाण्ड—देखि देखि कैसमा । विप्रमोहियो प्रभा ॥
राजमंडली लसै । देव लोक को हँसै ॥४॥

वार्थ—राजा दशरथ की सभा की प्रभा (शोभा) देख देख
कर मन्त्रचारी (विश्वामित्र) मोह गये । राजमंडली ऐसी शोभा
देती है कि देवलोक को हँसती है (लज्जित करती है) ।

लंकार—ललितोपमा ।

ल—मदन मल्लिकाण्ड—देशदेजकं गौरा । शोभिजे सखेसुखेसा ॥
जागये न जादि अह । सौन शान सौन संत ॥५॥

वार्थ—सुखेसुखे सुन्दर भेन में । आदि—सभा
वक्ति (राजा दशरथ) । अन्त—मन्त्र

राधी मानू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अ
पतितपावन है । बहुत जीव इसके जल में संप्रम स्नान करके
मन्-यहां तक कि सुअर तक—सदेह स्वर्ग को चले
जाते हैं ।

विशेष—इन दोनों छंदों में विरोधाभास अलंकार है ।
इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये कुछ
शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं ।

(राजा दशरथ के हाथियों का घर्षण)

मूल—नम्रपर्दाछन्द—जहँ तहँ लसत महा मदमत्त । वर धारन
वार न बलदत्त । अंग अंग चरचं अनि चंदन । मुंडन मुखे
दोगिय बंदुन ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—वारन=हाथी । वार न=देर नहीं लगनी । दच=
रुले हुए, मग्ने में । चरचे=लगाये एह । मुखे=छिड़के
हुर । बंदन=मंदुर ।

भावार्थ—जहाँ वहाँ बड़े बड़े मदमाते हाथी (गजशाला
में बंधे हुए) शौचा देते हैं । वे ऐसे बड़ी हाथी हैं जिन्हें सेना
का सेना रुले हुए कुछ देर ही नहीं लगती । उनके सब
अंगों में चंदन लगा हुआ है । और सिरों पर सिंदूर छिड़का
हुआ देस परना है ।

मूल—शोः—दीह दीह दिग्गजन के केशध मनहुँ कुमार ।

दीन्हे राजा दशरथहँ दिग्पालन उपहार ॥२९॥

शब्दार्थ—दीह दीह=बड़े बड़े । कुमार=पुत्र । उपहार=

भेंट, नजर ।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि वे हाथी बड़े बड़े हैं, जान पड़ता है कि वे दिग्गजों के लड़के हैं और दिक्पालों ने उन्हें राजा दशरथ को भेंट में दे डाला है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

(वाग-वर्णन)

मूल—अरिल्लच्छद्र—देशि वाग अनुराग उपजिय । घोलत फल ध्वनि कोकिल सजिय । राजति रति की सखी सुवेपनि । मनहुँ वहति मनमथ संदेशनि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—कल=तनोहर, मधुर । सुवेपनि=सुन्दर भेस वाली । वहति=पहुँचाती है । मनमथ=कामदेव ।

भावार्थ—वाग को देखकर आसरे आस अनुराग पैदा होता है । मधुर ध्वनि से कोयल बोलती हुई शोभा दे रही है । (अपने सुन्दर भेस के कारण) रति की सखी सी जान पड़ती है, (और मधुर स्वर से) ऐसा जान पड़ता है मानो लोगों को काम का संदेश सुना रही है ।

विशेष—जिस समय विश्वामित्र ज्योत्ष्या में आये थे उस समय मसंत ऋतु न थी । परंतु यह काव्य-नियम है कि वाग के वर्णन में उसका ऐसा वर्णन किया जाता है मानो मसंत या वर्षा काल में देख देख कर उसकी उदा वर्णन कर रहे हों, क्योंकि इन्हीं दो ऋतुओं में काम वाटिकादि अपनी पूरे शोभा से संपन्न होते हैं ।

अलंकार-उद्देशा ।

मूल—मरिचकच्छन्द—फूलि फूलि तर फूल बढ़ावत । मोदत
महा मोद उपजावत । उड़न पराग न चित्त उड़ावत ।
अमर अमन नहि जीव अभावत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—फूल=हर्ष । मोदत=सुगंध फैलाते हुए । मोद=
आनंद । पराग=पुष्प-धूलि । उड़ावत=उड़ते हैं । अभावत=
किरते हैं ।

भावार्थ—फूल फूल कर वृक्षगण बागमें सैर करनेवालों के
हर्ष को पढ़ाते हैं, और अपनी सुगंध फैला कर उनके हृदय में
अत्यन्त आनंद पैदा करते हैं । (यह) फूलों का पराग नहीं
उड़ाता है, वरन् लोगों के चित्त हैं जो बढ़ रहे हैं । (ये
अमर नदी हैं जो अम रहे हैं वरन् लोगों के जीव हैं जो और
बनकर इधर उधर चल रहे हैं ।

अलंकार-सुभाषणुक्ति ।

मूल—पादाश्लेषच्छन्द—शुभसरशोभि । मुनि मन लोभै ।
सगमित भूले । अलि रस भूले ॥ ३२ ॥ अलि चर डालें । बहु
अग पालें । बरति न डाली । उर अगाली ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सर=सागर । सरसिन्धु=इमल । अलि=मौला ।
गम=गहराई । अकसर=जठ में रहने वाले जीव मछली इत्यादि ।
भावार्थ—(बाग के मध्य में) एक सुन्दर सागर, शोभा
दे रहा है जो मुनियों के मन को भी लुभा लेता है । उसमें

फमल फूले हुए हैं, जिनके मकरंद फल भी मत्त हो रहे हैं।
मछलियां कलोल कर रही हैं, बहुत से मत्त-मत्त पक्षी
हैं जिनका वर्णन नहीं करते वनता मत्त-मत्त मत्त-मत्त
अपने में उलझा लेते हैं।

मूल—चतुष्पदीछंद—देखी वनवारी चंचल तपोधन
तपोधन मानी। अति तपमय लेखी गृहधित पद्म
दिगंबर जानी। जग यद्यपि दिगंबर पुष्पवती नर निरासि
निरासि मन मोहें। पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गम
साहित सय सोहें ॥ ३४ ॥

विशेष—इस छंद में 'वनवारी' शब्द के दो अर्थ लाने
विरोध का आभास प्रदर्शित किया गया है। इस छंद में
लेना चाहिये कि (१) फूलवारी वा वाटिका के प्रसंग का
तो यथार्थ अर्थ है और (२) वनकन्या के प्रसंग का
विरोधाभास अलंकार के लिये है।

शब्दार्थ—वनवारी=(१) फूलवाटिका, (२) कोई वनकन्या।
चंचल=(१) जिसके पत्रादि डोलते हों, (२) चंचल
स्वभाव। तपोधन=(१) जाड़ा, गरमी वर्षादि सहने वाला,
तपस्विनी। गृहधित=(१) परिष्ठा से विरत हुई, (२) वन
रहते हुए। दिगंबर=(१) खुली हुई, (२) नंगी, नंगा
पुष्पवती=(१) फूल वाली, (२) रजोधर्मपुत्र। पावन
(१) पवित्र, (२) सुन्दर। गम साहित=(१) कलकत्ता
(२) सगर्भा, गमवती।

भावायें—विश्वान्वित्री जी ने राजा दशरथ की पुत्रवारी (केंद्र वनवत्या) देखी। उसके पत्र पुत्रादि (वायु से) प्रहित रहे हैं और वह वनवत्याओं की तरह क्षीण, धान और वर्षा सहती है। (कन्या पक्ष में—चंचल स्वभावा होने पर भी तपस्विनी के समान है—यही विशेष है—चंचलवर्षा टास्वी नहीं ही सद्यः)। तन्मय होने पर भी पर में स्थित है—बाएँ ओर एकादश चतुर्दशी से सुरक्षित है। (कन्या पक्ष में—पर में रहते हुए भी तपस्विनी है—यही विशेष है)। जगत जानता है कि वह पुत्रवारी दिगम्बर (बेगम्बर) है अर्थात् सब कोई उसे देन सद्यः है। (कन्या पक्ष में—नंगी रहना निर्विजला है)। (छोटी कन्यायें दिगम्बर रह सकती हैं। पर वह तो पुत्रवारी—बेगम्बर—होने पर भी नंगी रहती है—यही विशेष है)। वह पुत्रवारी दिगम्बर है और बहुत फूलों वाली है जिसे देखकर मनुष्यों के मन मोहित होते हैं। (कन्या पक्ष में—नंगी को देन देकर जगत् मन से इनर कासक होती है यही विशेष है—दिगम्बरकन्या (कलगावत्यावाली) पर तो पुत्रवारी नहीं होती दूसरे स्वयं इनरवा होकर किसी का अंगुष्ठ नहीं होती)। पुत्रवारी होने पर (पुत्रवारी) अक्षय वर्षा है और फूलों के नीचे फूलों के बीजों पर महित सब कुछ मोन दे रहे हैं। (कन्या पक्ष में पुत्रवारी होने पर भी विशेष देन सद्यः है—यही विशेष है)।

मूल—चतुष्पदीछंद । पुनि गर्भसँयोगी रतिरस भोगी जग जन
लीन कहावै । गुणि जगजन लीना नगर प्रवीना अति पति
के मन भावै । अति पतिहि रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम
बढावै । अब यौं दिनरातिन अद्भुत भातिन कविकुल कीरति
गावै ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—रतिरस=(१) प्रेम (२) स्त्री-पुरुष संभोग सुख ।

पति=(१) मालिक, राजा । (२) स्वपति, अपना स्वाबंद ।

रमावै=(१) चित्तको प्रसन्न करता है (२) संभोग सुख देती है ।

भावार्थ—वह फुलवारी फल गर्मा है और प्रेमी-जनों

से सदा मरीरहती है—अर्थात् सब लोग वहाँ तैरकरने को

जाते हैं । (कन्या पक्षमें-गर्भवती होने पर भी अनेक जग

जनों के सम्भोग—सुख में लीन रहती है—यही विरोध है) ।

संसार के गुणीजन और नगर के प्रवीन लोग उस फुलवारी में

भ्रमते फिरते हैं और वह अपने मालिक (राजादशरथ) के मन

को भी खूब भाती है । (कन्या पक्षमें-संसार भरके गुणियों

और नगर निवासियों के प्रेम में लीन रहकर भी अपने

पति को प्यारी है—यही विरोध है) । राजा का चित्त इस फुल-

वारी में बहुत रमता है यहाँ तक कि यह बार्दिका राजा के

चित्त को भँका डालती है—अर्थात् इस फुलवारी की उड़ीपक

बस्तुओं को देख के राजा का मन कामवास होता है और वे

केकई, सुमित्रादि राणियों से प्रेमालाप करने लगते हैं, इसी

कारण के रतिरस भोगी जग जन लीन होने का भी ।

सुन्दर । मेरी कर्गःनेगी बनाई हुई (विद्वामित्र कृत आका-
श-गंगा) । दिवि=आकाश ।

माधार्थ—(लहरंग के पताका-पट) अथवा द्रोणाचल पर्वत के
शिरार माने दिव्य जड़ी बूटियों के प्रकाश समक रहे हैं,
अथवा त्रिवर्ण की ज्योति जो ध्वजाओं के दंडों से उत्पन्न
गरे है उनी को, बादलों के दसवनी होने के कारण, हवा
दुनः बादलों की तरह लैय रही है; वो खुबुंठियों के प्रबंड
प्रदान की अग्नि (पृथ्वीर न अट सकेने के कारण) अब
सुन्दर की ओर ला रही है । (और संचर रंगके पताका-पट)
अथवा यह मेरी बनाई हुई क्रांतिगी गंगा है जो आकाश में
संच रही है, (इस छंद में नगर के घरो का अति ऊंचा हो
ना दर्शाया गया है) ।

असंकार—उत्प्रेक्षा, संबन्धनिश्चयौक्ति और संदेह ।

मूल—दोहा—जाति जाति कारनि छो शयुन की यह मांति ।
दुर पर सोकी गोमित्री मानो तिनकी पांति ॥ ४० ॥

माधार्थ—(संचर पताका-पट) राजादशरथ ने शयुओं को
जंतु जंतु कर बनई कीनियां छीन ली हैं । मानो (ये मंदित
पताका) उनी कीनियां की पांति है जो नगर के ऊपर बेंबी-
हुई शोना दे रही है । (असंकार—उत्प्रेक्षा)

मूल—त्रिपेताछंद—सम सब घर सोमें मुनि मन सोमें रिपु
गण सोमें दीर्घ सबै । यह उंनुमि बाँडे जनु घन गाँडे दिगा-
ज माँडे सुनत जबै । जई छरे मूँठि पदही धियन न बद्धी

जय यश मदही सकल दिशा । सबई सब विधि क्षम वसत
यथाक्रम देवपुरी सम दिवस निशा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—सम=बराबर उचाई के । छोमें=डरते हैं, ईर्ष्या करते हैं । श्रुति=वेद । मदही=छा जाते हैं । क्षम=योग्य । यथाक्रम=सिलसिले से, यथोचित रीति से ।

भावार्थ—अयोध्या नगर के सब घर सम उँचाई के बने हैं इससे ऐसी शोभा देते हैं जिसे देख कर औरों की तो घात ही क्या है मुनियों के भी मन मोहित हो जाते हैं (क्योंकि मुनि जन रागद्वेष हीन होते हैं और समता को पसंद करते हैं) और जिस समता को देख कर शत्रुओं के चित्त में क्षोभ होता है । नगर में जहाँ तहाँ (देवाल्यों में वा बड़े लोगों के द्वार पर) बहुत से नगाड़े बजते हैं सो ऐसा जान पड़ता है गानो चादल गरजते हैं, जिस शब्द को सुनकर दिवाज लज्जित होते हैं । जहाँ तहाँ विप्रगण वेद पाठ करते हैं (यज्ञ, पूजन, हवन में) जिससे बिल नहीं बढ़ने पाते (दुःख रोगादि नहीं होते) और सब ओर नगर निवासियों का जैकार और यज्ञ छा जाता है । नगर के सब लोग सब ही प्रकार से योग्य हैं और सिलसिले से जहाँ जिसको यत्ना चाहिये वही यह वसता है जिससे संदेह यह नगर देव पुरी के समान जान पड़ता है ।

मूल—विभ्रयोत्सव—प्रथिपुल विधाधर, सकल कला
राजराज घर बेश बने । गणपति सुलदायक, पशुपति
गूर सदायक फौज गने । सेनापति बुजजन, मंगल

धर्मराज मन बुद्धि घनी । यहु शुभ मनसाकर, करुणामय अहं
मुरतरंगिणी शोभसनी ॥ ४२ ॥

जाब्दार्थ-विधापर=विद्वान् । कलापर=कलाओं को जानने वाले ।
राजराज=अष्ट क्षत्री । गणपति=एक एक समूह का प्रधान मनु-
ष्य, अहसर, अधिकारी । पद्मपति=अश्वशाला, गजशाला,
गोशाला इत्यादिके अधिकारी । मूर=वीर, योद्धा । सेनापति=
राजक, दफ्तरदार, हवालदार इत्यादि । बुधजन=बुद्धिमान् लोग ।
मंगल=मंगालक पाठ करनेवाले ब्राह्मण । गुरुगण=पाठशा-
लाओं के शिक्षक, गुरु, मुद्गीरिस, स्कूलमास्टर । धर्मराज=न्या-
यज्ञी, जज, मुक्ति, फाजी, सुफती इत्यादि । मनसाकर=म
नसहित कउ देनेवाला । करुणामय=दयावान् । मुरतरंगि-
नी=मरु नदी । शोभसनी=गोमायुक्त ।

विशेष—४२ वें छंद में अयोध्या नगर को देवपुरी कह
नाए हैं । इस कारण 'मुद्रालंघर' से देवपुरी की वस्तुओं
की सूचना हम छंद में देते हैं । इस अलंकार को उर्दू में
'निशानानुसन्धीर' कहते हैं । क्या उर्दू में भी इतना अच्छा
धोर इतना बड़ा वर्णन इस अलंकार का उर्दू-साहित्य में
दिसस्य सधे है ? उर्दू में 'पर शब्द तक का निर्वाह देखा
गया है । वहाँ १६ शब्द तक निर्वाह किया गया है । अलंकार

* यदि हम अलंकार को एक शीघ्र उदाहरण का लें— "कमल बरली जे
हुए, यह कमल ही (उर्दू) कने के दुर्गम एक एक ही" । इतने बरली, बरली, भौ
दिव हक कने" उदाहरण है ।

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक ।
विद्याधर=देवविशेष । कलाधर=चन्द्रमा । राजराज=कुचेर ।
गणपति=गणेश । सुखदायक=इंद्र । पशुपति=मदादेव । सूर=
सूर्य । सेनापति=पड़ानन । बुधजन=बुद्ध । मंगल=मंगल ग्रह ।
गुरु=बृहस्पति । धर्मराज=यम । मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु ।
करुणामय=विष्णु । सुरतरंगिनी=आकाशगंगा ।

भावार्थ—(: इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान्
कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और
सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं । सुख देने वाले (सुलायमत
और प्रेम से कामलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और
गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने
वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती । अच्छे २ सेना
नायक हैं, पंडित हैं, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक
हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं ।
बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की
इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर
सरसू नदी भी बहती है ।

अलंकार—सुश्लेषकार ।

मूल—हरिश्चन्द्र-पंडित गण मंडित गुण इंडित मति देखिये ।
क्षत्रियधर धर्म प्रधर हुनर समर लेखिये । धैर्य समित सत्य
रतिन पाप प्रगट मानिये । गुरु लफाति विप्र भगति जीव
जगत जानिये ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—पंडित गण=ब्राह्मणलोग । गुण मंडित=गुणों से मूर्ख, गुणवान्, विद्वान् । दंडित मति=सुशासित बुद्धि । धर्म प्रवर=धर्म में प्रचल । समर=बुद्ध । सकृति=शौचिक, शक्ति के उपासक । जीव=मन, हृदय । जगत=जगती है ।

भावार्थ—ब्राह्मण लोग सब गुणों से विमूर्ख हैं और उनकी बुद्धि शिक्षा से सुशासित देख पड़ती है । श्रेष्ठ क्षत्री गण क्षत्र धर्म में प्रचल हैं और समर ही में क्रोध करते हैं । वैश्य लोग सत्य सहित और पाप रहित व्यवहार करते हैं सो प्रकट ही है । शूद्र लोगों के मन में शक्ति की उपासना और ब्राह्मणों की शक्ति जग रही है, (इस प्रकार चारों वर्णों के लोग अयोध्या में बसते हैं) ।

मूल—सिंहविक्रान्तित छंद—अति मुनि तन मन तह
 मोहि रणे । कष्टु बुधि बल बचन न जाय कही । पशु पक्षि
 मर्त कर निरधि तथे । विन रामचंद्र गुण गनत सथे ॥ ४४ ॥
 भावार्थ—(अयोध्या को देख कर) मुनि (विद्वामित्र) का तन मन मोहित हो रह्य बुद्धिबल से कुछ बचन नहीं कहा जाता (भयंका नहीं करते बनती), तदनंतर देखा कि बुद्धि स्त्री और पुरुष, पशु और पक्षी सब जीव निर मुनि राम गुण गान करते हैं ।

मूल—मगदहाडर—अति उच्च अगारनि बनी पमारनि उरु
 विनाशनि मार । बटु नान मन्न-धूमनि-धूपित अंगन हनि
 कीर्ती धनुराणि । चित्री बटु विचरिने परम विचित्रन केशयदाह

निहारि । जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरचि
विचारि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—पगार=छारदीवारी, सिरबंदी । नारि=समूह,
लानि । बहुशत=सैकड़ों । मख धूमनि धूपित=यज्ञों के धुंवा
से धूपित । अंगन=आंगन, सहन । हरि=विष्णु । अनुहारि=
रूपकी सदृशता । चित्री=चित्रित, चित्रयुक्त । विश्वरूप=
संसार । अमल=निर्मल । आरसी=आईना ।

भावार्थ—बड़े ऊँचे मकानों पर (रत्नजटित) छारदीवारी
बनी हैं मानो चिन्तामणियों का समूह है । परों के आंगन
सैकड़ों यज्ञों के धुंवा से सुगन्धित होकर विष्णु की तरह श्याम
वर्ण के होगये हैं (प्रत्येक घर में नित्य यज्ञ हवन हुआ
करते हैं) और बहुत से घर अत्यंत विचित्र चित्रों से
चित्रित हैं (चित्र बने हैं), केशवदास कहते हैं कि वे घर
ऐसे विशाल हैं पढ़ते हैं मानों संसार भरको देखने के लिए
जगत्ता ने विचार करके निर्मल आरसी रची है (संसार भर
की सब वस्तुओं के चित्र बने हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—सौराष्ट्रा—जगत्ता यशोवन्त विशाल, राजा दशरथ की
पुत्री । चन्द्र सहित सब काल, भालयली जनु ईश की ॥४५५॥
शब्दार्थ—चन्द्र सहित=समस्त काल । भालयली=ग-
स्तक, ललाटे । ईश=नारायण ।

भावार्थ—राजा दशरथ की पुत्री (यशोवन्ता) संसार में

यशवाली है और (चूक) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र नित्य वहाँ रहते हैं) इमलिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव जी का ललाट है (मरु तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी कलकल्प रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो द्वितीया षट्कलकल्प चन्द्र सहित महादेवका ललाट है) !

अष्टाचार—उत्प्रेक्षा ।

मूढ—कुंठलिपा—पण्डित अति सिगरी पुरी मनहु गिरा गति गूढ । सिंह चर्चा अनु चण्डिका मोहति मूढ अमूढ । मोहते मूढ ममूढ देयमगप्रदिनि ज्यो सोहे । सब शृंगार सदेह मनो राते मन्मथ मोहे । मधे सिंगार सदेह सकल सुख मुसमा मंडित । मनो शची विधि रची विविधि विधि वर्णत पण्डित ॥४॥

प्रार्थना—गिरा=उत्सवती । गूढ=गुप्त । चंडिका=दुर्गा ।

मूढ=मूर्ख । अमूढ=जानी । शिति=वदिति (यहाँ 'अ' का अर्थ है) । सदेह=देह सहित । मन्मथ=कामदेव । मुसमा=शोभा । मण्डित=विभूषित, युक्त । शची=इन्द्रानी ।

आचार्य—सब पुरी अर्थात् विद्वान् है मानो पुरी स्वयं सरस्वती ही है पर अनेक रूप को टिपाये हुए है । (अथवा) सिंह पर आरुह्य दुर्गा है किं देत कर शानी और अज्ञानी सबकी मोहित हो जाते हैं (शानी लोग मक्ति से अज्ञानी लोग मद में) । (विद्वान् आचार्यों के कारण सम्भवतः है, सिंह मन्थान मन्थन पण्डितों सन्धिओं के कारण चंडिका है) । शची और मन्मथों को मंगनी हुई (अयोध्या पुरी)

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों)
देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी
को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब
शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो ।
सब शृंगार किये हुए और सदेहःसकल सुखों और शोभाओं
से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा
विद्वान् अनेक प्रकार से करते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—काव्य छंद*—मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव
गारय । होम हुताशन धूम नगर पके मलिनाहय । दुर्गति
दुर्गन ही तु कुटिल गति सरितन ही में । श्रीफल को धमि-
लाप प्रगट काचि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मूलन=जहाँ । अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति ।
हुताशन=अग्नि । मलिनाहय=मलीनता, मैलापन । दुर्गति=
दुर्गदशा, अपहृचपन, दुर्गमत्व । दुर्गन=गढ़ों, किलों । कुटिल
गति=टंटी चाल । सरितन=नदियाँ । श्रीफल=द्रव्य, फल या
फल (उपमान होने के कारण यहाँ ' कुल ' का अर्थ है)

संक्षेप—(परिसंख्या अलंकार समस्तक इत्यादि अर्थ
समाप्तिये तो मना जाजाय) केशव कहते हैं कि अगोप्य में
किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

वदवाली है और (चूँकि) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र
नित्य वहा रहने हैं) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव
की छा लटाट है (मारजू तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी
बलकरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो
द्वितीया के छह्छह्हीन चंद्र सहित महादेवका लटाट है) ।

अञ्जकार—उत्प्रेषण ।

मूढ—कुंडलिया—पण्डित जति सिगरी पुते मनहु गिरा गति
गूढ । मिह घटी जनु घण्डिका मोहनि मूढ शमूढ । मोहन मूढ
अमूढ देपंगडदिनि ज्यौ सोहे । सब शृंगार सेदह मनो रति
मन्मथ मोहे । सब सिंगार सेदह सकल मुन मुखमा मंडि-
त । मनो शची विधि रचा विविधि विधि वनेत पण्डित ॥४७॥

शब्दार्थ—गिरा=गगनगती । गूढ=गुप्त । चंडिका=दुर्गा ।

मूढ=मूर्ख । अमूढ=ज्ञानी । दिवि=नदिति (यहाँ 'व' का
बोना है) । सेदह=देह सदिन । मन्मथ=चामेदेव । मुखमा=
शोभा । पण्डित=विमूर्ख, मुन्ध । शची=इन्द्रानी ।

भावार्थ—सब पुण्य अत्यंत विद्वान् है मानो पुण्य स्वयं सर-
स्वती ही है पर अनेक रूप को लिनाये हुए है । (यथवा)
मिह पर लाम्बु दुर्गा है सिंग देना कर मानी और अमूर्खी
नगरी मोहित हो जाने है (मानी होने अंगु से अज्ञानी लोग
रूप से) । (विद्वान् मन्मथों के कल्प समस्तरीरूप है, मिह
मनन सब पगानी हरिषों के कल्प चंडिका है) ।
अन्य और अज्ञानियों को लेनी

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों)
देवताओं सहित जदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी
को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब
शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो ।
सब शृंगार किये हुए और सदेह; सकल सुखों और शोभाओं
से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा
विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कान्य छन्द—मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव
माहय । होम हुताशन धूम नगर एकै मालिनाहय । दुर्गति
दुर्गन ही छु छुटिल गति सरितन ही में । श्रीफल को शभि-
लाप प्रगट कवि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मूलन=जड़ों । अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति ।
हुताशन=अग्नि । मालिनाहय=मलीनता, मैलापन । दुर्गति=
शुभ्यशा, अपहृतपन, दुर्गमत्व । दुर्गन=बाड़ों, किलों । छुटिल
गति=देरी पाल । सरितन=नदियां । श्रीफल=द्रव्य, फल का
फल (उपमान होने के कारण यहाँ 'कुत्त' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ
समाश्रिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि जयोव्या में
किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

समवाली है और (चूंक) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र
निग्य वहां रहते हैं) इमालिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव
की का लडाट है (सरजू तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी
बाउरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो
द्विर्नाया के कटकहान चद्र सहित महादेवका लडाट है) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूढ—कुंदलिया—पण्डित अनि सिगरी पुरी मगदु गिरा गति
गूढ । सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ अमूढ। मोहतं मूढ
अमूढ देवतगर्भदिनि ज्यौ सोई । सब शृंगार सदेह मनो रति
मन्नय मोई । मथे सिगार सदेह सकल सुग सुखमा मंडि-
त । मनो शर्चा विधि रची विविधि विधि यणैत पण्डित ॥४३॥

शब्दार्थ—गिरा=मरुती । गूढ=गुप्त । चंडिका=दुर्गा ।

मूढ=मूर्ख । अमूढ=जानी । द्विति=अशुभि (यहाँ 'अ' का
कोर है) । सदेह=देह सहित । मन्नय=कामदेव । सुखमा=
शोभा । मण्डित=विशुद्ध, युक्त । शर्चा=श्रद्धा ।

भावार्थ—सब पुरी अत्यंत विद्वान् है मानो पुरी स्वयं सर-
स्वती ही है पर अपने रूप को छिपाये हुए है । (अथवा)
सिंह पर ऊपर दुर्गा है जिसे देखा कर शर्मा और अज्ञानी
सबही मोहित हो जाते हैं (शर्मा लोग मण्डि में भजानी लोग
बचते) । (विद्वान् मनुष्यों के कारण समुद्रतीरुप है, सिंह
मनुष्य सबल पशुकी शक्ति के कारण मण्डित है) ।
शर्मा और अज्ञानियों की मोहती हुई (अयोध्या पुरी)

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों) देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो । सब शृंगार किये हुए और सदेह;सकल सुखों और शोभाओं से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा विद्वान् अनेक प्रकार से करते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—काव्य छंद*—मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाश्य । एतन् हुताशन धूम नगर एकै मलिनाश्य । दुर्गति दुर्गत ही जु कुटिल गति सरितन ही में । श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ— मूलन=जहाँ । अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति । हुताशन=अग्नि । मलिनाश्य=मलीनता, गैलापन । दुर्गति=दुर्गति, अपहृचपन, दुर्गमत्व । दुर्गत=गडों, किलों । कुटिल गति=टट्टी चाल । सरितन=नदियाँ । श्रीफल=द्रव्य, बेल का फल (उपमान होने के कारण यहाँ ' कुच ' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ समझिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि जहाँ अधोगति किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

दोरी है तो केवल वृषों की बड़ी ही की होती है । नगर में
 चिमी प्रकार की मडीनता है ही नहीं, यदि है तो केवल
 हानामि के पुवां ही की है । दुर्गति किसी की नहीं, यदि है तो
 केवल दुर्गो ही की दुर्गति है अर्थात् दुर्गो के समे ऐसे कठिन है
 कि ननु भीतर नहीं जा सकता, और अयोध्या में किसी की
 भी देदी चाल नहीं है, यदि है तो केवल नदियों की । श्रीफल
 (मन) की अमिलापा किसी को नहीं है (सब सहज ही अलि
 पनी है), यदि नाम मात्र को किसी को श्रीफल की अमिलापा
 है तो केवल कवियों को है (अर्थात् शृंगार वर्णन में कभी
 कभी कविलोग कृत्तों की उपमा श्रीफल से दे देते हैं) ।

मूल—शो०—अति चंचल जई चलदलै विधवा बनी न नारि ।
 मन मोहो करियार को अद्भुत नगर निहारि ॥४८॥

वाक्यार्थ—चंचल=चलायमान, दोलनेवाला । चलदल=पीप
 का पत्ता ॥ विधवा=(१)परिहीना, रंड (२)पवा नामक वृक्ष
 से हीन । बनी=बाटिका ।

भावार्थ—जहां केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं (और
 कोई व्यक्ति चंचल प्रकृति का नहीं है) और जहां कोई
 नारि विधवा (रंड) नहीं है, यदि नाम मात्र को कोई विधवा
 (पवा नाम वृक्ष से हीन) है तो केवल बनी (बाटिका)
 ही है । ऐसी अद्भुत नगर देख कर विद्वान्मित्र का मन
 मोहित हो गया ।

अलंकार— परिसंख्या ।

मूल—सोरठा—नागर नगर अपार, महा मोह तम मित्र से ।

तृष्णा लता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से॥४२॥

शब्दार्थ—नागर=चतुर, विद्वान । तम=अंधकार । मित्र=सूर्य ।

भावार्थ—अत्रोच्चा में असंख्य ऐसे विद्वान और चतुर मनुष्य

हैं जो महामोह रूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान, तृष्णा

रूपी लता को काटने के लिये कुठार के समान, और लोभ

रूपी समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य के समान हैं ।

अलंकार—इस में रूपक और उल्लेख का संकर है ।

मूल—दोहा—विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धि उदार ।

धैर्यत शोभा नगर की गये राज दरवार॥ ५० ॥

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि इस प्रकार पवित्र निरा

और उदार बुद्धिवाले विश्वामित्र मुनि नगर की शोभा देखते

दृष्ट राजा पशुपति के दरवार तरु जा पहुँचे ।

पहिला प्रकाश समाप्त ।

प्रकार बैठे हैं मानो सतयुग के लोग हों (अर्थात् बहुत वृद्ध, बुद्धिमान, और न्यायपरायण हैं) ।

मूल—दोहा—महिष मेघ मृग वृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज ।
लरत कहुँ पायक सुभट कहुँ नरत नटराज ॥३॥

भावार्थ—(राज महल के आगे वाले मैदान में) कहीं गैंसों कहीं भेड़ों, मृगों, बिलों, कहीं मल्ल लोगों और कहीं हाथियों के युद्ध हो रहे हैं (लड़ भिड़ रहे हैं), कहीं पायक (पटे वाज) और कहीं सैनिक योद्धा लड़ रहे हैं (दैनिक परेड कर रहे हैं) और कहीं अच्छे जच्छे नट लोग नाट्य कला कर रहे हैं ।

मूल—समानिकाच्छद—देवि देखि कैसभा । विप्रमोहियो प्रभा ॥
राजमंडली लसे । देव लोक को हँसै ॥३॥

भावार्थ—राजा दशरथ की सभा की प्रभा (शोभा) देख देख कर ब्रह्मचारी (विश्वामित्र) मोह गये । राजमंडली ऐसी शोभा देती है कि देवलोक को हँसती है (लज्जित करती है) ।

अलंकार—ललितोपमा ।

मूल—मदन मालिकाच्छद*—देशदेशके नरेश । शोभिजे सदैव सुवेश ॥
जानिये न आदि अंत । जौन काम कौन संत ॥३॥

शब्दार्थ—सुवेश=शुन्दर भेष से । जादि=सभा का प्रधान व्यक्ति (राजा दशरथ) । जंत=सभा का सर्वप्रथम सभासद

* अत्र परम सुख मरिज मरु सुख तनु ईश्वरदाता । मदन मालिका नाम पर कीर्ति कर सात ।

(कोई छोटा करद राजा) । दास=सेवक, कर्मचारी ।
संत=माणिक, सेव्य व्यक्ति ।

भावार्थ—देव देव के राजा सुन्दर राजसी ठाठ से समा
में बड़े शोभा दे रहे हैं, न तो यह जान पड़ता है कि समा
का आदि व्यक्ति (प्रधान वा समापति अर्थात् राजा दशरथ)
कौन है, न यह जान पड़ता है कि समा का अंत (सर्व लघु
करद राजा) कौन है—अर्थात् सभी समासद बड़े वैभवशाली
हैं, और यह भी नहीं कल पड़ता कि कौन सेवक है
और कौन माणिक—अर्थात् दरवार के कर्मचारी भी, ऐसी
पैदाशे पहन है कि सब कोई बड़े राजा से जान पड़ते हैं ।
(इस में राजा दशरथ का वैभव सूचित होता है) ।

x

चूट—शोदा—शोभन बड़े तेहि समा मात हीर के मूप ।
तई राजा दशरथ लई देवदेव अनुरूप ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—देवदेव=इन्द्र । अनुरूप=मम, तुल्य, समान ।

चूट—शोदा—देवि निन्दे नय दूरि ने सुदरानो प्रतिहार ।
जाने विदरामिनि जो अनु हजो करतार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—निन्दे=विद्वान्निन्दये । सुदरानो=राजा दशरथ के
निवेदन दिया । प्रतिहार=नदीर, शौचदार । करतार=ब्रह्मा

भावार्थ—एव विद्वानिनि को दूर पर जाने हुए देनकर दरपा
के कोपला ने राजा मे निवेदन दिया दिहे गजन विदरामि
नि (निन्दे के जिये) जाने हे जो एसे मय्य और गैवी

देख पड़ते हैं मानो दूसरे ब्रह्मा हैं ।

अलंकार—उल्लेख और समतद्रूप रूपक का संकर ।

मूल—दोहा—उठिदौरे नृप सुनत ही जाय गहे तव पाइ ।

लै आये भीतर भवन ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥१॥

भावार्थ—विश्वामित्र के आगमन की खबर सुनते ही राजा सिंहासन से उठ कर दौड़े और विश्वामित्र के चरणों पर जा गिरे, तदनंतर बड़े आदर से सभागवन के भीतर लिवा ले गये जैसे इन्द्र नृहस्पति को (लिवा ले जाते हैं) ।

मूल—सोरठा—सभा मध्य बैताल, ताहि समय लो पढ़ि उठो ।
केशव बुद्धि विशाल, सुन्दर सूरु भूप सो ॥१॥

शब्दार्थ—बैताल=भाट, बंदीजन, चारण । पढ़ि उठो=बोल उठा, पद्य में प्रशंसा की । विशाल=बड़ी । सूरु=शूरवीर । भूप=राजा ।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि उसी समय बड़ी बुद्धिवाला, सुन्दर तनवाला, और राजा के समान शूरवीर बंदीजन सभा के बीच में बोल उठा ।

मूल—(बैताल)—घनाक्षरीलंन-विधि के समान है विमानो-
रुत राजगोस, विविध विबुध युत मेरु लो अचल है । दीपति
दिपति अति सानो दीपि दीपियतु दूसरो दितीप लो सुददिणा
को पल है । सागर उजागर को बहु याहिनी को प्रति, छन्दान
प्रिय विधो मूरज अमल है । सब विधि समरथ राजे राजा
दशरथ, भगीरथ-पथगामी योगा केसो जल है ॥ २० ॥

शब्दार्थ—विमानोद्धत=विमान बनाये हुये हैं, सवारी क्रिये हुए हैं । राजहंस=(१)हंस पक्षी (२)राजाओं के जीव । विबुध=(१)देवता (२)विशेषज्ञ पंडित गण । दीपति=दीप्ति । दिगति=दीप्तमान होती है । दीपितवु=प्रकाशित हो जाते हैं । सुदक्षिणा=(१)दिलीप की स्त्री का नाम (२)सुंदर दक्षिणा । उद्गार=असिद्ध । फी=कि, कियो, या, अथवा । बाहिनी=(१) नदी (२)मेना । छन=(छप) आनंद उत्सव । छन दान प्रिय=(१)आनंद देना प्रिय है जिस को (२)प्रतिफल दान करना प्रिय है जिसे । मगीरथरथगानी=मगीरथ के पथ पर चलनेवाला, मगीरथ की रीति-नीति का अनुगामी ।

भावार्थ—राजा दशरथ ब्रह्मके समान हैं, क्योंकि जैसे ब्रह्म-राजहंस पर सवारी करते हैं, वैसे ही राजा दशरथ अनेक राजाओं के जीवों पर सवारी क्रिये हुए हैं (सब राजाओं के चिह्न पर चढ़े रहते हैं) । और राजा दशरथ मेरु पर्वत के समान हैं, क्योंकि मेरु पर जमे अनेक देवता रहते हैं, वैसे ही राजा दशरथ अनेक विशेषज्ञ पंडितों से युक्त हैं (जिनके दरबार में बहुत से विद्वान् रहते हैं) । राजा दशरथ के यज्ञ का प्रकाश इतना अधिक है कि उनसे सारी दीप प्रकाशित हो चके हैं, और राजा दशरथ मनी दूमेर दिग्गज हैं, क्योंकि जैसे उन दिग्गज को अपनी पंक्तिवा रानी सुदक्षिणा के पतिव्रत का बल था, वैसे ही राजा दशरथ को सुंदर दक्षिणा का बल

है। अथवा राजा दशरथ प्रत्यक्ष ही सागर हैं, क्योंकि जैसे समुद्र अनेक नदियों का पति है वैसे ही राजा दशरथ भी अनेक सेनाओं के स्वामी हैं, अथवा राजा दशरथ निर्मल सूर्य हैं, क्योंकि जैसे सूर्य सब को (प्राणी मात्र को) आनंद देते हैं, वैसे ही राजा दशरथ प्रतिक्षण दान करने को प्रिय कार्य समझते हैं। राजा दशरथ सब प्रकार से समर्थ हैं और अपने पूर्व पुरुषों की रीति नीति के वैसे ही अनुगामी हैं जैसे गंगा का जल भगीरथ के दिखलाये हुए रास्ते पर आज तक चला जाता है।

नोट—इस छंद में केशव ने कमाल कर दिखाया है। बैताल के मुख से राजाको सूचना मिलती है कि विश्वामित्र कुछ मांगने आये हैं, और विश्वामित्र को सूचना मिलती है कि राजा बड़े दानी हैं तुम्हें अवश्य मन माना दान मिलेगा। पाठक को सूचना मिलती है कि जिस राजा की रामा का भाट इतना चतुर और दूर दर्शी है तो वह राजा और उसकी सभा के पंडित कैसे विद्वान होंगे।

अलंकार—इस छंद में उल्लेख अलंकार मुख्य हैं और उपमा, रूपक, संज्ञा तथा श्लेष इसके अंगीभूत हैं।

मूल—दादा—यद्यपि पृथक् जाते गये, औरतण केदायदास।

तत्रपि प्रजापानन्द के, पल्लवल बद्धत प्रकास॥१॥

भावार्थ—केनवदास कहते हैं कि यद्यपि राजा दशरथ के

शमुनन ईषन रूप होकर जल चुके हैं, तो भी प्रतापरूपी
लभों का प्रकाश प्रति क्षण बढ़ता ही जाता है ।

अलंकार—विभावना मुख्य है और रूपक अंगीभूत है ।

मूल—^Xतामरद—बहुमांति पूजि सुराय । फर जोरि कै परि
पाय । होतहैं कछी कपि मित्र । अब वैदु राज पवित्र ॥ १२ ॥

भावार्थ—^Xकृष्णमित्र=कृष्णियों में सर्वत्र प्रतापवान, कृष्ण
विश्वामित्र ।

भावार्थ—राजा दशरथ ने विश्वामित्र की अनेक मांति से पूजा
की और शाय जोड़ कर पैरों पड़े । तब विश्वामित्र ने हँसकर
(सुकुशुंकर) कहा कि हे पवित्र राजा ! अब सिंहासन पर बैठो ।

मूल—(मुनि) तामरद—मुनि ज्ञान-मानस-हंस । रघुवंस के
जवतंस । मन माँह जो अति नेहु । यक वस्तु माँगाहि देहु ॥ १३ ॥

भावार्थ—(विश्वामित्र कहते हैं) हे दान रूपी मानमरोवर
के हंस, हे रघुवंस के शिरोमणि राजा दशरथ जी ! यदि तुम
करतुन हमसे किसी प्रेम रखते हो तो हम एक वस्तु माँगते
हैं, वह हमें क्षरिये ।

मूल—(राजा)—कर्मजगति छतर—

^X मुनि महामुनि मुनिये । तन घन कै मन मुनिये ।
मन मरै होय मु कहिये । घनि मु हु जापुन न्हिये ॥ १४ ॥

१-कर्मजगति छतर है कर्मजगति छतर ॥ १४ ॥

२-कर्मजगति छतर है कर्मजगति छतर ॥ १४ ॥

३-कर्मजगति छतर है कर्मजगति छतर ॥ १४ ॥

४-कर्मजगति छतर है कर्मजगति छतर ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—सु=सो । जु=जो । आपुन=आप ।

भावार्थ—(राजा दशरथ कहते हैं) हे सुन्दर मतिवाले महा-
मुनि सुनो, मेरे पास तन है, धन है और या मन
है, सो विचार लीजिये । और विचार के उपरान्त जो वस्तु
तुम्हें पसंद आवे वह माँग लो । धन्य है वह वस्तु जो आप
पावें (आप के काम आवें) ।

मूल—(ऋषि)—दोधकछन्द—राम गये जब ते धन माहीं ।
राकस वैर करैं बहुधा हीं । राम कुमार हमें नृप दीजें । तौ
परिपूरन यह करीजै ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—राम=परशुरामजी । राकस=राक्षस । करीजै=करें ।

भावार्थ—जब से परशुराम जी (तप करने के लिये) धन
को चले गये हैं, तब से राक्षस लोग (मुनियों से) बहुधा
वैर विरोध किया करते हैं—(अर्थात् परशुराम जी जब
भ्रमन्तारी थे और आश्रम के निकट रहा करते थे तब उनके
दर से राक्षस हम लोगों से वैर विरोध न करते थे, अब उनके
चले जाने से ये लोग हमारे कार्यों में विघ्न डालते हैं) इस
हेतु हे राजन् ! आप हमें अपने राम नामक राजकुमार को
दीजिये, तो हम (उनकी रक्षा में) अपना ब्रह्म पूर्ण कर लें ।

मूल—दोदक छन्द । यह बात सुनी नृपनाथ जब । सर से
उठे आसद चित्त सबै । मुदा ते कहु पाल न जाइ कही ।
अपराध भिना ऋषि वैद वही ॥ १६ ॥

भावार्थ—अनि सरल है।

अलंकार—दूसरे चरण में पूर्णोपमा और चौथे में विभावना।

मूल—(राजा)—^Xतांडकछंद। अनिकोमल केशव घालकता।
 षट् दुस्कर राक्षसघालकता। हम हीं चलिहें अपि संग धवै।
 सति सेन चहै चतुरंग सबै ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—घालकता=लड़कपन ॥ दुस्कर=(दुष्कर) जो न
 की जा सके, अतिकठिन। राक्षस घालकता=राक्षसों का
 बध। चतुरंग सेना=बह सेना जिसमें रथ, हाथी, घोड़े और
 पैदल हों।

भावार्थ—(राजा दशरथ विश्वामित्र से कहते हैं) राम जी
 का लड़कपन अभी अति कोमल है (अति अल्पवयस्क हैं),
 नन्हें लिये राक्षसों का मारना बड़ा कठिन काम है। इस
 लिये हे अपि जी, हम हीं सब चतुरंगिणी सेना साथ लेकर
 अभी (तत्काल) चढ़ेंगे।

मूल—(विश्वामित्र)—पदपद। जिन हाथन हाठि हरपि हमन
 हरिनी-रिपुनेदन। तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयं
 बन ? तिन बेघन सुत्र लख लक्ष नृपकुंवर कुंवरमानि। तिन
 यानत बागद पाय मानत नहिं निहन। नृपनाथ-नाथ दश
 राज पर अरुण कथा नहिं मानिये। मृगराज-राज—कुल
 कटप कहै बालक बूढ़ न जानिये ? ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—रिपुनेदन=(हरिनी शब्दके सादृश्य से) मिट्ट
 का बध। सुत्र=पट्ट ही में। लख=ब्रह्म। लक्ष=नि-

शाना । नृपकुँवर=राजकुमार । कुँवरमनि=कुमारों में श्रेष्ठ, जे
टा राजकुमार । वाराह=सुअर । अकथ=न कहने योग्य, झूठ ।
कथा=कथन । मृगराज कुल-कलस=सिंह का श्रेष्ठ वच्चा ।
राज-कुल-कलस=राजा का प्रतापी बालक । बालक वृद्ध=बाल
क नहीं बरन् बड़ाही समझना चाहिये । न जानिये=क्या
आप यह बात नहीं जानते ?

भावार्थ—(विश्वामित्र राजा दशरथ से कहते हैं) हे राजन् !
जिन हाथों से सिंह का बच्चा हठ करके आनंद से (बिना
परिश्रम) किसी मृगी को मारता है, क्या उन्हीं हाथों से
वह मदमस्त हाथियों को नहीं मारता ? (अर्थात् मारता है),
(और) जिन हाथों से कुमारश्रेष्ठ कोई राजकुमार सहज
ही में लाखों निशाने धेध डालता है, क्या उन्हीं हाथों से
अपने बाणों द्वारा वह सुअर, बाघ और सिंहों को नहीं मार
ता ? (अर्थात् मारता है) । इस लिये हे राजराजेश्वर
महाराजा दशरथ । मेरे इस कथन को झूठा मत मानिये ।
(मैं कहता हूँ कि) सिंह के और राजवंश के किसी बच्चे को
बालक नहीं बरन् बड़ा ही समझना चाहिये ।

मूल—(विश्वामित्र) सुन्दरी छंद*—राजन मे तुम राज
पदे अति । मे सुग मंगो तु देह महामनि । वव-सहायक
ही नृपनायक । हे राए कारज रामहि लायक ॥ १९ ॥

भाषार्थ—राजाओं में तुम बहुत बड़े राजा हो । हे महामति ! मैं ने जो माँगा है सो मुझे दीजिए (और जो आप स्वयं मेरे साथ करने को कहते हैं उसका उत्तर यह है कि) आप देवताओं के सहायक और राजाओं के नायक हैं (अर्थात् जब देवताओं और राजाओं पर कष्ट पड़े, तब आप सहायताएं जायें । आप देवताओं और राजाओं का कामकर सकते हैं, ऋषियोंका नहीं) यह काम (अर्थात् ऋषियों के यज्ञकी रक्षा) राम ही के करने योग्य है ।

मूल—(राजा)—सुंदरीछंद—मैं तु कस्यो ऋषि देन सु लीजिय । काज करों हट भूलि न कीजिय । प्राण दिये धन जाहिँ दिये सप । केशव राम न जाहिँ दिये अथ ॥ २० ॥

X
(ऋषि)—राज तज्यो घन घाम तज्यो सव । नारि तज्यो सुन सोय तज्यो तव । आपनरी तु तज्यो जगवंद है । सत्य न एक तज्यो हरिचंद है ॥ २१ ॥

भाषार्थ—मानसौ=अहंकार । जगवंद है=(जगद्वन्द्य) जिसे माग संसार भयज समझता है ।

भाषार्थ—छन्द नं= २० तथा २१ का अर्थ सरल ही है ।

X
मूल—(कश्यप)—सुंदरीछंद—राज पड़े यह साज पड़े पुत्र । नाम बड़े पद घाम पड़े सुट—मूटे सो सुटहि यौघन हो मन । छेड़त हो नृप सत्य गजावन ॥ २२ ॥

भाषार्थ—पद्व छन्द और सट है ।

मूल—दोहा—जान्यो विश्वामित्र के, कोप बह्यो उर आय ।
राजा दशरथ सों कह्यो, वचन वशिष्ठ बनाय ॥ २३ ॥

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है ।

मूल—(वशिष्ठ)—पद—इन ही के तपतेज यह की रक्षा
करिहैं । इन ही के तपतेज सकल राक्षसबल हरिहैं । इन
ही के तपतेज तेज बढिहैं तन तूरण । इन ही के तपतेज हो-
हिगे मंगल पूरण । कहि केशव जययुत आईहैं इन ही के
तपतेज घर । नृप वेगि राम लछिमन दोऊ सौंपीं विश्वामित्र
कर ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—तपतेज=तपस्यां के तेज से । तूरण=(तूर्ण)भी-
प्र । मङ्गल=विवाहादि शुभकार्य ।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है ।

मूल—(वशिष्ठ)—जोरठा—राजा और न मित्र, जानहु विश्वा-
मित्र से । जिनको अमितचरित्र, रामचन्द्रमय जानिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ? विश्वामित्र के समान बुद्ध्या और कोई
भी मित्र नहीं है, क्योंकि इनका अपार चरित्र सब रामचन्द्रमय
है (तात्पर्य यह कि विश्वामित्रजी जितने ज्ञान करेंगे वे सब
रामचन्द्र ही की भलाई के लिये होंगे) ।

मूल—दोहा—नृप पे वचन वशिष्ठ को, ऐसे भयो जाद ।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचन्द्र अङ्गुलाय ॥ २६ ॥

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

मूल—एकत्र शारिका छन्दः—राम चलत नृपके युग लोचन ।
 वारि मग्न मये शारिद रोचन ॥ पायन परि श्रुषिके सति
 भौनहि । केशव उठि गये भीतर भौनहि ॥ २७ ॥

भाषार्थ—रामचंद्रके चलते समय राजा दशरथ के दोनों नेत्र
 ऐसे हो गये जैसे धानी से भरा हुआ लाल वादल (जैसे
 खल होंगई और आसू आगये) । विश्वामित्र के चरण छूकर
 चुनवाप बटकर महलों के अन्दर चले गये ।

मूल—धामरछन्द—वेद मन्त्र तेष शोधि अस्त्र शस्त्र द्वै मले ।
 रामचन्द्र लक्ष्मणे सु विप्र छिप्र लै चले । लोम लोम मोहं गये
 काम कामना हरं । नौद भूज प्यास प्रास पासना सर्व
 गरं ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—मन्त्र=वेदधियार जो फेंक कर पाळे जाते हैं (जैसे
 तीर, चक्र, पंदूक आदि) शस्त्र=वेदधियार जो हाथ में पकड़े
 हुए ही शत्रुपर पाळे जाते हैं (जैसे तलवार, फटार, गदा
 इत्यादि) । लक्ष्मणे=लक्ष्मण जी को । विप्र=विश्वामित्र ।
 छिप्र=शीघ्र, बल्दी । लोम=दोष । हरं=(हनी) नष्ट कर
 दी गई ।

भाषार्थ—वेद और तन्त्रशास्त्र के मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके
 राम लक्ष्मण को अच्छे २ अस्त्र दिये गये (अर्थात्
 बलिष्ठ बी और विश्वामित्र जी ने निहत्तर सब प्रकार के ह-

* यदि आप पूरे अन्त की पढ़ने का मन है तो
 कृपया पढ़ें ॥

थियारों के घालने की विधि वा युक्ति बताई), तदनंतर विश्वामित्र जी शीघ्र ही राम लक्ष्मण को अपने आश्रम को ले चले । (चलते समय) विश्वामित्र ने रामलक्ष्मण को चला और अतिबला विद्या पढाई जिसके प्रभाव से लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार और कामेच्छा नष्ट होगई और नोंद, भूख, प्यास डर और सब प्रकार की अनिष्टकारिणी वासनायें जाती रहीं ।

विशेष—इस छन्द के अंतिम दो चरणों से स्पष्ट विदित है कि जब किसी नव युवक को किसी महान् कार्य के लिये विदेश जाना पड़े, तब उसे चाहिये कि वह लोभ, मोहादि अनिष्ट-कारिणी मनोवृत्तियों के घसीभूत न रहे ।

मूल—निशिपालिका छन्द—कामवन राम सब वास-तरु दे खियो । नैन मुन्नदेन मन सैनसय लेखियो । ईश जहँ काम तनु के अतनु खारियो । छोड़ यह, यह थल केशव निहारियो ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—कामवन=वह वन जहाँ महादेव ने काम को जला था । वास=गुणियों के निवास स्थान । नैनमुन्नदेन=नेत्रों को सुख देने वाले । मन सैनसय=मन में कामेच्छा अब जाने वाले अर्थात् जस्यंत सुन्दर । ईश=महा देव जी ।

भावार्थ—राम ने काम वन में पहुँचकर वहाँ के रहने वाले गुणियों के निवासस्थान और वृक्षों को देखा तो ऐसे सुन्दर

थे कि उन्हें देस कर आँसों को सुख मिलता था और मन कामनामय हो उठता था, जिस वन में महा देव जी ने काम को जला कर बिना देह का कर दिया था । (पुनः) उस वन को छोड़कर (और आगे जाकर) विश्वामित्र का यज्ञ-स्थल देसा ।

X मूल—शोहा—रामचंद्र लक्ष्मण सहित तन मन अति सुख पाय । देखी विश्वामित्र को परम तपोवन जाय ॥ ३० ॥

भाषार्थ—सरल और स्पष्ट ही है ।

दूसरा प्रकाश समाप्त ॥

कहुँ हरि हरि हर हर रट रटही । कहुँ मृगशिशु मृगपति
पय पियही । कहुँ मुनिगण चितवत हरि हिय ही ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सुख=स्वाभाविकरीति से । श्रुति=वेद । मृगपति=
सिंह । पय=पानी । मृगपति मृगशिशु पय पियही=मृग
के बच्चे और सिंह एक साथ पानी पीते हैं । कहुँ मुनिगण
चितवन हरि हियही=कहीं मुनि लोग अपने हृदय ही में ईश्वर
को देखते हैं अर्थात् ध्यानावस्थित हैं ।

भावार्थ—अति सरल और स्पष्ट है ।

मूल—नराचञ्छन्द*—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये ।
अदीयमान दुःख, सुख दीयमान जानिये । अदंडमान दान, गर्व
दंडमान भेदधै । अपत्यमान पापग्रन्थ, पत्यमान वेदधै ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—विचारमान=विचारने योग्य । अर्चमान=पूजने
योग्य । अदीयमान=न देने योग्य । अदंडमान=अदण्डनीय,
दण्ड न देने योग्य । दंडमान=दंडनीय, दण्ड देने योग्य । भेद=
भेदभाव (समराष्ट्रि का अभाव) अपत्यमान=न पढ़ने योग्य ।
वै=निश्चय ही ।

भावार्थ—(विश्वामित्र के आश्रम में जितने लोग रहते हैं
उनके लिये और कोई वस्तु तो विचारने योग्य है नहीं)
विचारने योग्य केवल ब्रह्म ही है, पूजने योग्य केवल देवता
ही हैं (अन्य किसी की पूजा नहीं करते), न देने योग्य केवल

* लघु पुरु कन्ठो देव पद षोडश बरत यमान ।

ॐ नमो ब्रह्मदेवे केसवतम नमः ॥

दुःख ही है (अर्थात् इतने उदार हैं कि सब को सब कुछ देते हैं, केवल दुःख किसी को नहीं देते), सुख ही देने योग्य पदार्थ है (सब लोग यही चाहते हैं कि हम सबको सुख ही दिया करें), दीन जीव ही अदण्डनीय हैं (दीन जीवों को दंड नहीं दिया जाता), दंड देने योग्य गर्व और भेद भाव ही हैं (जो गर्व करते हैं वा भेदभाव रखते हैं उन्हींको दंड दिया जाता है अन्य को नहीं), पाप सिखानेवाले ग्रंथ ही अपाठ्य समझे जाते हैं (अन्य सब ग्रंथ पढ़े जाते हैं) और वेद ही पढ़ने योग्य ग्रंथ है (जो पढ़ता है सो वेद ही पढ़ता है) ।

अलंकार-परिसंख्या ।

शुभ, सुख, सुख, सुख और पति
केवल ही देते हैं

मूल-विशेषक छंद-साधु कथा कथिये दिन केशवदास दमन
जहाँ । निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ । पावन वास
सदा ऋषि को सुख को वरधै । को वरधै कवि ताहि विलोकत
जी हरधै ॥ ४ ॥

केशवदास के दिनेश, संन्यासि
सुख, सुख के वरधै मन ही

शब्दार्थ-दिन=प्रतिदिन । निग्रह=दमन करना, दवाना ।

मान=(१)अहंकार (२)परिमाण । वास=निवासस्थान ।

विलोकत=देखते ही ।

भावार्थ-प्रतिदिन जहाँ केवल साधु कथा (उत्तम वार्ता) ही कही जाती है (सिवाय उत्तम कथा वार्ता के और कोई वार्ता होती ही नहीं), वहाँ केवल मन ही का दमन किया जाता है

• पंच भगवत भरी अंत गुरु के इतने वरध सुताज ।

भगवत छंद विशेषतः केशवदास हरिराज ।

(अन्य किसी का नहीं), मान (अहंकार) किसी में नहीं है; केवल 'दिनमान' शब्द में नाममात्र के लिये 'मान' शब्द (बोल चाल में सुनाई पड़ता) है। वह विश्वामित्र का पवित्र आश्रम सदा सुख की वर्षा किया करता है (वहां सब जंतु सुखी ही रहते हैं) उसका माहात्म्य कौन कवि वर्णन कर सकता है, केवल उसके दर्शन मात्र से मन हर्षित हो जाता है।
अलंकार-परिसंख्या और संबधातिशयोक्ति।

* (यज्ञ-रक्षण)

मूल—बंचला छन्द*—रक्षिये को यज्ञ कुल बैठ वीर सावधान। होन लाग होमके जहां तहां सवे विधान। भीम भौंति ताड़का सु भंग लागि (कर्न) आय । वान तानि राम पै न नारि जानि छाँड़ि जाय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कूल=निकट, किनारे। सावधान=सजग होकर। विधान=क्रिया विधि। होम=हवन। भीम भौंति=बड़े भयकर दंग से। भंग लागि कर्न आय=आकर यज्ञ भंग करने लगी। भावार्थ—राम और लक्ष्मण दोनों वीर भ्राता सजग होकर यज्ञ की रक्षा के लिये यज्ञ-स्थल के निकट बैठे और जहां तहां हवन (यज्ञ) की क्रिया विधि होने लगी। (हवन होता हुआ देख कर) ताड़का नाम्नी राक्षसी ने आकर भयंकर दंग से यज्ञ को भंग करना आरंभ कर दिया। राम जी

*यज्ञ ही यज्ञ लघु दीर्घवे यज्ञे पद पांडुरस वर्ध ।

चाह उंद यह बंचला शगडत कवि --- - -

ने बाण तो ताना परंतु ताड़का को स्त्री समझ कर वह बाण उस पर छोड़ा नहीं जाता (स्त्री पर आघात करना वीरधर्म-विरुद्ध बात है) ।

मूल—(ऋषि) सोरठा-कर्म करति यह घोर, विप्रन को दसहूँ दिसा । मत्त सहस्र गज जोर, नारी जानि न छोड़िये ॥ ६ ॥

भावार्थ—(राम जी को संकोच में पड़ा हुआ देखकर विश्वामित्र जी कहते हैं कि) हे राम ! यह ताड़का सब ओर ब्राह्मणों को सताने के लिये घोर पापकर्म किया करती है, एक हजार मस्त हाथियों का बल इसमें है, इसे स्त्री (अबला) जान कर छोड़िये मत ।

मूल—(राम)—शशिवदना छंद-सुनि मुनि राई । जग सुख दाई ॥ कहि अब सोई । जेहि यश होई ॥ ७ ॥

भावार्थ—(राम जी ने कहा) हे जगत को सुख देनेवाले मुनिराज ! सुनिये, मुझसे अब वह बात कहिये, जिससे मेरा यश हो (अर्थात् कोई ऐसा उदाहरण बतलाइये जिससे अगर मैं इस स्त्री को मारूँ तो मुझे लोग स्त्रीवध का अपयश न दे सकें) ।

मूल—(ऋषि)—कुंडलिया-सुता विरोचन की हुती दीरघजिहा नाम । सुरनायक सो संहरी परम पापिनी वाम । परम पापिनी वाम बहुरि उपजी कविमाता । नारायण सो हती चक्र चिन्ता-मणि दाता । नारायण सो हती सकल द्विज दूषण संयुत । त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—सुरनायक=इन्द्र । संहरी=मारी । कवि=शुक्राचार्य । हती=मारी । नारायण सो=नारायण की कसम खाकर

कहता हूँ । हती=थी । सकल द्विज दूषण संयुक्त=सब ब्राह्मणों के लिये जो कार्य दूषणवत् था उसी दूषण से वह संयुक्त थी । त्यौं=उसी प्रकार यह ताड़का भी द्विज द्वेषिणी है ।

भावार्थ—दैत्यराज विरोचन की पुत्री, जिसका नाम दीपे-जिह्वा था, बड़ी पापिनी स्त्री थी । उसे इन्द्र ने मारा था । उस के बाद शुक्राचार्य की माता बड़ी पापिनी हुई, उसे नारायण ने (जो चिंतामणि के समान सेवकों को मन बाँछित फल देनेवाले हैं, इन्द्र के कहने से) अपने निज चक्र से मारा । मैं नारायण की सौगंध खाकर कहता हूँ कि जैसे वह (कविमाता) सब ब्राह्मणों (देवताओं) की द्वेषिणी थी, वैसे ही यह ताड़का भी है, इसलिये हे त्रिभुवन नाथ (रामचंद्र) तुम इसे पुत्रों सहित मार डालो ।

अलंकार—इस छन्द में 'परम पापिनी वाम' और 'नारायण सो हती' की आवृत्ति से यमक अलंकार सिद्ध होता है ।

सूचना—यदि "नारायण सौ हती" में यमक न माना जायगा तो पुनरुक्ति दोष आजायगा, जो केशव ऐसे महाकवि के महाकाव्य में हो नहीं सकता ।

मूल—[ऋषि]—दोहा—द्विज दोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि । राम विराम न कीजिये वाम ताड़का तारि ॥ ९ ॥

भावार्थ—विप्रद्रोही के मारने में सोच विचार न करना चाहिये, क्या पुरुष और क्या स्त्री (यदि वह विप्रद्रोही हो तो उसे निश्चय मार देना चाहिये) हे राम ! अब देर

मत करो, इस दुष्टा स्त्री ताड़का को तारो (अपने हाथों मारकर सुगति दो) ।

मूल—मरहटा छन्द—यह सुनि गुरु वानी, धनु-गुन तानी जानी द्विजदुखदानि । ताड़का संहारी, दारुण भारी, नारी अति बल जानि । मारीच विडान्यौ जलधि उतान्यौ मान्यौ सबल सुवाहु । देवन गुण (पख्यौ) पुष्पन (बख्यौ) हृष्यौ अति सुरनाहु ॥ १० ॥

शब्दार्थ—धनु गुन=धनुष का रोदा । दारुण=कठिन । अति बल=प्रबल । विडान्यौ=भगा दिया । देवन गुण पख्यौ=देवताओं ने रामचन्द्र के गुण को परख लिया । सुरनाहु=इन्द्र । हृष्यौ=(इस हेतु कि इन्द्र को निश्चय होगया कि ईश्वर-वतार होगया, अब रावण मारा जायगा) ।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

मूल—दो०—पूरण यज्ञ भयो जहीं जान्यो विश्वामित्र ।

धनुषयज्ञ की शुभ कथा लागे सुनन विचित्रा ॥ ११ ॥

भावार्थ—सरल और स्पष्ट ही है ।

अलंकार—यज्ञ और धनुषयज्ञ में 'यज्ञ' की आवृत्ति से लटानुप्रास है ।

मूल—चंचरी छंद*—आइयो तेहि काल ब्राह्मण यज्ञ को यल देखि कै । ताहि पूंछत बोलि कै ऋषि भौंति भौंति विशेषि कै ॥ संग सुन्दर राम लक्ष्मण देखि देखि सु हर्षई । बैठि कै सोइ राज मंडल वर्णई सुख वर्षई ॥ १२ ॥

भावार्थ—सरल ही है—

मूल—(ब्राह्मण)—शार्दूलविकीर्णित छन्द

सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना ।

तत्कार्य समग्र व्यग्रमिथिलावासी जना शोभना ।

राजा राज पुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्रदा ।

नाना देश समागता नृपगणा पूज्या परा सर्वदा ॥१३॥

शब्दार्थ—शोभन=सुन्दर । संभार=प्रबंध । संभावना=विचार ।

तत्कार्य=अपने अपने काम में । समग्र=सब । व्यग्र=चित्त से

लगे हुए । समागता=आए हुए हैं । पूज्यापरा=दूसरों से पूजे

जाने योग्य ।

सूचना—जनक पुर से आया हुआ एक ब्राह्मण पथिक

विश्वामित्र के यज्ञ में यह कथा वर्णन करता है । यहाँ से

लेकर पांचवें प्रकाश के दूसरे छन्द तक सब वाक्य उसी

ब्राह्मण के मुख के समझने चाहिये ।

भावार्थ—नाना देशों से आये हुए सम्माननीय राजागण

जनकपुरमें एकत्रित हैं । राजा जनक, और राज पुरोहित

(सहायदादि) तथा उनके मित्र और सुमंत्र देनेवाले मंत्री

गण, तथा मिथिला पुर के सबही सुन्दर पुरवासी जन, सब

अपने अपने काम में चित्त से लगे हुए हैं, क्योंकि सीता

के सुंदर विवाहोत्सव (स्वयंवर सभा) की सामग्री तथा

प्रबंध का विचार सबही के चित्त में चढ़ा हुआ है ।

मूल—दोहा—छन्द परशु को शोभिर्ज सभा मध्य कोदण्ड ।

मानहु शेष अशेषघट धरत्नहार वरिष्ठ ॥ १४ ॥

भावार्थ—खण्डपरशु=महादेव । अशेष=समस्त । धर=धरती, पृथ्वी । वरिवंड=प्रबल ।

भावार्थ—समाके बीच में महादेव का धनुष रक्खा हुआ ऐसा शोभायमान है मानो सारी पृथ्वी को धारण करनेवाला प्रबल शेषनाग है ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूप्रेशालंकार ।

मूल—सवैया—

शोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्वल छाई ।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जोन्हाई ॥
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सवै सुखदाई ।
देवन स्यौं जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई ॥१५॥

शब्दार्थ—ईश=ब्रह्मा । सुधाधरमंडल=चंद्रमा का परिवेष (वर्षाऋतु में जो कभी कभी चंद्रमा के इर्दगिर्द गोल धरा सा दिखाई पड़ता है) । स्यौं=सहित, समेत ।

भावार्थ—हाथीदांत की बनी हुई सुन्दर उज्वल छविवाली मंचानों की ऐसी पंक्ति शोभा दे रही है । मानो ब्रह्माने चंद्रमा के परिवेष की ज्योति को पृथ्वीपर सुधारके रख दिया है । उसी पर सब सुन्दर राजकुमार बैठे हुए हैं । सो वह समाज कैसी शोभित होती है, मानो देवताओं सहित देवसभा ही सीता के स्वयंवर को देखने के लिये आई हो ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूप्रेशा ।

मूल-दोहा-नचति मंच-पंचालिका कर सकालित अवार ।

नाचति है जनु नृग्न की चित्त-वृत्ति मुकुमारारक्ष

शब्दार्थ-पंचालिका=(१)नटी, (२)पाँचो पंक्तियों। कर=हाथ, हस्तक। संकालित=युक्त। मंच-पंचालिका=मंच की पाँचोपंक्तियाँ।

भावार्थ--(राजा लोग पंचावली पर बैठे हुए हाथ उठा उठाकर एक दूसरे से बातें करते हैं वा परस्पर प्रचारते हैं, उसीकी उत्प्रेक्षा है कि) मंचपंचावली रूपी वेश्या हाथ उठा उठाकर अर्थात् हस्तक के अनेक भाव बता बता कर नाचती है, (अर्थात् कभी झुकती है कभी पुनः ऊपर को उठती है) मानो राजाओं की मुकामलचित्तवृत्ति नाचती है (अर्थात् सब राजा अपने अपने अनेक प्रकार के विचार हाथ उठाउठा कर प्रकट करते हैं)।

मलंकार--उक्तविषया वस्तुल्लेखा ।

मूल-सोरठा-सभामध्य गुण ग्राम, धंदी सुन द्वे शोभहीं ।

सुमति विमति यहि नाम, राजन को वर्णन करहि॥१७५

शब्दार्थ-गुणग्राम=गुणों के समूह अर्थात् बड़े गुणों।

भावार्थ--उस सभा में बड़े गुणी (अच्छे जानकार, जो सब राजाओं को अच्छी तरह जानते थे) दो बंदीजन (भाट) शोभायमान हैं। एक का नाम सुमति दूसरे का नाम विमति है। वेही दोनों सब राजाओं का परिचय वर्णन करते हैं। (सुमति प्रश्न करके प्रत्येक राजा का परिचय पूछता जाता है, और विमति बड़ी चतुराई से उत्तर देता है। सुमति विमति

को इस बात चीत में 'श्लेष'-अलंकार की अच्छी गंभीर छटा दिखलाई गई है ।

मूल—(सुमति) दोहा—

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विशाल ।

सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—सुरभि=वसन्त ऋतु । मुकुलित=मंजरीयुक्त ।

रसाल=आँव ।

भावार्थ—सुमति पूंछता है, यह कौन राजा है जो अपनी रोमांचित विशाल भुजा को देख रहा है । मानो स्वयंवर रूपी वसन्त ऋतु ने आँव की शाखा को मंजरीयुक्त कर दिया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—(विमति) सौरठा—

जेहि यश परिमल मत्त चंचरीक चारण फिरत ।

दिशि विदिशन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड नृप ॥१९॥

शब्दार्थ—परिमल=सुगंध । चंचरीक=भँवर । चारण=वंदीगण ।

अनुरक्त=अनुरागयुक्त । मल्लिकापीड=(१)मल्लिक नामक

पहाड़ी देश का शिरोभूषण (राजा) (२)चमेलीकी माला ।

भावार्थ—(विमति उत्तर देता है) जिसके यश रूपी सुगंध से मस्त होकर भौर रूपी वंदीजन अनुरागयुक्त होकर चारों ओर घूमते फिरते हैं, यह वही मल्लिक नामक पार्वत्य प्रदेश का राजा है ।

अलंकार—इस में चमेली की माला और राजा का सम अभेद रूपक है ।

सूचना—श्लेष से इसका अर्थ चमेली की माला पर भी पड़ित हो सकता है ।

मूल—(सुमति) दोहा— ×

जाके सुख मुखबास ते पासित होत दिगंत ।

सो पुनि कहि यह कौन नृप शोभित शोभ अनंत ॥ २० ॥

शब्दार्थ—सुख=सहज, स्वाभाविक । शोभ=शोभा ।

भावार्थ—(सुमति पूंछा है) जिसके तन की स्वाभाविक सुगंध से सब दिशाएँ सुवासित हो रही हैं, जो अनंत शोभा से शोभित हो रहा है, वह कौन राजा है, सो पुनः मुखसे कहो ।

मूल—(विमति) सौरठा—

× राजराजदिग-वाम-भाल-लाल लोभी सदा ।

नाति प्रसिद्ध जगनाम काश्मीर को तिलक यह ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—राजराज=कुबेर । राजराजदिग=उत्तर दिशा ।

भावार्थ—उत्तर दिशा रूपी ली के मस्तक के लाल (माणिक्य अटित बेना) का सदैव लोभ रखनेवाला, जिसका नाम संसार में अति प्रसिद्ध है, यह काश्मीरदेश का राजा है ।

सूचना—इसके श्लेष से और कई अर्थ हो सकते हैं

मूल—(सुमति)दोहा—

× निज प्रताप दिनकर करत लोचन कमल विकास ।

पान स्रात मुसुकात मुमु को यह केसवदास ॥२२॥

भावार्थ—जो अपने प्रताप रूपी सूर्य के द्वारा सब के कमल

रूपी नेत्रों को विकसित कर रहा है (जिसे सब लोग आखें फाड़ फाड़ कर देख रहे हैं) और पान खाये हुए मुसकुरा रहा है यह कौन राजा है ?

मूल—(विमति)सोरठा—

× नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो ।
काटितट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई ॥ २३ ॥

भावार्थ—राजाओं में माणिकवत् (लालवत्=बड़ा रागी, अत्यंत प्रेमी) और सुन्दर, तथा दक्षिण दिशा रूपी स्त्री का मनभाया हुआ (प्रेमी नायक) जिसकी कमर में सुन्दर वस्त्र पड़ा हुआ है, यह राजा सुन्दर और शुभ कांचीपुरी को मंडित करने वाला है (कांची पुरी का राजा है) ।

मूल—(सुमति)दोहा—

× कुंडल परसन भिस कहत कहौ कौन यह राज ।
शंभु सरासनगुण करौ करणालंबित आज ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुमति पूंछता है कहौ विमति, यह कौन राजा है, जो कुंडल छूने के बहाने से (मानों) यह कह रहा है कि आज मैं शंभु के धनुष की डोरीको अवश्य कानतक खींचूंगा ।

मूल—(सुमति)सोरठा—

× जानहि बुद्धि निधान, मत्स्यराज यहि राज को ।
समर समुद्र समान जानत सब अवगाहि कै ॥ २५ ॥

भावार्थ—(विमति कहता है) हे बुद्धि निधान सुमति, इस

राजा को तुम मत्स्यराज (मत्स्यदेश का राजा) समझो । यह राजा समर को समुद्र की तरह मथ डालना भली प्रकार जानता है । (श्लेष से इसका अर्थ किसी बड़े मच्छ पर भी पड़ित हो सकता है) ।

मूल—(सुमति, दोहा—

अंगराम संज्ञित कश्चि भूषण भूषित देह ।

कहत विदूषक सौं कछु सो पुन को नृप पद॥२६॥

भावार्थ—(सुमति पूछता है) जिसका शरीर चंदन, केशर आदि के लेश से संज्ञित (रंगा हुआ) और सुन्दर है तथा जिसका शरीर सुन्दर भूषणों से विभूषित है, और जो विदूषक से कुछ कह रहा है वह कौन राजा है सो पुनः मुझे बतलाओ ।

मूल—(विमति)सोखा—

चंदन चित्र तरंग त्रिपुरराज यह जानिये ।

बहुत बाहेनी संग मुकुटामाल विशाल उर॥२७॥

भावार्थ— जिसके शरीर पर चंदन, की चित्रविचित्र तरंगें सी देख पड़ती हैं, बहुत सी सेना जिसके साथ है और जिसके विशाल हृदय पर मोतियों की माला है, यह सिन्धु देश का राजा है । (श्लेष से इसका अर्थ समुद्र पर भी पड़ित हो सकता है) ।

मूल—दोहा—सिगरे राज समाज के कहे गोत सुप्रथाम ।

देश स्वभाव प्रभाव धरु कुल बल विक्रम नाम॥२८॥

भावार्थ—स्पष्ट है ।

मूल—घनाक्षरी छंद—पायक पवन, मणि पद्म पतन पिष्ट जेत

जोतिवंत जग ज्योतिपिन गाये हैं। असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिन्धु, केशव चराचर जे वेदन वताये हैं। अजर अमर अज अगी औ अनंगी सब वराणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाये हैं। सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे को भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—मणिपन्नग=बड़े बड़े पन्नग अर्थात् शेष, वासुकी इत्यादि। पतंग=पक्षी। पितृ=पितृलोक निवासी। जोतिवंत=प्रतापी (चन्द्र सूर्यादि)। विश्वरूप=विश्व भरके रूपधारी लोग।

भावार्थ—सरल ही है।

श्लोक—सोरठा—कहौ विमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनायके।
चहूं ओर कर फेरि, सब ही को समुझाय के ॥३०॥

श्लोक—गीतिका—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु का धनु कर्षिहै। पुनि श्रेष्ठा के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षिहै। वह राज होइ कि रंक केशवदास सो सुख पाइहै। नृपकन्यका यह तालुके उर पुष्पसालहि नाइहै ॥३१॥

श्लोक—दोहा—नेक शरासन आसनै तजै न केशवदास।
उयम के धाक्यो संवै राज समाज प्रकास ॥ ३२ ॥

भावार्थ—उद—नं० ३०, ३१ तथा ३२ का भावार्थ सरल ही है।

श्लोक—चुंदरी—शक्ति करी नाहि भक्ति करी अय। सो न नये तिल शीश नये सब। देख्यो मैं राज गुमारत के वर। चाप चाक्यो नाहि आप चड़े सर ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—शक्ति=बल। तिल=तिलभर भी। वर=बल।

सर=गदहा ।

भावार्थ—(विनति कहता है) इस समय राजाओं ने अपना अपना बल नहीं लगाया, वरन् शिव जी का धनुष जान कर उस पर अपनी भक्ति दर्शाई है (केवल उसे छूकर भक्ति से शक्ति नवाया है), धनुष तो तिलमात्र भी नहीं नया, वरन् सब के सिर झुक गये। मैं राजकुमारों का बल देख चुका। धनुष तो किसी से न चढ़ा, (धनुष की प्रत्यंचा कोई न चढ़ा सका) वरन् सब राजकुमार स्वयं ही गदहे पर सवार हुए (अपनी प्रतिष्ठा खोई) ।

अलंकार—परिसंख्या ।

मूल—मल्लोच्छ्रित-दिगपालन की भुवपालन की लोकपालनकी किन मातु गई च्यै । कत मांड भये उठि आसन तैं कदि केशव शंभु सगसन को छैं । अरु काहु चढ़ायो न काहु नवायो न काहु उढायो न आंगुरहू छैं । कहु स्यारथ मो न भयो परमारथ जाय है धीर चले वनिता छैं ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—किन मातु गई च्यै=माता का गर्भ क्यों न गिर गया । मांड भये=अपने हाथों अपनी अप्रतिष्ठा कराई ।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

अलंकार—तृतीय विपन ।

(इति तीसरा प्रकाश)

चाथा प्रकाश

दोहा—कथा चतुर्थ प्रकाश में बाणासुर संबाद ।

रावण सों, अरु धनुष सों दशमुख बाण विषाद ।

मूल—दोहा—सबही को समझो सबन बल विक्रम परिमाण ।
सभा मध्य-ताही समय आये रावण बाण ॥ १ ॥

शब्दार्थ—विक्रम=करतूत । परिमाण=मात्रा । बाण=बाणासुर ।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है ।

मूल—डिल्लाछंद—नर नारि सबै । भय भीत तवै ॥
अचरज्जु यहै । सब देखि कहै ॥ २ ॥

भावार्थ—रावण और बाणासुर को आया हुआ देखकर,
सब नर-नारी भयभीत हुए और सब ने यही कहा कि यह
तो बड़े आश्चर्य की बात है ।

मूल—दोहा—हे राक्षस दशशीश को दैयत बाहु हजार ।
कियो सबन के चित्त रस अद्भुत भय संचार ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह दस मूंड वाला राक्षस कौन है ? और यह
हजार भुजा वाला दैत्य कौन है ? (इन दोनों की अद्भुत
आकृतियां और भयंकर भेस देख कर) सबों के चित्त
में अद्भुत और भयानक रस ने संचार किया (सब को
आश्चर्य हुआ और सब डर गये) ।

अलंकार—'को है' शब्द में देहरी-दीपक अलंकार है ।

मूल—(रावण)-विजोद्घाट्ट—संभुकोदंड है। राजपुत्री किने ।
दूक द्वे तीन के । जाहुँ लंकाहिं छै ॥ ४ ॥

भाषार्थ—रावण मुमति से कहता है महादेव का धनुष मुझे
दो और बताओ कि राजपुत्री कहां है ? धनुष को तोड़ कर
दो तीन खंड कर डालूँ और उसे लंका को छे जाऊँ ।

मूल—(विमति)—शशिवदनाछंद—दसशिर आओ । धनुष
उठाओ ॥ कछु बल कीजै । जग जस लीजै ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(विमति उत्तर देता है) हे दसशिर आइये और धनुष
को उठाइये । कुछ बल कीजिये और जगत में यश लीजिये ।

मूल—(बाण) गीतिकाछंद—दशकंठ रे शठ छांदि दे दठ बार
बार न डोलिये । धय आजु राज समाज में बल साजु चिच
न डोलिये ॥ गिरिराज ते गुह जानिये सुरराज को धनु
दाप छै । सुख पाय ताहि चढ़ायके घर जाहि रे यश
साय छै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बल साजु=पराक्रम करो । चिच न डोलिये=साहस
न हारो । सुरराज=महादेव ।

भाषार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

मूल—मंथना छंद*—वाणी कही वान । कीन्ही न सो कान ॥
अद्यापि आनी न । रे वंदि कानीन ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—कीन्ही न सो कान=मुनी अनसुनी कर गया; मुन
कर भी ऐसा भाव जताया मानो मुना ही नहीं । अद्यापि=

* मंथना छंद ३ पद बरायुन १ पद ५ धेना छंद ।

(अभी तक । आनी न=नहीं लाया (सीता को) । कानीन=कन्या से उत्पन्न (क्षुद्र, चोटी का) ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—(वाण)मालतीछंद*—जुपै जिय जोरें । तजौ सब शौर ॥
सरासन तोरि । लहौ सुख कोरि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ और भावार्थ—सरल है ।

मूल—(रावण) दंडकछंद—वज्रको अखर्व गर्व गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै ल अंगना । खंडित अखंड आशु कीन्हो है जलेश पाशु, चंदन सी चन्द्रिका सौ कीन्हीं चंद बंदना ॥ दंडक में कीन्हीं कालदंड हू को मान खंड मानो कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना । केशव कोदंड विषदंड पेसो खंडे अब भरे भुजदंडन की बड़ी है विडंबना ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—अखर्व=बहुत बड़ा । पर्वतारि=इन्द्र । सुपर्व=देवता । अंगना=स्त्री । आशु=शीघ्र ही । जलेश=वरुणदेव । पाशु=फांसी, कमंड । दण्डक=एक दंड में । कालदंड=यमराज की गदा । कालखंड=(कालका खंडन करनेवाला) ईश्वर । कोदंड=धनुष । विषदंड=कमल की नाल, पौनार । विडंबना=लज्जा की बात ।

भावार्थ—(रावण कहता है)—मेरे जिन भुजदंडो ने वज्र का भारी गर्व गंजनकर डाला (वज्र भी जिन्हें नहीं काट सका),

* जगन दोष पट वरुण गुत रचहु मालती छंद ।

जिन्होंने ने इन्द्र को जीत लिया, जिनके डर से सब देवों अपनी अपनी स्त्रियां ले ले कर भाग गये, वरुण के अखंड फांस को जिन्होंने शीघ्र ही तोड़ डाला, और चन्द्रमाने भी न लड़ सकने के कारण) जिन भुजदंडों की चंदन समान शीतल चन्द्रिकासे पूजा की, एक घड़ी मात्रमें जिन्होंने काल-दंडका भी मान ऐसे संहित करवाला जैसे स्वयं परब्रह्म परमेश्वर काल ही को संहित करवाले हैं। भला वही मेरे प्रबल-भुजदंड अब इस कमलनाल की भांति (अत्यन्त कमजोर) धनुष को तोड़ें, यह काम मेरे भुज दंडों के लिये बड़ी लज्जा की बात है ! (रावण, वहीने से धनुष उठाने तथा तोड़ने से इनकार करता है) ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

मूठ—तुंगान छंद—

(वाण)—बहुत बदन आके । विविध वचन ताके ।

(रावण)—बहुभुज युत जोई । सबल कदिय सोई ॥ १० ॥

शब्दार्थ—बदन=मुख । विविधि=अनेकप्रकारके (असत्य, छलवृत्त इत्यादि) ।

भाषार्थ—(वाणासुर कहता है)—हां ठीक है ! जिसके बहुत से मुख होते हैं उसके वचन भी अनेक प्रकार के होते हैं (अर्थात् असत्य बोलता है, छल कपट युक्त वचन बोलता

है) । (रावण जवाब देता है) हां ठीक है ! जिसके बहुत सी भुजायें होती हैं वही तो बली कहलाता है (अर्थात् कहलाता ही भर है, वास्तव में बली होता नहीं) ।

अलंकार—काकुचक्रोक्ति ।

मूल—दोहा—

(रावण)—अति असार भुज भार ही बली होडुगे वाण ।

(वाण)—मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ विधान ॥११॥

भावार्थ—(रावण कहता है) वाण, इन अत्यंत बलहीन

भुजाओं के बोझ के बल से ही बली कहलाना चाहते हो ?

(वाणासुर कहता है) हे रावण, मेरी भुजाओं ने संसार में

जो काम किया है उसे सुनो ।

मूल—(वाण)—सवैया—

हौं जब ही जब पूजन जात पिताप्रद पावन पाप पणासी ।

देखि फिरौ तबहीं तब रावण सातो रसातलके जे विलासी ।

लै अपने भुजदंड अखंड करौ छितिमंडल छत्र प्रभासी ।

जानै को केशव केतिक वार भे सस के सीसन दान्ह उसीसी ॥१२

शब्दार्थ—हौं=मैं । पापप्रणासी=पापविनाशक । विलासी=

रहनेवाले । अखंड=सम्पूर्ण । छितिमंडल=पृथ्वी । छत्र प्रभा

सी=छत्र के समान । उसासी=दम लेने की फुरसत, आराम,

छुटकारा ।

भावार्थ—(वाणासुर कहता है) जब जब मैं अपने पिता जी के

पवित्र और पापनाशी चरणों की बंदना करने के लिये (पाताल

में रहनेवाले राजा बाल बाणासुर के पिता हैं) जाता हूँ, तब तब मैं सातों रसातलों के निवासियों को देखता हूँ (उनमें से कोई भी मेरे समान बली नहीं है)। मैं समस्त पृथ्वीमंडल को अपने भुजदंडों पर छाता के समान तान लेता हूँ। न जाने कितनी धार मैंने शेषनाग के फलों को (पृथ्वीमंडल को अपने हाथों से धाम कर) दम लेने की फुरसत दी है। (अर्थात् जब मैंने पृथ्वी को उठा लिया तब इस धनुष को उठाना कौन बड़ी बात है)।

अलंकार—काव्यर्यापत्तिगर्भित अत्युक्ति।

मूल—(रावण)—कमलाच्छद*—तुम प्रयत्न जो हुते। भुजबलनि
॥ पितृहि भुघ न्यावते। जगत यश पावते ॥१३॥

(रावण बाणासुर से कहता है) यदि तुम बली बने

और तुम्हारी भुजायें बलसंयुक्त थीं, तो बाप को इस भूमि लोक में लाते, और संसार में यश लेते।

मूल—तोमरच्छद—(वाण)—

पितु वानिये केहि ओक। दिय दक्षिणा सब लो

यह जानु रावन दान। पितु धरु के रस लीन ॥

शब्दार्थ—ओक=घर, निवासस्थान। दीन=बलहीन (ब्राह्मण)।

रस=आनन्द।

भाषार्थ—(बाणासुर कहता है)—पिता को भूलोक में लाकर

* नगन चादि दे सगन पुनि लघुपुसरी अंत।

भाऊ वाण शक्तिवद हयौ कमलाच्छद कहत।

किस स्थान पर बैठालें उन्होंने ने तो सब पृथ्वी दान कर दी है (दान की वस्तु पुनः ग्रहण करना पाप है)। हे दीन (ब्राह्मण) रावण ! तुझे जानना चाहिये कि हमारे पिता ब्रह्मानन्द में मग्न हैं (तेरी तरह विषयानन्द के लिये दौड़े नहीं फिरते)।

मूल—सवैया—

कैटभ सो तरकासुर सो पल में मधु सो मुरसो जेइ मान्यो ।
लोक चतुर्वंश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचान्यो ।
श्रीकमलाकुचकुंकुममंडन-पंडित देव अदेव निहान्यो ।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहुकोकरतार पसान्यो ॥१५॥

शब्दार्थ—श्री कमला-कुच-कुंकुम-मंडन-पंडित=श्री लक्ष्मी जी के कुचों पर केशरचदनादि की मकरिकादिचित्र-रचना बनाने में चतुर पंडित । अदेव=दानव । करतारहु को करतार=ब्रह्मा के भी बनानेवाले (विष्णु) ।

भावार्थ—(बाणासुर अपने पिता बलि की बड़ाई करता है) जिस विष्णु ने एक पल मात्र में कैटभ, नरकासुर, मधु, और मुर नामक दैत्यों को मार डाला (अर्थात् अत्यंत बली थे), जो चौदहों लोकों का रक्षक है, सर्वत्र व्याप्त है (पूरण) और जिसके गुणों का बखान वेद और पुराण करते हैं, जो श्री लक्ष्मी जी के कुचों पर केशर की रचना करने में चतुर पंडित है (अर्थात् साक्षात् लक्ष्मी ही जिसकी स्त्री हैं), जिसकी देवताओं और दैत्यों सबों ने देखा है, उसी ब्रह्माके भी बनाने-

बाले विष्णु ने बलि के सामने भिक्षा मांगने के लिये हाथ फैलाया था। (इसमें मधुकैटभादिक के मारनेवाले कहकर विष्णु की संहारक शक्ति का पता दिया, लक्ष्मीपति जताकर विष्णु की पावनशक्ति का अनुमान कराया और 'ब्रह्मा के नीरचयिता' कहकर सृष्टिकरण शक्ति का परिचय दिया। ऐसे विष्णु भी जिस बलि के सामने सिवाय भीख मांगने के और कुछ न कर सके वह बलि कैसा प्रबल प्रतापी होगा। इसका अनुमान सहजही में हो सकता है। ध्यंग से यह बात निकली कि ऐसे पिता का पुत्र मैं हूँ, तो मेरे बल और प्रताप का भी कुछ अनुमान कर लो, क्योंकि पुत्र में पिता के गुण होते ही हैं)।

२५ छंद में जितने विशेषण वाक्य हैं वे विष्णु के बलावा 'कर' पर भी लग सकते हैं। दोनों दशाओं में छंद के तात्पर्य में कुछ अंतर नहीं आता।

अलंकार—प्रथम निदर्शना।

मूल—(रावण)—दोहा—

हमहिं तुमहिं नाहिं वृक्षिये विक्रम चांद अखंड।

अथ ही यह कहि देहगो मदनकदन-कोदंड ॥ २६

भावार्थ—रावण कहता है अपने अपने बल पराक्रम के में हमको तुमको बहुत बड़ा झगड़ा न करना चाहिये। अभी शंकर का धनुष ही इसका फैसला कर देगा। अर्थात् हम तुम दोनों धनुष को उठावें। जो उठा लेगा ब्रह्मी अधिक बली

लिये हूँ समझा जायगा ।

श्लोक—संयुता छंद—

वृत्त वाण रावण को सुन्यो । सिर राज मंडल में धुन्यो ।
(विमति) जगदीश अब रक्षा करो । विपरीत बात सबै हरो ॥१५॥

भावार्थ—जब रावण और वाणासुर की ऐसी वार्ता (विमति
ने) सुनी, तब उसी समय उसी राजमंडल में वह अपना सिर
पीटने लगा (व्याकुल हो उठा) और बोला कि हे जगदीश
(महादेव) अब हमारी रक्षा करो और जो अमंगल होता
दिखाई देता है उसे हरो (क्योंकि तुम्हारा नाम 'हर' है) ।

श्लोक—दोहा—रावण वाण महाबली जानत सब संसार ।
जो दोऊ धनु करपि हैं ताको कहा विचार ॥१६॥

भावार्थ—रावण और वाणासुर दोनों बड़े बलवान हैं, यह
बात सारा संसार जानता है । यदि दोनों धनुष चढ़ावेंगे तो
फिर क्या होगा ? (अर्थात् यदि दोनों ने धनुष को उठा लिया
तो सीता किसको ब्याही जायगी ?)

श्लोक—(वाण)—सवैया—

केशव और ते और भई गति जानि न जाय कछु करतारी ।
सूरन के मिलिये कहँ आय मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी ।
वादिगयो बकवाद वृथा यह भूलि न भाट सुनावहि गारि ।
चाय चढ़ाइहौं कीरति को यह राज करै तेरी राजकुमारी ॥१९॥

भावार्थ—(वाणासुर कहता है)—दशकुल की कुल होगई ।
ईश्वर की करणी जानी नहीं जाती । मैं तो शूरवीर पुरुषों से

भेंट करने को आया था (धनुष उठाने को नहीं), परंतु यहाँ आने पर सदैव के अविचारी रावण से भेंट होगई, और व्यर्थ विवाद बढ़ गया । हे माट (विमति) तू मूठ करके भी मुझे यह गाली न दे (कि बाणासुर व्याह करने के निमित्त धनुष उठाना चाहता है) । मैं तो इस धनुष को केवल अपनी कीर्ति के वास्ते उठाता हूँ । तेरी राजकुमारी अपना मनमाना राज्य करे (जिसके साथ चाहे अपना विवाह करे) ।

मूल—मधुछंद—(रावण)—

रोके सकै फहु को रे । युद्ध जु रे यम हू कर जोरे ।
राज सभा विनुका करि लेखौ । दोष के राज सुता धनुदेखौ ॥ २० ॥

भावार्थ—(रावण कहता है)— मुझको विवाह करने से कौन रोक सकता है । युद्ध में यमराज भी सामने आकर हाथ जोड़ने लगता है । इस सभा के राजाओं को मैं तृण के समान समझता हूँ । परंतु पहले राजकुमारी को देखलूँ (कि कैसी सुन्दरी है) तब धनुष को देखूँगा ।

मूल—सवैया—(बाण)—

बेगि कहाँ तब रावण सो अरु बेगि चढ़ाउ शरासन को ।
यनाह यनाह कहा कहे छोड़ि दे आसन बासन को ।
जानत है किधौ जानत नाहिन तू अपने मदनासन को ।
ऐसंहि कैसे मनोरथ पूजत पूजे बिना नृपशासन को ॥ २१ ॥

शब्दार्थ— आसन=पिछौना । बासन=बस्त्र (राजोचित बस्त्र) ।
मदनासन=पमंडः तौड़नेवाला (मैं - बाणासुर) । नृपशासन=

परंतु राजा जनककी आज्ञा अर्थात् धनुष को तोड़ने की शर्त ।

और **भावार्थ**—(बाणासुर ने रावण से कहा कि) अब तू शीघ्र ही धनुष को चढ़ा, बातें क्यों बनाता है । सिंहासन छोड़ राजोचित ब्रह्माभूषण उतार, काछा कस, मल्ल रूप से तैयार हो जा । तू अपने अहंकार तोड़नेवाले (मुझको) को जानता है कि नहीं ? विना राजा की आज्ञा पूरी किये हुए वैसे ही तेरा मनोर्थ कैसे पूरा हो सकेगा (अर्थात् मेरे रहते तू विना धनुष तोड़े ही सीता को कैसे विवाह लेगा) ।

जो **मूल**—बंधुछंद—(रावण)—बाण न बात तुम्हें कहि आवै ।

(बाण)—सोई कहौं जिय तोहि जो भावै ?

(रावण)—का करिहौं हम योहीं करेंगे ?

(बाण)—हैहयराज करी सौं करेंगे ॥ २२ ॥

भावार्थ—(रावण) हे बाण तुम्हें बात करने तक का शहर नहीं है । (बाण) तो क्या मैं तुम्हारी चितचाही बात कह दिया करूं तब तुम समझोगे कि मुझे बात करने का शहर है ? (रावण) अच्छा यदि हम विना धनुष तोड़े ही सीता को विवाह लें तो तुम क्या करोगे ? (बाण) वस वही करेंगे जो सहस्रार्जुन ने किया था ।

विशेष—सहस्रार्जुन ने एक समय रावण को विलक्षण जंतु समझ कर पकड़ लिया था, और अगाड़ी पिछाड़ी लगाकर घोड़े की तरह अस्तबल में बांध रक्खा था, पुनः दसो सिरों पर

दोपक रख कर दोबट की तरह नृत्यशाला में खड़ा कर
रक्ता था ।

मूल—दंडकदंड—(रावण)—भौर ज्यों भँवत मृत वासुकी
गणेशायुत मानो मकरंद बुंद माल गंगा जलकी । उड़त पराग
पट, नाल सी विशाल बाहु, कहा कहीं केशोद्रास, शोभा
पल पल की । आयुध सघन सर्वमंगला समेत शर्व पर्वत
उठाय गति कौन्ही है कमल की । जानत सकल लोक लोक
पाल दिगपाल जानत न बाण बात मेरे बाहुबल की ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—भूत=शंकर के गण । वासुकी=शैलपुत्रादि । पट=
पार्वतीजी के वस्त्र । नाल=कमल की दण्डी । आयुध=महादेव
जी, पार्वती, गणेशादि के अस्त्रादि अर्थात् त्रिशूल, पिनाक,
सङ्ग, अंकुश इत्यादि । सघन=अनेक । सर्वमंगल=पार्वती ।
शर्व=शिव । गति कौन्ही है कमल की=कमल का आकार
बना दिया ।

—हे बाणासुर ! जब सर्वलोकपाल और समस्त
पाल मेरे बाहुबल की बात जानते हैं, तब एक तूही
जानता तो क्या हुआ ? मैं ने जिस समय कैलाश को उठाया
था उस समय शंकर के समस्त गण, वासुकी, और गणेशादि
इस तरह मँडराते फिरते थे मानो भँवर हों, और गंगाजल मानो
मकरंद था; पार्वतीजी का पट (वस्त्र) फड़प उठा था वही
पराग था और मेरी विशाल बाहु नाल के समान; शी,
समय की पलपल की शोभा मुझ से नहीं कही जानती ।

अनेक अस्त्रशस्त्र, पार्वती और महादेव सहित कैलाश को उठा कर कमलके आकार का दृश्य बना दियाथा (जैसे पुष्प का भार नाल को नहीं अखरता, वैसे ही मुझे तनक भी भार नहीं जान पड़ा था)—तात्पर्य यह कि मैं ने इस धनुष सहित सारा कैलाश ही उठा लिया था ।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट रूपक, और उस रूपक से पुष्ट संबन्धातिशयोक्ति ।

मूल—मधुभारछंद—तजि कै सुरारि । रिख चित्त मारि ॥
दशकण्ठ आनि । धनु छुयो पानि ॥ २४ ॥

भावार्थ—वह झगड़ा छोड़कर और क्रोध को चित्तमें ही दबा कर, निकट आकर रावण ने धनुष में हाथ लगाया ।

(ज्यों ही रावण को हाथ लगाते देखा त्योंही विमति बंदी बोला)

मूल—मधुभारछंद—तुम बलनिधान । धनु अति पुरान ॥
पीसजडु अंग । नहि होहि भंग ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे रावण तुम बली हो और धनुष अति पुराना है ।

तोभी चाहे तुम अपने अंगों को (उठाने के उद्योग में)

पीस ही क्यों न डालो, पर धनुष टूटैगा नहीं । (यह सुनकर रावण हट गया) ।

अलंकार—विशेषोक्ति । X

मूल—सवैया—खाण्डित मान भयो सब को नृपमण्डल हारि
रह्यो जगती को । व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल
विमरु लंकपती जा । कोटि उपाय किये काहि केशव केहू न

छाँड़त भूमि रतीको । भूरि विभूति प्रभाव सुमांयहि ज्यो व
चल चित योग-यती को ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—जगती=संसार । निराकुल=बहुत घबड़ाई हुई ।
लंकपती=रावण । विक्रम=उपाय । केहू=किसी प्रकार । रती
कौ=एक रती भर । विभूति=सम्पत्ति । योगयती=योगी ।

भावार्थ—सब का मान स्याण्डित होगया (बल का गर्व
जाता रहा) । संसार के सब राजा हार गये । रावण की मुजार
न्याकुल हो गई, बुद्धि घबड़ा गई, और शारीरिक बल और
उपाय थक गये । केशव कवि कहता है कि करोड़ उपाय करने
पर भी किसी प्रकार वह धनुष एक रती भर भी जैसेही भूमि
नहीं छोड़ता जैसे बहुत संपत्ति के प्रभाव से (लालच से)
योगी का मन सहज ही नहीं दिगता ।

भलंकार—उदाहरण ।

मूल—पदटिका—

धनु अति पुरान लंकेश जानि । यह बात बाण सों कही आवि ।
हो पलक माहि लेहो चदाय । कछु तुमहूँ तो देखो उटाय ॥ २७ ॥

भावार्थ—रावण ने धनुष को अति पुराना समझ कर, बाणा-
सुर के पास आकर यह बात कही कि मैं तो उस धनुष को
एक पलमात्र में उटालूंगा, भला जरा तुम भी तो चटा देखो
(अंदाज करलो कि तुमसे उटैगा कि नहीं) ।

(बाण)दोहा— मेरे गुरु को धनुषयह सीता मेरी माय ।
तुम्हें भांति भलमंजसे, बाण चले सुखपाय ॥ २८ ॥

भावार्थ—वाणासुर ने कहा कि यह धनुष तो मेरे गुरु शिवजी का है, और सीता मेरी माता है । दोनों प्रकार से यह कार्य मेरे लिये अड़चन का है । यह कह कर वाणासुर तो सहपं चला गया ।

मूल—(रावण) तोटक छंद—अब सीय लिये चिन हों न दुरौ ।
कहु जाहु न तौलागे नेम धरौ । जबलौ न सुनौ अपने जनको ।
अति आरत शब्द हते तन को ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—नेम धरौ=प्रतिज्ञा करता हूं । जन=सेवक । हते तन को=(तन में हते को) शरीर में चोट लगने की सी पुकार ।

भावार्थ—रावण ने कहा कि मैं तो विना सीता को लिये हुए यहां से न हटूंगा । मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं यहां से तब तक न हटूंगा जब तक कि मैं अपने किसी सेवक की आर्त पुकार न सुनूंगा कि “दौड़ो नाथ शत्रु ने मुझे मार डाला” ।

मूल—(ब्राह्मण)—मोदकछन्द—काहु कहु सर आसर मान्यो ।
आरतशब्द अकाश पुकाय्यो । रावण के वह कान पय्यो जब ।
छोडि स्वयम्बर जात भयो तव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—सर=वाण । आसर=असुर । आरत शब्द=दुःख-पूर्ण शब्दसे ।

भावार्थ—(जनकपुर से आया हुआ ब्राह्मण कहता है) हे विश्वामित्र जी, इतने ही मैं कहीं किसी ने किसी असुर को वाण मारा और उसने आकाश में दुःखपूर्ण वचन से गुहार मचाई-

वह शब्द जब रावण ने सुना, तब स्वयम्बरभूमि छोड़ कर वह चला गया ।

मूल—दोहा—जय जान्यो सब को भयो सयही विधि व्रत मंग
धनुष धन्यो लै भवन में राजा जनक अनंग ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—अनंग=विदेह ।

चतुर्थ प्रकाश समाप्त ।

मोकहें होके सकैं कहु को रे ।
कुई पुरे मारू कर जो रे ।
रामसगल तियुका करि लेवौ ।
होके लै रामसुता धनु देवौ ।



पांचवाँ प्रकाश

दो०—यह प्रकाश पंचम कथा, राम गवन मिथिलाहि ।
 उद्धारण गौतम-धरणि स्तुति अरुणोदय आहि ॥
 मिथिलापति के बचन अरु धनुभंजन उर धार ।
 जैमाला दुंदुभि अमर वर्षन फूल अपार ॥

मूल—(ब्राह्मण)—तारकछंद—जब आनि भई सब को दुचित्ताई ।
 फहि केशव काहु पै मेटि न जाई । सिय संग लिये ऋषि की
 तिय आई । इक राजकुमार महा सुख दाई ॥ १ ॥

शब्दार्थ—दुचित्ताई—सन्देह (कि सीता का विवाह होगा
 कि नहीं) ।

भावार्थ—जब सब को ऐसा सन्देह होने लगा कि अब
 सीता का विवाह होगा कि नहीं, और, यह संदेह किसी से
 मिटाया नहीं जा सकता था (कोई नहीं कह सकता था कि
 क्या होगा) तब अनायास एक त्रिकालदर्शी ऋषिपत्नी
 आई । वह एक चित्र लिये हुए थी जिसमें सीता के चित्र
 के साथ एक अति सुन्दर राजकुमार का चित्र था (उस चित्र
 में लिखा राजकुमार कैसा था सो आगे के छंद में देखिये) ।

मूल—मोहनछंद—

सुंदर वपु अति स्यामलसोहै । देखत सुर नर को मनमोहै ।
 लिखि लाई सिय को वर पेसो । राजकुमारहि देखिय जैसो ॥२॥

भाचार्थ—वह ऋषिपत्नी सीता का घर चित्र में ऐसे ही रूप का लिख लाई थी जिस रूपका कि मैं इस (रामकी जो इशारा करके) राजकुमार को देखता हूँ ।

मूल—तोटकछन्द—

ऋषिराज सुनी यह बात ज्यों । सुख पाए चले मिथिलाहि त्यों ।
वन राम शिला दरसी जयहीं । तिय सुन्दर रूप भई तयहीं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ऋषिराज=विश्वामित्र । शिला=शिखा, रूप में महलया । दरसी=देखी ।

१५ विश्वामित्र ने ज्योंही ब्राह्मण के मुख से बात सुनी, त्योंही आनन्दित होकर मिथिला को चल पड़े । चलते गे, एक वन में ज्योंही राम ने एक शिला देखी त्योंही (दृष्टि पड़ते ही) वह शिला सुन्दर रूपवाली सी हो गई ।

अलंकार--वपलातिशयोक्ति ।

मूल—दोहा—पूछी विश्वामित्र सो रामचन्द्र अकुछार ।
पाहन ते तिय क्यों भई कहिये मोहि सनुझार ॥ ४ ॥

—(विश्वामित्र)—सौरठा—

गौतम धी यह नारि, इन्द्र-दोष दुर्गति गई ।
देखि तुन्हें नरकारि, परम पवित पावन भई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—इन्द्र दोष दुर्गति गई=इन्द्र द्वारा दूषित किये जाने पर गौतम के शप से दुर्गति को प्राप्त हुई (पत्थर हो गई थी) । नरकारि=नरकामुरः के शत्रु अथवा नरक के शत्रु

(मुक्तिदाता) श्री रामजी ।

मूल—कुसुम-विचित्रा छंद—

तेहि अति रुरे रघुपति देखे । सब गुण पूरे तन मन लेखे ॥
यह बरु माँग्यो दयो न काहू । तुम मो मन ते कवहुँ न जाहू ॥६॥

भावार्थ—सुगमही है ।

मूल—कलहंस छंद—तहँ ताहि दै बरु को चले रघुनाथ जू
अति सूर सुन्दर यों लसै ऋपिसाथ जू ॥ जनु सिंह के सुत
दोउ सिद्धिथी रये । वन जीव देखत यों सबै मिथिला गये ॥७॥

शब्दार्थ—बरु=वरदान । सूर=शूरवीर । सिद्धि=विश्वामित्र
की तपस्या की सिद्धि । श्री=शोभा । रये=रंगे । सिद्धिथीरये=
तपस्या की सिद्धि से रङ्गे हुए । जनु सिंह के सुतदोउ सिद्धि
थीरये=मानो दोनों सिंह पुत्र हैं और विश्वामित्र की तपस्य
के बल से उनके वशीभूत हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—काहू को न भयो काहूँ, ऐसो सगुन न होत ।
पुर पैठत श्री राम के, भयो मित्र उहोत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—सगुन=शुभतूचक धटना । मित्र=सूर्य । उहोत=
अदित ।

भावार्थ—न कभी किसी को ऐसा सगुन हुआ, न होता
है । ज्योंही श्री रामजीने मुनिमंडलीसहित जनकपुर
सीमा में प्रवेश किया, त्योंही सूर्योदय हुआ ।

जो कुमोदिनी को पकड़ने के लिये फैले हैं, या कमलिनी को (स्पर्श से) अति सुख देने के लिये फैले हैं। तारे अलग हो गये हैं, सो मानो इस दर से भाग गये हैं कि कहीं सूर्य की किरणों के फँदे में फँस न जायें। और चक्रोर भी फँदा ही समझ कर ठगा सा हो रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और संदेह।

मूल—(राम) चंचरी छंद—

x व्योम में मुनि देखिये आति लाल ध्रीमुख साजही ।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाळ विराजही ।
पद्मरागनि की किरणों दिवि धूरि पूरित सी भई ।
सूर-वाजिन की सुरी अति तिक्षता तिनकी हुई ॥२४॥

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। मुनि=विश्वामित्र (संबोधन है)।

लालध्रीमुख=लालरंग वाले सूर्य। पद्मराग=माणिक्य। दिवि=आकाश। सूरवाजिन=सूर्य के रथ के घोड़े। सुरी=सुम। तिक्षता=तीक्ष्णता, चोखापन। हुई=मारी हुई, पूर्ण की हुई।

भावार्थ—श्रीराम जी कहते हैं कि हे मुनि जी! देखिये लाल मुखवाले सूर्य आकाश में कैसी शोभा दे रहे हैं, मानो समुद्र में बड़वाग्नि की ज्वालाओं का समूह एकत्र होकर वि-

सा हो गया हो।

अलंकार—संदेह और उत्प्रेक्षा।

मूल—(विश्वामित्र)—सोरठा छद् ।

चढो गगन तरु धाय, दिनकर धानर अरुन मुख ।

कीन्हो झुकि शहराय, सकल तारका कुसुम विन ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—दिनकर=सूर्य । अरुनमुख=लाल मुखवाला । झुकि= खीजकर, क्रुद्ध होकर । शहराय=हिला कर । तारका=तारों ।

भावार्थ—सूर्य रूपी लाल मुखवाला बंदर आकाश रूपी वृक्ष पर दौड़ कर चढ़ गया है और क्रुद्ध होकर उस वृक्ष को हिला कर उसे समस्त तारे रूपी फूलों से रहित कर डाला है ।

अलंकार—रूपक ।

मूल—(लक्ष्मण)—दोहा—

जहीं वारुणी की फरी रंचक रुचि द्विजराज ।

तहीं कियों भगवंत विन संपत्ति सोभा साज ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जहीं=ज्योंही । वारुणी=(१) पश्चिमदिशा (२)

शराव । द्विजराज=(१) चंद्रमा(२) ब्राह्मण । तहीं=त्योंही ।

भगवंत=(१)सूर्य(२)भगवान् ।

भावार्थ—(१)ज्योंही चंद्रमा पश्चिम की ओर जाने की तनिक भी इच्छा करता है, त्योंही सूर्य उसे बिना संपत्ति का और शोभा के सामान से हीन कर देता है । (२)ज्योंही कोई ब्राह्मण जरा भी मदिरा की इच्छा करता है, त्योंही (तुरंत) भगवान् उसकी संपत्ति और कान्ति हरलेते हैं ।

अलंकार—रूप ।

(हों) जहां जलजहार शोभित न, (जिनके) पीन पयोधर प्रगट न ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं कि) जनक के देश में ऐसी नगरी नहीं है जो पग पग पर हंसों, जल और कमल समूह से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हों (अर्थात् जनक के देश भर में सर्वत्र ही सब नगरों में बड़े बड़े जलाशय हैं जो जल से परिपूर्ण हैं और जिनमें हंस और कमल अधिकता से पाये जाते हैं) और जनक के देश में ऐसी नागरी (स्त्री) नहीं है जिनका प्रतिपग (प्रत्येक पैर) नूपुरों से हीन हो, जिनके उच्छंग कुचों पर मोती की मालायें शोभित न हों (अर्थात् जनक के देश भर में सब ऐसी स्त्री हैं जो प्रतिपग में विद्युव पहने हैं (कोई विधवा नहीं हैं) और जिनके बड़े बड़े पुष्ट कुचे पर मोतियों की मालायें शोभित हैं (अर्थात् सब स्त्रियां सधवा हृष्ट पुष्ट और सम्पन्न हैं) ।

नोट—प्राचीन लिपि प्रथा में 'ते' को 'ति' लिखते थे । यहां भ्रं केशव ने उसी प्रथा से काम लिया है ।

अलंकार—श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति (दूसरी), अनुप्रास

मूल—सवैया—

सातहू दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जानि
धीसविसे व्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु तानि
शोक की आग लगी परिपूरण आइगये घनश्याम विहाने
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुष्य पुराने १

मूल—तोमर उद—

* चहुँ भाग बाग तड़ाग अब । देखिये बड़भाग ।

फल फूल सों संयुक्त । अलि यों रमें जनु मुक्त ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—चहुँ भाग=चारों ओर । बड़ भाग=बड़े भाग्यशाली (राम जी केलिये संबोधन है) । मुक्त=स्वच्छन्दचारी साधु ।

भावार्थ—हे भाग्यशाली (रामचन्द्र जी) अब यह दृश्य देखिये कि जनक नगर के चारों ओर बाग और तालाब भी बहुत से हैं । सब बाग फल और फूलों से परिपूर्ण हैं और उनमें भी इस प्रकार फिरते हैं मानो स्वच्छन्द-चारी साधु हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—(राम)—दोहा—

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन ।

जलज हार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—ति=ते, वे । नगरी=बस्ती । नागरी=चतुर स्त्री ।

प्रतिपद=(१)हर एक पैर में (२)पद पद पर । हंसक=(१)बिलुबा

(२)हंस+क=हंस और जल । जलज=(१)मोती (२)कमल ।

पयोधर=(१)कुच (२)जलाशय (कूप, बापी, तड़ागादि) ।

पीन=(१)पुष्ट (२)बड़े बड़े ।

(१)ते नगरी न, (जो) प्रतिपद हंस (और) क हीन (हों) जहां जलजहार सोभित न, जहां प्रगट पीन पयोधर न । (२)ते नागरी न, (जो) प्रतिपद हंसक हीन

(हों) जहां जलजहार शोभित न, (जिनके) पीन पयोधर प्रगट न ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं कि) जनक के देश में ऐसी नगरी नहीं है जो पग पग पर हंसों, जल और कमल समूह से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हों (अर्थात् जनक के देश भर में सर्वत्र ही सब नगरों में बड़े बड़े जलाशय हैं जो जल से परिपूर्ण हैं और जिनमें हंस और कमल अधिकता से पाये जाते हैं) और जनक के देश में ऐसी नागरी (स्त्री) नहीं है जिनका प्रतिपग (प्रत्येक पैर) नूपुरों से हीन हो, जिनके उत्तंग कुचों पर मोती की मालायें शोभित न हों (अर्थात् जनक के देश भर में सब ऐसी स्त्री हैं जो प्रतिपग में बिछुव पहने हैं (कोई बिधवा नहीं हैं) और जिनके बड़े बड़े पुष्ट कुच पर मोतियों की मालायें शोभित हैं (अर्थात् सब बियां सधवा हृष्ट पुष्ट और सम्पन्न है) ।

नोट—प्राचीन लिपि प्रथा में 'ते' को 'ति' लिखते थे । यहां भं केशव ने उसी प्रथा से काम लिया है ।

अलंकार—श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति (दूसरी); अनुप्रास

मूल—सधैया-

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने
 धासविसे व्रत भंग भयो सु कहौ भव केशव को धनु ताने
 शोक की आग लगी परिपूरण आइगये घनश्याम विहाने
 जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ॥

शब्दार्थ—अवनीपति=राजा । बीसबिसे=(बीसोबिसा)
निश्चय । घत=प्रतिज्ञा । घनश्याम=(१)रामजी (२)अज्ञे
बादल । विहाने=प्रातःकाल । तरु पुण्य पुराने=पूर्वकालीन
पुण्य रूपी तरु ।

भावार्थ—जब राजा जनक ने यह जान लिया कि
पृथ्वीतल के राजा और लगा कर हार गये हैं, अब तो मेरी
प्रतिज्ञा निश्चयही भंग हुई, अब कौन घनुष को चढ़ा सकता
है । (इस प्रकार जब राजा जनक निदान्त निराश हो गये थे)
और पूर्णरूप से उनके हृदय में शोक की अग्नि लगी हुई थी
कि अचानक प्रातःकाल के समय में घनवत श्याम रंगवाले
(रामजी) जनकपुर में आगये (जिस आगमन के प्रभाव से)
जिससे जानकी जी और जनकादि के पुराने पुण्य के वृक्ष
पुनः प्रफुल्लित हो उठे ।

अलंकार—समाधि, परिकरांकर (घनश्याम में) और रूपक ।

मूल—दोधकलंद—

X आय गये श्रापि राजाहि लीने । मुख्य सतानंद विप्र प्रथीने ।
देखि दुःख भये पायन, लीने । आशिष शीरष वामु छै दीने ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—श्रापि=याज्ञवल्क्य श्रापि । राजाहि लीने=राजाजनक
को साथ लिये हुए । प्रथीने=पुरोहित-कार्य में निपुण । दुःख=
दोनो । (राजा जनक और सतानंद) । आशिष=आशीर्वाद ।
शीरष वामु छै=सिर संपकर ।

नोट—प्राचीन काल में सिर सूंध कर आशीर्वाद देने की रीति थी । ऐसा वर्णन कई स्थलों पर आया है ।

भावार्थ—विश्वामित्र का आगमन सुनकर जनकराज्यनिवासी ऋषि याज्ञवल्क्य जी, राजा जनक और मुख्य मुख्य ब्राह्मणों तथा कर्मकांडनिपुण सतानन्द को साथ लिये हुए विश्वामित्र की अगवानी को आये । विश्वामित्र को देखकर दोनों—अर्थात् राजा जनक और सतानन्द ऋषि-विश्वामित्र के चरणों में गिरे (दंडवत्प्रणाम किया), तब विश्वामित्र ने दोनों को उठाकर और सिर सूंध कर आशीर्वाद दिया । (अथवा) दोनोंने (अर्थात् राम और लक्ष्मण) ऋषि याज्ञवल्क्य और सतानन्द को दंडवत् प्रणाम किया और उन्होंने सिर सूंध कर आशीर्वाद दिया । (अथवा) सतानन्दादि मुख्य और प्रवीण ब्राह्मण राजर्षि (ऋषिराज=राजऋषि=राजर्षि) जनक को साथ लिये आयेगये ।

अलंकार—स्वभावोक्ति और परिवृत ।

मूल—(विश्वामित्र)—सवैयाछंद—

✓ केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है ।
दान-रूपान विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है ।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है ।
बेदप्रयी भरु राज सिरी परिपूरणता शुभ योग मई है ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—केशव=(संवोधन) हे रामचन्द्र जी । दान

विधानन सों=दान देकर । कृपान विधानन सों=युद्ध करके ।
 सिंगरो=सब । वसुधा=पृथ्वी । हाथ लई है=अपने वश में
 कर ली है । अंग छः=षडांग वेद—१-शिक्षा । २-कल्प ।
 ३-व्याकरण । ४-निरुक्ति । ५-ज्योतिष । ६-छंद । (शिक्षा
 ज्योतिष व्याकरण कल्प निरुक्ति रु छंद) । अंग सातक=राज्य
 के सात अंग—१-राजा । २-मंत्री । ३-मित्र । ४-सु-
 नाना । ५-देश । ६-दुर्ग । ७-सेना । (राजा, मंत्री, मित्र,
 निधि, देश, दुर्ग, अरु सैन) अंग आठक=योग के आठ
 अंग—१-यम । २-नियम । ३-आसन । ४-प्राणायाम ।
 ५-प्रत्याहार । ६-धारणा । ७-ध्यान । ८-समाधि । भव=
 उत्पन्न । अंग छ सातक आठक सों भव=वेद के छः, राज्य
 के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न । सिद्धि=द्यय
 सिद्धि । वेदत्रयी=ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम । राजसिरी=(राज्य
 श्री) राजापन, राजसी वैभव और भोग । शुभ योगः भव=
 अच्छा जोड़ा मिल गया है (जैसा अन्य राजों में नहीं है) ।
 भावार्थ—हे (केशव) रामचन्द्र ! देखो ये मिथिला नरप
 हैं, जिन्होंने संसार में अपनी कीर्ति की बेल लगाई है
 (संसार भर में जिनकी नेकनामी फैली है) दान और युद्ध-
 वीरता द्यय जिन्होंने सारी पृथ्वी को अपने वश में ला

लिया है। वेद के छः, राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न की हुई सिद्धि द्वारा जिन्होंने तीनों लोकों में अपना कार्य सिद्ध कर लिया है। (तीनों लोकों के भोग भोगते हैं)। इनमें वेदत्रयी और राज्यश्री की परिपूर्णता का अच्छा योग जुड़ा है (अच्छे विद्वान और नीति-निपुण राजा हैं) तात्पर्य यह कि राजा में जितने गुण होने चाहिये वे सब इन में हैं वरन् कुछ अधिक हैं अर्थात् ये राजा होते हुए भी पक्के योगी हैं।

अलंकार—

मूल—(जनक)—सोरठा—

जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।

कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥ २० ॥

शब्दार्थ—मेलि=डाल कर। वर्ण=(१) रंग (२) जाति।

भावार्थ—राजा जनक अपनी ओर के लोगों से कहते हैं कि देखो ये ही वे विश्वामित्र जी हैं, जिन्होंने अपने शरीर रूपी सोने को तपरूपी अग्नि में डाल कर और तपा कर उस शरीर का वर्ण उत्तम किया है (तप करके क्षत्री से ब्राह्मण हुए हैं)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

मूल—(लक्ष्मण)—मोहन छंद—जन राजवंत। जग योग वंत ॥

तिनको उदोत। केहि भांति होता ॥ २१ ॥

भावार्थ—(यह सुन कर कि राजा जनक अच्छे योगी भी

हैं, लक्ष्मण जी को संदेह हुआ कि यह कैसे हो सकता है, इस लिये पूछते हैं कि) जो रात्रि जग. में योग भी करते हैं उनका अभ्युदय कैसे होता है ? क्योंकि दोनों कर्म परस्पर विरुद्ध हैं ।

मूल—(श्रीराम)—विजय छंद ।

सब छत्रिन जादि है काहु सुर न सुए विजनादिक वात डौ ।
न घटै न बढ़ै निशि यासर केशव लोकन को तम तेज भगै ।
भवभूषण भूपित होत नहीं मदनस गजादि मसी न लौ ।
जलदुधलदुध परिपूर्ण श्री निमि के गुल अद्भुत ज्योति जगैर

शब्दार्थ—विजना=पंखा । वात=हवा । डौ=हिलती है ।

तम तेज=पना अंधकार । भवभूषण=रात्रि (दिया के गुलकी नत्म) । मसी=कालिस (द्वाजल) ।

भावार्थ—हे लक्ष्मण, निमिबंध में अद्भुत ज्योति जागती है जिसकी शोना (श्री) जल और स्थल में परिपूर्ण हो रही है । (वह ज्योति कैसी है कि) समस्त धत्रियों में से किसी ने भी उसको छू तक नहीं पाया, और न वह ज्योति पंखे की हवा से उगनगती है । रात्रि दिन एक सी रहती है—घटती बढ़ती नहीं, उसके नकार से लोकों का घना अंधकार नाश जाता है । वह ज्योति रात्रि से भूपित नहीं होती (उत्त चिराग में गुल नहीं पड़ता)—(इससे) सात्त्विक अलंकारों से निमिबंध की वह शान ज्योति नहीं ढकने पाती—उत्त ज्योति में नस्त हाथियों की कर्मों नहीं लगती (हाथी घोड़े इत्यादि र

खने का घमंड निमिवंशियों को जरा भी अहंकारी नहीं बना सकता)—निमिवंश की ज्ञान ज्योति ऐसी अद्भुत है कि राज-वैभव उसमें कभी विघ्न बाधा नहीं उपस्थित कर सका ।

अलंकार—व्यातिरेक ।

मूल—(जनक)—तारक छंद—यह कीरति और नरेशन सोहै ।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै ॥ हम को बपुरा सुनिये ऋषि-
राई । सब गाँड़ छ सातक की ठकुराई ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—कीरति=(कीर्ति) बड़ाई । अदेव=असुर । बपुरा=
दीनहीन । ठकुराई=राज्य ।

भावार्थ—सरल ही है

अलंकार—लोकोक्ति ।

मूल—(विश्यामित्र)—विजय छंद—

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सब भुव पालें सदाई ।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पाटि न जाई ॥
भूषण की तुमही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू-तनते तनया उंजजाई ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—भुव=(भू) पृथ्वी । विदेह=जीवन मुक्त । कल=
निर्मल । भूषण की भवि भूषण=भूषणों के लिये भी सत्य भूषण
अर्थात् अलंकारों को भी अलंकृत करने वाली (अत्यन्त रूपवती) ।
भू-तनते=पृथ्वी के शरीर से । तनया=कन्या ।

भावार्थ—हे जनक ! अपने अपने स्थान पर तो सभी राजा
सदैव ही भूमि का पालन करते हैं, पर वे केवल नामही के

भूमिपाल हैं, वास्तव में वे 'भूति' नहीं हैं, क्योंकि उनसे भूति का पालन यथार्थ (पतिवत्) नहीं हो सकता । केवल आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो शरीर को रात्रियों का धारण किये हुए हैं, पर हैं ऐसे कि विदेहों (जीवनमुक्त लोगों में) में आरंभ की निर्मल कीर्ति गई जाती है । ऐसे विदेह होकर भी आप सब 'भूति' हैं, क्योंकि आपने पृथ्वी के गर्भ से अत्यन्त सुन्दर कन्या पैदा करली (पति वही है जो स्त्री से संतान पैदा करे) ।

अलंकार—विधि और विरोधाभास ।

मूल—(जनक)—शोभा—

इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा सकत्य ।

लोकन की रचना रुचिर रुचिये को समस्त्य ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—अकृत्य=अकथनीय, कठिन । समस्त्य=शक्तिवान् ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—(जनक)—सवैया—

लोकन की रचना रुचिये को जही परिपूरण बुद्धि विचारी ।

है गए केशवदास तहीं सय भूमि अकाश प्रकाशित नारी ॥

शुभ सलाह समान लकी अतीरोपनयी ह्य दीडि तिहारी ।

होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ सुधा रंगवारी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—परिपूरण बुद्धि विचारी=तोच विचार कर निश्चय कर लिया । सलाह=बाप । सूर=सूर्य । सुधाधर=चन्द्रमा । सुधा=चूना ।

भावार्थ—ज्योंही आपने नवीन लोकों की रचना करने का निश्चय कर लिया, त्योंही (केशव कहते हैं कि) भूमि और आकाश सब अति प्रकाशित हो गये (अर्थात् तुम्हें विदित हो गया कि कहां पर कौनसी रचना करनी चाहिये)। जिस समय तुम्हारी क्रोधयुक्त दृष्टि तीक्ष्ण बाण के समान (ब्रह्मा की रचना को मिटाने के लिये) सन्नद्ध हुई, उसी समय (भय के मारे) सूर्य तो चंद्रमा सम सपेद होगये और आग्नि भी चूना के रंग की हो गई अर्थात् भय से इन तेजधारियों का रंग फीका पड़ गया।

अलंकार—प्रथम हेतु ।

मूल—दोहा—केशव विश्वामित्र के रोपमयी दृग जानि ।

संध्यासी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि ॥२७॥

शब्दार्थ—उपासी=उपासना (सेवा, स्तुति, वंदना) ।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि जब विश्वामित्र के क्रोधयुक्त नेत्रों को संध्या सम अरुण देखा, तब तीनों लोक के जन (नर, नाग, देवादि) उनके निकट आकर (संध्योपासन की तरह) उनकी उपासना करने लगे अर्थात् भय से उनकी सेवा वा स्तुति करने लगे ।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा (संध्या सम—अरुण—रोपमयी दृष्टि) ।

मूल—(जनक)—दोधकछंद—ये सुत कौन के शोभाहिं साजे ।

सुंदर श्यामल गौर विराजे ॥ जानत हौं जिय सोदर दोऊ ।

कै कमला विमलापति कोऊ ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—सोदर=सगे भाई । कमलापति=विष्णु । विम-

लपति=ब्रह्मा ।

भावार्थ—(जनक पूछते हैं कि हे विश्वामित्र जी) ये शोभायुक्त सुन्दर श्याम और गौर कान्तिवाले दोनों व्यक्ति किसके पुत्र हैं ? मेरी समझ में तो ऐसा आता है कि ये दोनों सगे भाई हैं या विष्णु और ब्रह्मा के अवतार हैं । (अर्थात् इनमें विष्णु और ब्रह्मा का सा तेज, सौंदर्य और गुणादि लक्षित हैं) ।

अलंकार—सन्देह ।

मूल—(विश्वामित्र)—चौपाईछंद—

X सुन्दर श्यामल राम सुजानो । गौर सु लक्ष्मण नाम बखान
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ । सुरज के कुलमंडन दोऊ ॥ २९ ॥

दोहा—नृपमणि दशरथ नृपति के प्रगटे चारि कुमार ।

राम भरत लक्ष्मण ललित अरु शत्रुघ्न उदार ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—कुलमण्डन=वंश की शोभा बढ़ानेवाले ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—(चौपाईमें) हेतु ।

मूल—(विश्वामित्र)—घनाक्षरी छंद—दानिन के शील, पर दान
के प्रहारी दिन, दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभायके । वीप
दोष हू के अयनीपन के अयनीप, पृथु लम के शोदास दास द्विज
गाय के । आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदार
प्रिय साधु मन बच काय के । देह धर्मधारी वे विदेहराज जू
से राज, राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥ ३१ ॥

दानिन के शील=दानियों का सा स्वभाव है । पर
दान के प्रहारी दिन=पतिदिन शत्रुओं से दंडरूप-दान लेने

वाले । दानवारि=विष्णु । निदान=अंततः । अवनीप=राजा ।

कंद=वादल । परदार=लक्ष्मी वा पृथ्वी ।

भावार्थ—बड़े बड़े दानियों (शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्रादि) के से स्वभाव वाले हैं, सदैव शत्रुओं से दंडस्वरूप धन-दान लेने वाले हैं, और अंततः (विचार पूर्वक देखने से) विष्णु के से स्वभाव वाले हैं । समस्त द्वीपों के राजों के भी राजा हैं, राजा पृथु के समान चक्रवर्ती हैं, पर तो भी ब्राह्मण और गाय के दास हैं (सेवक हैं) । आनंद वारि वरसाने वाले वादल हैं, ये बालक देवताओं के पालक से (इन्द्र सम) हैं, लक्ष्मी के बल्लभ हैं, पर मन वचन कर्म से शुद्ध हैं, देहधारी हैं, पर विदेह समान हैं । हे राजन् ऐसे गुणवाले ये बालक अयोध्यानरेश राजा दशरथ के पुत्र हैं । (ध्वनि से विश्वावित्र ने यह बतला दिया कि ये विष्णु के अवतार हैं) ।

अलंकार—विरोधाभास ।

मूल—सोरठा—जब तैं बैठे राज, राजा दशरथ भूमि में ।

सुख सोयो सुरराज, तादिन ते सुरलोक में ॥३१॥

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—असंगति ।

मूल—स्वागता छंद— x

राज राज दशरथ्य तने जू । रामचन्द्र भुवचन्द्र वने जू ॥

त्यौं विदेह तुम हू अरुसिता । ज्यौं चकोर तनया शुभ गीता ३३

शब्दार्थ—राज राज=राजाओं के राजा (चक्रवर्ती राजा) ।

शुभ-चन्द्र=भूमि के चंद्रमा । शुभगीता=सर्व प्रशंसिता,
जिसकी प्रशंसा सब जन करते हों ।

भावार्थ--(विश्वामित्र जी कहते हैं) हे मिथिलेश ! जैसे राज
दशरथ चक्रवर्ती राजा हैं, जैसे ही उनके पुत्र रामचन्द्र भू
भूमि के चंद्रमा हैं (सब को सुखद और यश से प्रकाशित
हैं) अर्थात् ऐश्वर्यशाली पिता के सौन्दर्यशाली पुत्र हैं । इसी
प्रकार हे विदेहराज ! आप भी ऐश्वर्यशाली राजा हो और
तुम्हारी पुत्री शुभगीता सीता भी चक्रोरपुत्रीवत् सौन्दर्य
और प्रेमपात्री है । अर्थात् तुम्हारा और इनका कुल, शील,
ऐश्वर्य, सौन्दर्य, यश इत्यादि सम है । (व्यंग्य यह कि
चक्रोरी का प्रेम चंद्र पर ही उचित है, अतः सीता का विवाह
इन्हीं से होना उचित है) ।

अलंकार—सम ।

मूल--(विश्वामित्र)-तारकछंद--

X. रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो ।

अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यो ॥

(जनक) ऋषि है वह मन्दिर मांस मँगार्जुं ।

गाहे ल्यावहि हों जन यूथ बुंलार्जुं ॥ ३४ ॥

छंद--

अब लोग कहा करिये अपार । ऋषिराज कही यह चार चार ।
इन राजकुमारहि देहु जान । सब जानत हैं बल के निधान ॥ ३४ ॥

सूचना--छंद ३४ और ३५ के शब्दार्थ और भावार्थ
सब ही हैं ।

(जनक)-दंडक छंद-चक्र से फटोरहे कैलास ते विशाल

कालदंड ते कराल सब काल काल गावई । केशव त्रिलोक के विलोकि हारे देव सब, छौंदि चन्द्रचूड़ एक और को चढ़ावई ॥ पन्नग प्रचंडपति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वतप्रभा न मान पावई । विनायक एक हू पै आवै ना पिनाक ताहि कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कालकाल=काल का भी काल । चन्द्रचूड़=महादेव । पन्नगपति-प्रभु=बड़े बड़े सर्पों के राजा अर्थात् वासुकी । पनच=प्रत्यंचा । पीन=पुष्ट, मोटी । पर्वतारि=इन्द्र । पर्वत-प्रभा=दैत्य । मान=गरुवाई का अन्दाज । विनायक एक=मुख्य विनायक (गणेशजी) ।

भावार्थ—(जनकजी कहते हैं)—जो धनुष बज्र से भी अधिक कठोर है, कैलाश से भी अधिक बड़ा है, कालदण्ड से भी अधिक भयंकर है, जिसे सब लोग काल का भी काल बतलाते हैं, त्रिलोक के माननीय लोग जिसे देख कर हिम्मत हारगये, एक महादेव को छोड़कर जिसे कोई दूसरा चढ़ा नहीं सकता, प्रचण्ड वासुकी की जिसमें पुष्ट प्रत्यंचा लगती है, इन्द्र और दैत्यादि भी जिसकी गरुवाई का अन्दाज नहीं पाते, जिसको गणेश भी यहाँ तक नहीं उठा ला सकते, ऐसे पिनाक को कमल सम कोमल हाथोंवाले राम कैसे उठा लवेंगे ।

अलंकार—वाचकलुप्तोपमा (कोमल कमलपाणि) ।

मूल—(विश्वामित्र)—दोहा—

राम हत्यो मारीच जेहि अरु ताड़का सुवाहु ।

लक्ष्मण को यह धनुष दै तुम पिनाक को ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे राम ! जिस धनुष से तुमने मारीच, ताड़का और सुबाहु को मारा है, वह लक्ष्मण को दे कर तुम पिनाक राम के लिये जाओ ।

विशेष—इस दोहे में व्यंग यह है कि ऊपर के छन्द में जनकजी राम को 'कोमलपाणि' कहते हैं । इस दोहे से मुनिजी उन्हें 'कठोरपाणि' जताते हैं ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—(जनक)—त्रिमंगी छंद—

सिगरे नर-नायक असुर-विनायक राक्षसपति द्वियद्वारि गये ।
काहु न उठायो थल न छोड़ायो टव्यो न टारो भीत भये ।
इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आये हो पैज करे ।
व्रत भंग हमारे भयो तुम्हारे ऋषि तपतेज न जानि परै ॥३८॥

शब्दार्थ—नरनायक=राजा । असुरविनायक=असुरों में मुख्य, बाणासुर । राक्षसपति=रावण । पैज=प्रतिज्ञा ।

भावार्थ—(जनक कहते हैं) सब राजे, बाणासुर, रावण इत्यादि महा बली भट्ट कोशिश करके हिम्मत हार गये तिस परभी कोई उठा न सका, (उटाने की तो बात क्या !) कोई उसे स्थान से भी न हटा सका, जब वह नहीं टसका तब सब लोग भयभीत हुए (कि अब क्या होगा) । ऐसे कठिन धनुष को तुड़वाने के लिये आप प्रतिज्ञा करके इन सुकुमार राजकुमारों को अपने साथ लाये हैं । हमारा व्रत तो भंग होही चुका है, पर हे ऋषि, आपके तपतेज का प्रभाव नहीं जान सकते

(अर्थात् शायद आपके तपके प्रभावसे ये राजकुमार धनुष को उठालें पर मुझे आशंका होती है कि कहीं आपकी भी प्रतिज्ञा न भंग हो जाय) ।

मूल—विश्वामित्र—तोमरछन्द—

सुनि रामचन्द्र कुमार । धनु आनिये इकवार ।

पुनि वेगि ताहि चढ़ाउ । जस लोक लोक बढ़ाऊ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—इक वार=एक ही वार में (जनक के महल से रंगभूमितक एक ही वार में—बीच में सुस्ताने के लिये कहीं रख मत देना) ।

भावार्थ—विश्वामित्रजी रामजी को (आशीर्वादात्मक) आज्ञा देते हैं:—“हे कुमार रामचन्द्रजी, मेरी आज्ञा सुनो । तुम जनक के महल में चले जाओ और धनुष को उठाकर एक ही वार में यहाँ तक ले आओ (बीच में दो एक वार भूमि में रखकर सुस्ताना मत) फिर उसको जल्दीसे चढ़ाकर अपना यश सब लोकों में बढ़ाओ ।

मूल—दोहा—ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय ।

धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाय ॥४०॥

भावार्थ—(राजा जनक की ऐसी दशा हो रही है कि) विश्वामित्र ऋषि की ओर देख कर और उनके तपबल को स्मरण करके राजा हर्षित होते हैं, रामजी को देखकर और उनकी सुकुमारता का ख्याल करके उनका हृदय निराश होजाता है, तथा धनुषको देखकर भयभीत होजाते हैं, इस प्रकार चिन्ता

उनके चित्त को चंचल कर रही है ।

अलंकार—पर्याय—(क्रमही सों जहँ एक में आवै वस्तु अनेक)।

मूल—स्वागता छंद—

रामचन्द्र कटिसों पट्टु बाँध्यो । लोलयैव हर को धनु साध्यो ।
नकु ताहि कर पल्लव सों छवे । फूल-मूल जिमि टूक कन्योद्वैध

शब्दार्थ—लोलयैव=(लीला+इव) खेल सा करते हुए,
कीड़ावत्, सहज ही में । साध्यो=संघान किया, उग्र, क्र
प्रत्यंचा चढ़ादी । फूलमूल=फूलकी ठण्डी । कटिसों=कटि में ।
भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—विभावना से पुष्ट पूर्णोपमा ।

सूचना—कटि सों पट्टु बाँध्यो—यह बुंदेलखण्डी मुहावरा है ।

मूल—सवैया—

* उत्तमगाय सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथ जू हाथ कै लीनों ।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनों ।
पेच्यो वही तबही कियो संयुत तिच्छ कटाक्ष नराच नयाँतो ।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभुको साँचो शरासन कीतो ।

शब्दार्थ—उत्तम गाय=(सर्व प्रशंसित व्यक्ति अर्थात्) वह
शिव का धनुष । हाथ कै लीनों=हाथसे उठा लिया (यह
भी बुंदेलखण्डी मुहावरा है) । निर्गुण ते-गुणवंत कियो=पहले
जितकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ी थी, उसकी प्रत्यंचा चढ़ादी अथवा
उस गुणहीनधनुष को गुण विशिष्ट कर दिया । नराच=बाण ।
भावार्थ—(आज तक जिस धनुष को हाथ में लेकर किसी

ने शरसंधान नहीं किया था) उस उत्तम गाय धनुष को जब रामजी ने उठा लिया तब वह सनाथ होगया (धनुष को हर्ष हुआ) । जब प्रत्यंचा चढ़ा दी तब असंख्य सन्तों को (जिनमें विश्वामित्र, मुनि मण्डली, जनक सतानंदादि भी थे) सुख हुआ । जब उसे ताना, तब अपने नवीन तीक्ष्ण कटाक्ष का बाण उस पर रखदिया (धनुष की प्रत्यंचा खींचते समय स्वाभाविक रीति से दृष्टि-सूत्र भी तीर की तरह उस पर पड़ता है ।) इस प्रकार राज कुमार श्रीरामजी ने प्रेमदृष्टि से देख कर उस शंभु-धनुको सच्चा शरासन बनादिया अर्थात् आज उसका 'शरासन' नाम सार्थक हुआ, क्योंकि रामजी ने कटाक्षरूपी बाण उसपर संधान किया है ।

अलंकार—त्रिधि ।

मूल—विजया छंद—प्रथम टंकोर झुकि शारि संसार मद चंड कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखण्ड को । घालि अचला अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के वचन परचण्ड को । सोधु दै ईशको बोधु जगदीशको क्रोध उपजाय भृगुनंद वरि-वण्ड को । वाधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग धनुभंगको शब्द गयो भेदि ब्रहमण्ड को ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—झुकि=क्रुद्ध होकर । चण्ड कोदण्ड=कठोर धनुष । मण्डिरह्यौ=भरगया (इसका 'कर्ता' है 'टंकोर', 'चण्ड कोदण्ड' नहीं) । नवखण्ड=ईला, रमणक, हिरण्य, कुरु, हरि, वृष, किंपुरुष, जाल और भरत । अचला=पृथ्वी । घालि=

तोड़कर । दिगपाल=इन्द्र, वरुण, कुवेरादि । कपिराज=विश्वामित्र । ईश=महादेव । जगदीश=विष्णु । भृगुनंद=परशुराम । बरिचण्ड=बली । स्वर्ग को बाधि=स्वर्ग 'लोक' के निवासियों के कार्य में बाधा डालकर अर्थात् उनको भी चौक कर, उनकी शान्ति भंग करके । साधि अयवर्ग=यह धनु राजा दधीचि की हड्डियों का बना था, अतः उनको मुक्ति दिलाकर ।

भावार्थ—उस प्रचण्ड धनुष की प्रथम ही टंकीर ने कुड़ होकर सारे संसार का मद हटा दिया और नवो खण्डों में गूँ उठी । सुहृद् पृथ्वी को कंपायमान करके, समस्त दिग्पालों के बल तोड़कर, विश्वामित्र के शानदार बचनों का पालन करके (उनकी बात रखकर) महादेव को खबर देकर, विष्णु को यह बोध देकर कि आपकी इच्छा के अनुसार संसार का कार्य हो रहा है, बली परशुरामजी को क्रोध दिलाकर, स्वर्ग निवासियों के कार्य में बाधा डालकर—उनको आश्चर्यान्वित करके, राजा दधीचि को मुक्तिपद दिलाकर धनुष का शब्द समस्त ब्रह्मांड को भेदन करके उसके आगे अन्तरिक्ष में चला गया ।

अलंकार—सहोक्ति ।

(जनक)—बोधा—

X सतानंद आनंद मति तुम लु हुते उन साथ ।

परज्यो काहे न धनुष जब तोच्यो थी रघुनाथ ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही है ।

मूल—(सतानंद)—तोमरछंद—

सुनि राजराज विदेह । जब हौं गयो वहि गेह ।

कछु मैं न जानी वात । कब तोरियो धनु तात ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही है ।

मूल—दोहा—सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल ।

पहिराई जनु सवन की हृदयावालि भूपाल ॥ ४६ ॥

अर्थ—धनुर्भग होजाने पर सीता जी ने रघुनाथ जी को सुन्दर स्वच्छ कमलों की माला पहना दी । वह माला ऐसी जान पड़ती है मानो सब राजाओं की हृदयावली हो । (अत्यन्त उचित उत्प्रेक्षा है, क्योंकि हृदय का आकार भी कमलवत् होता है) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—चित्रपदाछंद—

* सीय जहीं पहिराई । रामाई माल सोहाई ।

बुंदुभि देव वजाये । फूल तहीं वरसाये ॥ ४७ ॥

अर्थ—ज्योंही सीता ने रामजी को माला पहनाई त्योंही देवताओं ने नगाड़े वजाये और फूल बरसाये ।

पांचवाँ प्रकाश समाप्त ।



छठवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—छठे प्रकाश कथा रुचिर दशरथ आगम जा...
लगनोत्सवश्री रामको व्याह विधान बखान ॥

मूल—(सतानन्द)—तोटकछंद—

बिनती ऋषि, राज की चित्त धरो । चहुँ भैयन के अब व्याह करो ।
अब बोलहु बेगि बरात सबै । दुहिता समदौ सुख पाय अबै ॥

शब्दार्थ—बोलहु=बुलवाओ । दुहिता=कन्या । समदौ=विवाह ।

भावार्थ—(विश्वामित्र के मुख से राजा दशरथ के वैभव का
वर्णन तथा चार पुत्रों का होना सुनकर, एवं दो पुत्रों का
बल और सौंदर्य देखकर जनक ने चारों के विवाह के लिये
निवेदन किया है । इस पर सतानन्द जी सिफारिश करते हैं)
हे ऋषि (विश्वामित्र) राजा की बिनती को स्वीकार कीजिये,
अब इन्हीं के परिवार में चारों माइयों के विवाह कीजिये । अब
सब बरातों को (चारों माइयों की चार बरातें) शीघ्र बुलवाइये
और मुखपूर्वक कन्याओं को अभी (तुरंत) विवाहिये ।

तबही लगन लिखि अबधपुरी सब घात ।
राजा दशरथ सुनत ही चान्यो चली बरात ॥ २ ॥

—मोटनकछंद—

दशरथ बरात सजे । दिगपाल गयदानि देखि लजे ।
१७ दूठह चाह बने । मोहे सुर औरनि कौन गने ॥ १ ॥

मूल—चारकछंद— ५

बनि चारि वरात चहुँदिसि आई। नृप चारि चमू अगवान पठाई।
जनु सागर को सरिता पशुधारी। तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी॥

शब्दार्थ—चमू=टुकड़ी। अगवान=स्वागत करने के लिये।

अर्थ—सरल है।

विशेष—चारों दिशाओं से वरातें आईं जिससे महल के चारों फाटकों पर अलग अलग मुहूर्त से सब काम होजाय। जनकपुर समुद्र, वरातें नदियां और अगवानी लेने वाली चारों चमू बाहें हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—वारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप।

द्विज दूल्ह पहिराइयो पहिराये सब भूप ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—वारोठे को चार=दरवाजा चार, द्वारपूजन (दरवाजे पर लाकर वर का धन और वस्त्र से सत्कार करने का कृत्य)। अनुरूप=यथा योग्य।

अर्थ—यथायोग्य दरवाजा चार करके राजा जनक ने ब्राह्मणों और दूल्हों तथा वरात में आये हुए सब राजाओं को पहिरावन दिये (पहनने के लिये अपने यहां से नर्वन वस्त्र दिये)।

अलंकार—पदार्थावृत्त दीपक।

मूल—त्रिभंगीछंद— ५

दशरत्थ सँघाती सकल वराती बनि बनि मंडप माहँ गये।

आकाशविलासी प्रभा प्रकासी जलजगुच्छ जनु नखत नये।

अति सुन्दर नाचि सब मुखकारी मंगलगारी देन लगी ।
बाजे बहु वाजत अनु घन गाजत जहाँ तहाँ शुभ शोभ जगी
शब्दार्थ—सँघाती=साथ में आये हुए राजा । मंडप=विकार
मंडप । आकाशविलासी=(मंडप का विशेषण है) बहुत
ऊँचा और विस्तृत है । प्रभा प्रकासी=रोशनी से खूब जग
मग हो रहा है । जलजगुच्छ=मोतियों के गुच्छे । नखर=
नक्षत्र । शुभ शोभ जगी=अत्यन्त शोभा युक्त है ।

भावार्थ—(दरवाजाचार करके सब बराती जनवासे को गये,
यह वर्णन कवि ने छोड़ दिया है) जनवासे से राजा दशरथ
के साथ आये हुए सब बराती लोग सज धज कर भोंवतों के
लिये मंडप को गये । वह मंडप बहुत ऊँचा और विस्तृत है,
रोशनी से खूब जगमगा रहा है, मोतियों के गुच्छे (बंदनवार
में) मानो नवीन नक्षत्र हैं । सुन्दर स्त्रियाँ मंगलगत
करने लगी । बहुत से जो वाजन बज रहे हैं, वे मानो मंद
मंद ध्वनि से यादल गरज रहे हैं, जहाँ देखिये वही अत्यन्त
शोभा से मंडप-स्थान परिपूर्ण है ।

अलंकार—दृष्टेक्षा ।

मूल-दोहा-रामचंद्र सीता सहित शोभत हैं तेहि टौर ।
सुवर्णमय मणिमय सहित शुभ सुंदर छिर मौर ॥ ७ ॥
शब्दार्थ—सुवर्ण मय=सोने की धनी हुई मणिमया स्वचित्त-
चित्रित । मौर=दूल्हा दुल्हिन के विवाह-मुकुट ।

अर्थ—सरल है ।

श्लोक—इस छंद में राम जी को 'रामचन्द्र' कहने में बड़ा ही मजा है । मंडप को आकाशवत माना, भोती के गुच्छों को नक्षत्र कहा, तो वहाँ 'चंद्र' का होना अत्यन्त उचित है । 'सीता' शब्द भी कम प्रभावोत्पादक नहीं । जहां चंद्र होगा वहां शीत होहीगी ।

अलंकार—परिकरांकुर । x

मूल—छप्पय—बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण । केशव दास प्रसिद्ध सिद्ध सब अशुभ निवारण । भरद्वाज जावालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि । विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव पुनि । सब भांति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ बशिष्ठ पूजत कलस । शुभ सतानंद मिलि उद्धरत शाखोच्चार सबै सरस ॥८॥

शब्दार्थ—मागध=वंश-विरद वर्णन करनेवाले । सूत=स्तुति करने वाले । विद्याधर=विद्वान् । चारण=वंशावली बताने वाले भाट । सिद्ध=सिद्धि प्राप्त योगी जन । सब अशुभ निवारण=सब प्रकार की बाधाओं को निवारण करने वाले । चित्रमति=विचित्र बुद्धिवाले । निष्ठमति=उत्तम बुद्धिवाले । शाखोच्चार=विवाह समय में वर-वधू की वंशावली तथा गोत्रादिका परिचय ।

अर्थ—सरल है ।

मूल—अनुकूला छंद— x

पावक पूज्यो समिध सुधारी । आहुति दीनी सब सुखकारी । दैतव कन्या बहु धन दीन्हो । भौत्रि पारि जगत जस लीन्हो ॥९॥

शब्दार्थ—समिध=हवन की लकड़ी (पलाश वा चाणकी) । भोंवरि पारि=अग्निपरिक्रमा कराके (यही आ विवाह का पूरक है) ।

अर्थ—सरल ही है ।

मूल—स्वागताछंद—

x राज पुत्रिकनि स्यो छवि जये । राजराज सय डेरहि आये
हीर चोर गज बाजि लुटाये । सुंदरीन यहु मंगल गाये ॥

शब्दार्थ—स्यो=सहित । राज राज सब=राजाओंसहित उन दशरथ । डेरा=वनवासा । हीर=हीरे ।

अर्थ—सरल है ।

विशेष—इस रीति को बुंदेलखंड में 'रहसवधावा' कहते हैं ।

(शिष्टाचार-रीति वर्णन)

मूल—सोरठा—बासर चौधे जाम, सतानंद आगू दिये ।

दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह यनि ॥

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

कहू बाकू बाकू कहूँ मेव सुरे । कहूँ नच वंती लरै लोहू पूरे ॥ ११ ॥
(११) आगू दिये=आगे किये हुए, सुसिवा

बनाये हुए । धाम=डेरा, जनवासा । विदेह बनि=मारे आनन्द के देह की सुधि भूले हुए, (अथवा विदेह कुलके सब लोग सज धज कर आये) (१२) शोभना=सुंदर। दुंदुभी दीह=बड़े बड़े नगरे । भीम भंकार=भयंकर शब्द । कर्नाल=बड़ी बड़ी तोपें । कहूं भीम... साजें=कहीं बड़ी बड़ी तोपें भयंकर शब्द करती हैं । किन्नरी=किन्नरों की स्त्रियां । किन्नरी=सारंगी । (१३) मल्ल गाजें=पहलवान परस्पर ललकारते और कुश्ती करते हैं। भाँड़यो करैं=भाँड़ौवा करते हैं, नकल वा स्वाँग करते हैं । लोलिनी=चंचल प्रकृति वाली । वेड़िनी=वेश्याएँ। (१४) एण=हरिना। एणी=हरिनी। कहूँ एण... हेतकारे=कहीं हरिन हरिनियों प्रति प्रेम करते हैं । वोक=वकरे । मेष=मेढा । दंती=हार्थी । लोह पूरे=जिनके पैरों में लोहलंगर पड़े हुए हैं, लोह की भारी जंजीरें जिनके पैरों में पड़ी हैं ।

अर्थ—सरल है ।

नोट—जिस समय राजा जनक समाज सहित राजा दशरथ के डेरों पर पहुँचे उस समय वहाँ ऐसे कौतुक हो रहे थे ।

शूल—दोहा-आगे है दशरथ लियो भूपति आवत देखि ।
राज राज मिलि वैठियो ब्रह्म ब्रह्म ऋषि लेखि ॥ १५ ॥

अन्वर्थ—राजा जनक को आते देख राजा दशरथ ने कुछ दूर तक चल कर उनका स्वागत किया और पुनः क्षत्रियों की समाज क्षत्रियों से मिलकर और ब्रह्मऋषियों की समाज ब्रह्मऋषियों

पर गंगाजल पाजाय, तो केवल उसकी प्यासही न बुझैगी, वरन् त्रिताप का बल नष्ट हो जायगा, तैसेही आपकी कृपा से जब हमको श्री राम जी के दर्शन प्राप्त हो गये तो हमें केवल एकही सुख (रूप से नेत्रों की तृप्ति) नहीं हुआ वरन् सबही कामनायें पूर्ण हो चुकीं अर्थात् हम सब मोक्ष के भी अधिकारी हो चुके ।

अलंकार—(द्वितीय) प्रहर्षण ।

मूल—(जनक)—सधैया छंद—

सिद्ध समाधि सजै अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई ।
रुद्र के चित्त-समुद्र वसै नित ब्रह्महु पै वरनी नहिं जाई ।
रूप न रंग न रेख विशेष अनादि अनन्त जु वेदन गाई ।
केशव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई १८

शब्दार्थ—सिद्ध समाधि सजै अजहूँ=जिसको देखने के लिये अब भी सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं । रुद्र=महादेव । गाधि के नंद=विश्वामित्र जी ।

भावार्थ—(जनक जी कहते हैं कि) विश्वामित्र जी ने हम सब को वही ज्योति साक्षात् दिखला दी, जिसको देखने के लिये अब भी सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, जिसे जग में योगियों ने कभी नहीं देखा, जो सदैव महादेव जी के मन रूपी समुद्र में बसती है, जिसका ठीक वर्णन ब्रह्मासे भी नहीं हो सकता, जिसका न रूप है, न रंग है और न विशेष कोई चिन्ह है, और जिसको वेदों ने अनादि और अनन्त कहके गाया है ।

से मिलकर बैठी (यथा योग्य आसनों पर विराज गये) ।

अलंकार—सम ।

मूल—(सतानन्द)—शोभना छंद—सुनि भरद्वाज वशिष्ठ अरु जावालि विश्वामित्र । सर्व ही तुम ब्रह्मरूपि संसार शुद्ध चरित्र ॥ कीन्हों जु तुम या वंश पै कहि एक अंश न जाय । स्वाद कहिये को समर्थ न गूंग ज्यों गुड़ छाये ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे भरद्वाज, वशिष्ठ, जावालि, तथा विश्वामित्र जी, मेरी विनय मुनिये, आप सब ब्रह्मरूपि हैं, आप लोगों के चरित्र ऐसे हैं जिन को कह मुन कर संसार शुद्ध होजाय । आप लोगों ने जो कृपा इस वंश (निमि वंश) पर की है उसके एक अंश का भी वर्णन नहीं हो सकता, मैं उसके कथन करने में वैसा ही असमर्थ हूँ जैसे गूंगा गनुष्य गुड़ खा कर उसका स्वाद कथन करने में होता है ।

१—उदाहरण । कोई कोई ब्रह्मन्त मानते हैं ।

२—सुखदा छंद—ज्यों अति प्यासो माँगि नीर लहै गंग । प्यास न एक बुझार, बुझै त्रै ताप धनु ॥ त्यों तुम तैं मे न भयो कहु एक मुख । पूजे मन के काम, जु देख्यो मुख ॥ १७ ॥

३—त्रै ताप=दैहिक, दैविक और भौतिक (तीन प्रकारके दुःख) । पूजे मन के काम=मन की सब कामनायें पूर्ति ।

(हे नद्यानुभावगण) जैसे प्यासा पानी माँगने

पर गंगाजल पाजाय, तो केवल उसकी प्यासही न बुझैगी, वरन् त्रिताप का बल नष्ट हो जायगा, तैसेही आपकी कृपा से जब हमको श्री राम जी के दर्शन प्राप्त हो गये तो हमें केवल एकही सुख (रूप से नेत्रों की तृप्ति) नहीं हुआ वरन् सबही कामनायें पूर्ण हो चुकीं अर्थात् हम सब मोक्ष के भी अधिकारी हो चुके ।

अलंकार—(द्वितीय) प्रहर्षण ।

मूल—(जनक)—सधैया छंद—

सिद्ध समाधि सजै अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई ।

रुद्र के चित्त-समुद्र वसै नित ब्रह्महु पै वरनी नहि जाई ।

रूप न रंग न रेख विशेष अनादि अनन्त जु वेदन गाई ।

केशव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई १८

शब्दार्थ—सिद्ध समाधि सजै अजहूँ=जिसको देखने के लिये

अवभी सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं । रुद्र=महादेव । गाधि

के नंद=विश्वामित्र जी ।

भावार्थ—(जनक जी कहते हैं कि) विश्वामित्र जी ने हम

सब को वही ज्योति साक्षात् दिखला दी, जिसको देखने के

लिये अब भी सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, जिसे जग में

योगियों ने कभी नहीं देखा, जो सदैव महादेव जी के मन

रूपी समुद्र में बसती है, जिसका ठीक वर्णन ब्रह्मासे भी नहीं हो

सकता, जिसका न रूप है, न रंग है और न विशेष कोई चिन्ह

है, और जिसको वेदों ने अनादि और अनन्त कहके गाया है ।

सूचना—यह राम जी की प्रशंसा है। आगे के छंदों
दशरथ जी की प्रशंसा है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—(पुनः जनक)—तारक छंद—

जिनके पुरिया भुव गंगाहि लाये। नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये।

जिनके सुन पाहनते तिय कीनी। हर को धनु भंग झमे पुर तीनी।

जिन आपु अदेव अनेक सँहार। सब काल पुरन्दर के रखवारे।

जिनकी महिमाहि अनंत न पायो। हम को वपुरा यश देवनगायो।

शब्दार्थ—भुव गंगाहि लाये=राजा भगीरथ। नगरी

सिधाये=राजा हरिश्चन्द्र, प्रसिद्ध दान वीर। पाहन ते तिय

कीनी=श्रीरामचन्द्र जी। अदेव=असुर। पुरन्दर=इन्द्र।

अनंत=शेष। वपुरा=वेचारा, निकम्मा।

भावार्थ—(राजा जनक राजा दशरथ की प्रशंसा में कहते हैं

कि) हे महाराज! आप ऐसे वैभवशाली कुल के हैं कि आप

के पूर्वजों में से भगीरथ जी गंगा को पृथ्वी पर लाये, और

हरिश्चन्द्र जी नगरी समेत सदेह स्वर्ग को चले गये (अर्थात्

असम्भव को सम्भव करनेवाले हुए) जिनके पुत्र ने पत्थर

को सजीव स्त्री बना दिया और शिव का धनुष तोड़ डाला,

जिससे तीनों लोकों के निवासियों को भारी अम हो रहा है

(कि ये कौन हैं) और आप ने स्वयं अनेक असुरों को

मारा है, आप सदा इन्द्र की रक्षा करते रहे हैं जिनकी

(आप की) बड़ाई शेष भी नहीं कर सकते। हमारी तो

कोई गिनती ही नहीं, आपका यश तो देवताओं ने गाया है।

(अतः मेरी एक विनती सुनिये) ।

मूल—तारकछन्द-विनती करिये जन जो जिय लेखो ।

दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखो ॥

यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी ।

हम हैं चरणोदक के अभिलाषी ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—जन जो जिय लेखो=जो आप मुझे हृदय से अपना दास समझते हों । ढिठई=ढिठाई, धृष्टता ।

भावार्थ—(राजा जनक भोजन के लिये निमंत्रण देते हैं) यदि आप मुझे हृदय से अपना दास समझते हों तो मैं निवेदन करता हूँ कि जिस प्रकार आपने कल कष्ट उठाया है (कृपा करके मेरे महल तक गये हैं) वसी प्रकार आज भी कष्ट उठाइये । (आप अवश्य कृपा करेंगे) ऐसा समझ कर ही मैंने यह ढिठाई की है; हमलोग (परिवार समेत) आपका चरणोदक लेना चाहते हैं ।

अलंकार—पर्यायोक्ति—(उत्तम व्यंग है) ।

मूल—तामरस छन्द—

जब ऋषि राज विनै करिलीनो । सुनि सबके कहणा रस भीनो ॥

वशरथ राय यहै जिय मानो । यह वह एक भई रजधानी ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—ऋषि=सतानंद जी । राज=राजा जनक ।

भावार्थ—जब ऋषि सतानंद और राजा जनक इस प्रकार विनती कर चुके तब उनकी विनती सुनकर सब के चित्त

करुण रस से आद्रं हो गये (विदेहराज राजा जनक की इतनी नम्रता देख सब के हृदय करुणा से परिपूर्ण हो गये) और राजा दशरथ ने तो यही समझ लिया कि यह और वह-मिथिला और अयोध्या--दोनों राज्य अब एक हो गये ।

मूल—(दशरथ)—दोहा—

हमको तुमसे नृपति की दासी दुर्लभ राज ।

पुनि तुम दीन्हीं कन्यका त्रिभुवन की सिरताज ॥ २३ ॥

भावार्थ--(राजा दशरथ कहते हैं कि) हे राजा जनक ! हमको तो आप सरीखे राजा की दासी भी मिलना कठिन था, सो आपने हमारे ऊपर कृपा करके त्रिभुवन शिरोमणि अपनी कन्या ही दे दी—कन्या देकर आपने हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई, आपके बनाने से हम आज से बड़े हुए ।

मूल—(भरद्वाज)—तामरस छंद—

सुख दुःख आवि सबै तुम जीते । सुर नर को यपुरे बलरिते ॥

कुल मढ़ होइ बड़ो लघु कोइ । प्रतिपुरपान बड़ो सुबड़ोइ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—यपुरे=बेचारे । बलरिते=बलहीन । प्रति पुरुपान बड़ो=कई पीढ़ियों से जिसके पूर्वज यश प्रतापादि में बड़े मान्य होते आये हों ।

भावार्थ--हे राजन ! तुमने सुख दुःख, काम क्रोधादि को जीत लिया है । आपके सामने विचारे शक्तिहीन सुर-नर क्या वस्तु हैं । किसी भी प्रतिष्ठित वंश में छोटा बड़ा (उन्नत के विचार से) कोई भी हो, यदि उसके पूर्वज (पिता, दादा,

परदादा आदि) यश प्रतापादि में प्रसिद्ध और सर्वमान्य होते आये हैं तो वह भी बड़ा (मान्य) है।

अलंकार—उल्लास और स्वभावोक्ति ।

मूल—(वशिष्ठ)—मत्त गयंद सवैया—

एक सुखी यहि लोक विलोकिय है वहि लोक निरै पगुधारी ।

एक यहां दुख देखत केशव होत वहां सुरलोक विहारी ॥

एक इहां ऊ उहां अति दीन सु देत दुहँ दिसिके जन गारी ।

एकहि भांति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेस तिहारी ॥२५॥

शब्दार्थ—निरै पगुधारी=नरक में जानेवाला ।

भावार्थ—सुगम ही है ।

मूल—(जावालि)—मत्तगयंत सवैया—

ज्यों माणि में अति जोति हुती रवितें कछु और महा छविछाई ।

चंद्रहि वंदत हैं सब केशव ईश ते वंदनता अति पाई ।

भागीरथी हुतियै अति पावन वावन ते अति पावनताई ।

त्यौ निमिंवश बड़ाई हुत्यो भई सीय सँजोग बड़ीयै बड़ाई ॥२६॥

शब्दार्थ—ईश=महादेव । वंदनता=वन्दनीयता, सम्मान ।

भागीरथी=गंगा । हुतियै=थी ही । पावनताई=पवित्रता ।

हुत्यो=था ।

भावार्थ—सुगम है ।

अलंकार—अनुगुण ।

मूल—(विश्वामित्र)—मालिनीछंद—गुण गण मणिमाला चित्त

चातुर्यशाला । जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता ॥

अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता । धिर चर अभिरामी

शब्दार्थ—चातुर्यशाला=चतुराई का धाम । सुखदगीता=अति प्रशंसित । पुत्रिका=लड़की । अखिल=सब । अभिरामी=बसने-वाला । जामातु=दामाद (पुत्रीपति) । नामी=प्रसिद्ध, यशवान् ।

भावार्थ—(विश्वामित्र जी राजा जनक की प्रशंसा करते हैं) हे राजन् ! आप में तो सर्व गुणों का समूह पाया जाता है, आप का चित्त चतुराई का धाम ही है । हे जनक, तुमने इसी से सर्व प्रशंसित सीता समान पुत्री को पाया है । और समस्त सुवर्णों के पालन-पोषण-कर्ता और ब्रह्मा, रुद्रादि के कर्ता तथा अचर चर जीवों में बसने वाले (राम जी) नामी पुरुष को दामाद बना लिया है (व्यंग यह कि सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं, राम जी विष्णु हैं, इस संबंध से तुम्हारे समान भाग्यवान् दूसरा नहीं है) ।

विशेष—इस छंद से ज्ञात होता है कि केशव जी तुकान्त-रहित कविता को बुरी नहीं समझते थे ।

मूल—दोहा—पूजि राजक्रपि ब्रह्मक्रपि दुंदुभि दीह यजाप ।
जनक कनकमंदिर गये गुरु समेत सुख पाय ॥२८॥

शब्दार्थ—राजक्रपि=राजा दशरथ तथा अन्य नृपतिगण । ब्रह्मक्रपि=यशिष्ठ, जावालि, वामदेवादि । दीह=(दीर्घ) बड़े बड़े । कनकमंदिर=राजा जनक के महल का नाम 'कनक भवन' था । गुरु=संतानन्द ।

भावार्थ—सुगम है ।

(जेवनार वर्णन)

मूल—चामरछंद—आसमुद्र के छितीस और जाति को गनै ।
 राजभौन भोज को सबे जने गये वने ।
 भांति भांति अन्न पान व्यंजनादि जवही ।
 देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवही ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—आसमुद्रके=समुद्र पर्यन्त के (समस्त पृथ्वी के) । छितीस=(छिति+ईश) राजा । व्यंजन=पदार्थ के भोज्य पदार्थ । पूरि भूरि भूरि भेवहीं=अनेक प्रकार के पदार्थ से पूर्ण (मर्म भेदी व्यंग से परिपूर्ण) । भेव=भेद, स्तन ।

नोट—छप्पन प्रकार तथा पट्टस युक्त व्यंजनों का वर्णन इसमें प्रकाश में छंद ३० से ३३ तक की टीका में देखिए ।

भावार्थ—समस्त पृथ्वी के राजा लोग (जो बहुत बड़े होते) और अगणित अन्य जातियों (वैश्य शूद्रादि) के राजा सज सज कर भोजन करने के हेतु राजा जनद्र के पदार्थ भाँति भाँति के पट्टस व्यंजन खाते हैं और किंगों के प्रकार से व्यंगमय गारियाँ देती हैं (गारी गाना है) ।

मूल—हरिगीतछंद—

अब गारि तुम कहँ देहि हम कहि कहा इष्ट बन ॥

कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करि कहत कुदर ॥

को गनै कितने पुरुष कीन्ह कहत सहस्र ॥

सुनि कुंवर चित दै वरणि ताको काइय सर ॥

परदार प्रिय=परछी के ॥

रख ली है । कुवाम=(१) बुरी स्त्री (२) (कु=पृथ्वी+वाम=स्त्री) पृथ्वी रूपों स्त्री । व्योहार=आचरण ।

टोटा—ऐसी किम्बदन्ती है कि यह “सप्त छंदमय गारी” केशव ने अपनी शिष्या प्रवीणराय पालुर से बनवाकर निज प्रिय में रखी है । इन सात छन्दों में केशव ने अपना उपनाम नहीं रखा है । ३० से ३६ तक एक ही छन्द है । ऐसा करना केशव की प्रकृति के विरुद्ध है । अतः किम्बदन्ती में कुछ सत्यता अवश्य है ।

अर्थ—हे दूल्हा राम जी, तुम्हें हम क्या कह के माली दें, (तुम माली देन योग्य तो नहीं हो, पर संसारी रीति के निर्वाह के लिये कुछ कहना ही चाहिये) सुनती हैं कि तुम्हारे पिता जी कुछ परस्त्री प्रेमी हैं और एक बुरी स्त्री (पृथ्वी औरत) कर ली है (पृथ्वी को स्त्री बनाया है, मूर्खति हैं) । उस कुवाम (बुरीस्त्री वा पृथ्वी-स्त्री) ने आज तक न जाने कितने पुरुष किये हैं । सारा संसार यही बात कहता है (हमारी अकेली नहीं) । सो हे कुँवर जी ? उसका व्यवहार (आचरण) मुनिये हम वर्णन करती हैं ।

अलंकार—श्लेष ।

मूल—बहु रूप स्त्री नवयौवना बहु रत्नमय वपु मानिये ।
 पुनि बसन रत्नाकर यन्त्रों अति विस्त चंचल जानिये ।
 सुम सेस-फन-मनिमाल पालका पीदि पदाति प्रबंधु ज ।
 करि सीस पञ्चिम पाँय पूरव गात सद्दज सुगन्धजू ॥३१॥

शब्दार्थ—रूप=सौंदर्य । स्यों=सहित । रत्नाकर=(१) समुद्र
(२) बहुत रत्नयुक्त । पलिका=पलंग । पढ़ति प्रबन्ध=का-
व्यादि रसीले वाक्य पढ़ती है । गात=शरीर । सहजसुगन्ध=
पृथ्वी में सहज ही सुगंध गुण है ।

भावार्थ—(वह आपके वापकी रखनी कुवाम) बड़ी रूपवती
और नवयौवना है, उसके शरीर पर बहुत से रत्न हैं—रत्नजटित
आभूषणों से सुसज्जित है (पृथ्वी रत्नमय है ही) फिर
उसकी साड़ी भी रत्नों से परिपूर्ण है (समुद्र से वेष्टित
पृथ्वी है ही) और उसका चित बड़ा चंचल है (पृथ्वी अ-
ति चंचल है ही) । शेषनाग के फनो की मणियों से जटित
पलंग पर लेट कर सुन्दर रसीली कविता पढ़ती है (बड़े शान-
दार पलंग पर लेटती हैं और राग भी गाती है—पृथ्वी शेष के
सिर पर है ही, और सायंस ऐसा कहता है कि पृथ्वी से एक
प्रकार का राग सा निकलता है) लेटने में सिरहाना पश्चिम
को और पैताना पूर्व को करती है, और उसके शरीर में
सुगन्ध तो स्वाभाविक ही है (सुगन्ध लगाने की जरूरत नहीं)

नोट—यह वर्णन एक सुन्दर ऐयाश युवती का रूपक है जो
एक पंश्वली स्त्री के लिये जरूरी है ।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट समासोक्ति ।

मूल—वह हरी हठि हिरनाच्छ देयत देखि सुन्दर देह सों ।
वर वीर यज्ञ वराह धरही लई छीनि सनेह सों ।

हैं गई बिहवल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू ।
पुनि कहुक दिन बस भई ताके लियो सरयसु चार जू ॥३४॥

१. हिरनाच्छ दैयत=हिरण्याक्ष दैत्य । यज्ञवराह=वाराह
भगवान् । वर ही=(बलही) बल पूर्वक, जबरदस्ती । बिहवल
अंग=शिथिलाङ्ग ।

भावार्थ—फिर उस कुवाम (पृथ्वीरूपी स्त्री) को सुन्दर दैत्य
कर हिरण्याक्षदैत्यने हट पूर्वक हरण किया । उस दैत्य से
श्रेष्ठ वाराह भगवान् ने बल पूर्वक छीन लिया, क्योंकि वे उस
पर स्नेह रखते थे । उनके साथ रहते रहते जब वह अत्यन्त
शिथिल अंग होगई, तब राजा पृथु ने फिर से उसे सजाया ।
फिर कुछ दिन पृथुकी वशवर्तिनी होकर रही और उन्होंने उस
का सर्वस्व सार निकाल लिया ।

नोट—इन छन्दों में पृथ्वी का इतिहास पुंश्र्वली स्त्री के रूपक
में कहा जा रहा है ।

अलंकार—पर्याय ।

मूल—वह गयो प्रभु पर लोक कीन्हो हिरणकश्यप नाथ जू ।
तेहि भौंति भौंतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साध जू ।
यह असुर धीनरसिंह मान्यो लई प्रबल छँड़ा के ।
लेई दई हरि हरिचंद्र राजदिं यहुत जिय सुख पाइ के ॥३५॥

शब्दार्थ—प्रभु=पति । नाथ=पति । भ्रमि=मूल कर भी ।
प्रबल=बलसे । लई छँड़ाके=छीन ली ।

भावार्थ—जब वह पति परलोक गत होगया तब उस कुवाम ने हिरण्यकश्यप को अपना पति बनाया । उसने अनेक माँति से उसे भोगा और भूलकर भी एक पलमात्र को साथ न छोड़ा । उस असुर को श्रीनरसिंह जी ने मार कर ज्वरदस्ती वह कुवाम छीन ली । उसको लेकर श्रीहरि ने अति प्रसन्न होकर राजा हरिश्चन्द्र को दिया ।

मूल—हरिचंद्र विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै ।
तेहि वरो वलि वरिवंड वर ही विप्र तपसी मामि कै ।
वलि बाँधि छल बल लई वामन दई इन्द्रहिँ आनि कै ।
तेहि इन्द्र तजि पति कन्यौ अर्जुन सहसभुज पहिचानि कै ३४

शब्दार्थ—वरो=वरण किया । वरिवंड=बलवान । वर ही=बल से, ज्वरदस्ती ।

भावार्थ—राजा हरिश्चन्द्र ने उसे दुष्टा (पुंश्चली) समझ कर विश्वामित्र को दे दिया, परन्तु उस दुष्टा ने विश्वामित्र को केवल तपस्वी ब्राह्मण समझ कर अपनी ज्वरई बलवान बलिके साथ विवाह कर लिया । राजा वलि को छल से बाँध कर वामन जी ने उसे लाकर इन्द्रको दिया । तब उस दुष्टा ने इन्द्रको छोड़ कर हजार भुजा वाले अर्जुन को अपना पति बनाया ।

मूल—तव तासु छवि मद छन्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जसदग्नि
जू । परशुराम सो सकल जान्यो प्रबल बल की अग्नि जू ।
तेहि वैर तव तिन सकल छविन मारिमारि बनाइ कै ।
इक बीस बेरा दई विप्रन दधिरजल अन्हवाइ कै ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—बनाइ के=सुव अच्छीतरह से ।

भावार्थ—तब उसके छविनदसे मस्त होकर सहस्राजुन ने जमदग्नि ऋषि की हत्या करवाली । तब परशुराम ने अपने प्रचंड बल की शक्ति से उसे सपरिवार जला डाला और उसीझी शत्रुता के कारण उन्हों ने सब क्षत्रियों को अच्छी तरह से मार कर इक्कीस बार रुधिर से स्नान करा करा कर दे दिया ।

७—यह रावरे पितु करी पत्नी तर्जा विप्रन थूँकि के ।
अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ हैंकि के ।
यह लाल मरियत ताहि तुमसों मयो नातो नाथ जू ।
अथ और मुख निरखै न ज्यों त्यों राधिये रघुनाथ जू ॥३॥

शब्दार्थ—तर्जा विप्रन थूँकिके=अपवित्र और तुच्छ समझकर छोड़ दिया । रहे ताकहँ हैंकिके=उसको लेने की अभिलाषा से छिपे छिपे उसकी ओर वाक रहे हैं ।

१५. ऐसी कुवाम को विले मादणों ने थूँकर छोड़ है, आपके पिता जी ने अपनी पत्नी बनाया है, और सब लोग ऐसा भी कहते हैं कि रावणादि राक्षस उसकी ओर अभिलाषा भरी दृष्टि से वाक रहे हैं (उसे अपनाना चाहते हैं) । हम इस लाला से अत्यन्त लज्जित हैं कि अब तो उसका नाश जापसे होगया (आपकी माता हो चुकी) अब हे नाथ ! अब उसे इस प्रकार रक्षिये कि उसे अन्य पुरुष का नुँह न देखना पड़े ।

नोट—बड़ा ही मार्मिक व्यंग है। ऐसे ही व्यंग को उत्तम काव्य कहते हैं)।

विशेष—जवनार के बाद बरात जनबासे गई। तदनन्तर दूसरे दिन का आचार आरंभ हुआ।

(पलकाचार वर्णन*)

मूल—सोरठा—प्रात भये सब भूप, वनि वनि मंडप में गये।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजै॥३७॥

शब्दार्थ—रूप अनुरूप=अपने अपने दर्जे के मुताबिक।
सोभिजै=शोभित हुए, बैठे।

मूल—नराचछंद—रची विरंचि बास सी निथम्ब राजिका
भली। जहाँ तहाँ बिछावने वने घने थली थली।
वितान सेत स्याम पीत लाल नील के रंगे।
मनो दुहूँ दिसान के समान विव से जगे ॥३८॥

शब्दार्थ—विरंचि बास=ब्रह्माका निवास। निथम्बराजिका=
स्वर्गोकीपंक्ति। थली थली=जगह जगह पर। वितान=तंतू।
विव=प्रतिविव।

भावार्थ—(उस मंडप में) ब्रह्मलोक की सी स्वर्गो की पंक्ति
रची गई है। सब स्थानों पर खूब बिछौने बिछे हैं। (बिछौनों

* हुंदेलखण्ड में यह रीति प्रचलित है। वर अपने सजाओं सहित मण्डप में जाता है। वहाँ वरबधू को एक पलंग पर बैठा वधू की रखी सहेलियां कुछ हात-बिलास करती हैं। नगर की सन कियों को भी सुभावसर मिलता है कि वे वर को अच्छी तरह देखें।

मंडल ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक चंद्रमा ही शोभा दे रहे हैं । उनकी भाँहे देखने से प्रत्यक्ष ऐसी मालूम होती हैं, मानो अत्यन्त सुन्दर काम के मन के बने हुए धनु हैं । उनका हास्य मानो चंद-चाँदनी से युक्त है (चंद्र किरण ही है), उनके मुख सहज ही सुगन्ध से सुवासित हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—अमल कपोले आरसी, बाहुइ चंपकमार ।

अवलोकनै बिलोकिये, मृगमदमय घनसार ॥४३॥

शब्दार्थ—अमल=निर्मल, स्वच्छ कातियुक्त । बाहु=(बाहु)

भुज । चंपकमार=चंपे की माला । अवलोकन=चितवन ।

मृगमद=कस्तूरी । घनसार=कपूर ।

अन्वय—अमल कपोले आरसी मय बिलोकिये, बाहुइ चंपकमार मय बिलोकिये, और अवलोकनै मृगमद तथा घनसार मय बिलोकिये ।

भावार्थ—उन बियों के सुन्दर स्वच्छ कपोल आरसीमय देख पड़ते हैं (मानो आरसी ही हैं) उनके बाहु चंपकमालमय (चंपे की माला सम) ही देख पड़ते हैं । और उनकी दृष्टि (यहाँ पर आँखें) कस्तूरी और कपूरमय देख पड़ती हैं—अर्थात् काली पुतली और आँख की सफेदी ऐसी जान पड़ती हैं मानो कस्तूरी और कपूर ही हों ।

अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का संदेह संकर है ।

1

2

3

4

5



मूल—दोहा—गति को भार महाउरै आँगि अंग को भार ।

केशव नख सिख शोभिजै सोभाई सिंगार ॥ ४४ ॥

०६ अर्थ—आँगि=अँगिया, चोली । अंग=शरीर ।

भावार्थ—(वे स्त्रियाँ इतनी सुकुमारी हैं कि) चलते समझ उन्हें महाउर ही भार सा जान पड़ता है, अँगिया ही शरीर का भार जान पड़ता है (महाउर और अँगिया जो सिंगार की वस्तुएँ हैं वे भी उनको भार समान जान पड़ती हैं) । केशव कहते हैं कि वे नखशिख से शोभित हैं । अतः शोभा ही उनके लिये शृंगार है (अन्य शृंगारों की जरूरत नहीं) ।

मूल—सवैया—

बैठे जराय जरे पलिका पर राम सिया लव को मन मोहें ।
ज्योति समूह रहो मदिकै सुर भूलि रहे वपुरो नर को हैं ॥
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहें ।
सोभन सूरज मंडल मांझ मनो कमला कमला-पति सोहें ॥४५॥

शब्दार्थ—जराय जरे पलिका=जड़ाऊ पलंग । ज्योति समूह रहो मदिकै=चारों ओर से एक ज्योति समूह ने उन्हें घेर लिया है । वपुरा=वेचारा । टोहें=तलाश करते हैं । सोभन=सुन्दर ।

भावार्थ—(राजागिरि के जाँगन और ऐसी स्त्रियों के मध्य में) श्री सीताराम जी जड़ाऊ पलंग पर बैठे हुए सब के

मनों को मुग्ध कर रहे हैं। चारों ओर से एक ज्योति मंडल (सुन्दर और कान्तिमयी स्त्रियों की मंडली) उन्हें घेरे हुए है। इस शोभा को देखकर देवता तक भ्रम में पड़ जाते हैं। वे चां मनुष्य तो किसी गिनती ही में नहीं हैं। केशव कहते हैं कि तीनों लोकों में कविगण वृथा ही चाहे उपमा तलाश करते रहें, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो सुन्दर त्र्यं मंडल में लक्ष्मी-नारायण निराजे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(राम शिखनख वर्णन)

मूल—दोहा—गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ।

शिव सिर गंगाजल किधौ चंद्रचंद्रिका साथ ॥४॥

शब्दार्थ—गंगाजल=एक प्रकार का सपेद चमकीले रेशमी कपड़ा।

व्याख्यान—श्री रघुनाथ जी के सिर पर यह गंगाजल पगड़ी है, या शिवजी के सिर पर सचनुच गंगाजल ही जिसमें चंद्रमा की किरणों की छटा भी संयुक्त है—(चंद्र किरण द्वारा चमकता हुआ गंगाजल ही है)।

अलंकार—संदेह।

नोट—पलकाचार समय पौली पागका होना जरूरी नहीं। अतः सपेद पाग वर्णन की गई।

मूल—तोमरछंद—

कसु अकुटिल कुटिल सुरेश। अति अमल, सुमिल सुरेश

विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र । जनु जयाजय के मंत्र ॥४७॥
 शब्दार्थ—कुटिल=टेढ़ी । सुवेश=सुन्दर । सुमिल=सचिकण ।
 सुदेश=उचित और वरावर लंबाई चौड़ाई की । सुतंत्र=
 स्वच्छन्दता पूर्वक । जयाजय के मंत्र=(जय+अजय के
 मंत्र) दूसरों को जीतने (वश में करने) तथा स्वयं अजित
 रहने के मंत्र ।

भावार्थ—श्री राम जी की भौहें किंचित टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल,
 सचिकन तथा उचित और वरावर लंबाई चौड़ाई की हैं । वे
 ऐसी जान पड़ती हैं मानो ब्रह्माने स्वच्छन्दता पूर्वक संशो-
 धित करके अपने हाथ से दूसरों को जीतने और स्वयं अजित
 रहने के मंत्र लिख दिये हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

श्लोक—दोहा—जदपि भ्रुकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति ।
 तदपि सुरासुर नरनकी निरखि शुद्ध गति होति ॥४८॥

भावार्थ—यद्यपि रघुनाथ जी की भ्रुकुटो की छवि देखने में
 टेढ़ी है, तो भी उसे देखकर सुर, असुर और मनुष्यों को
 सूर्धगति (मोक्ष) प्राप्त होती है ।

अलंकार—विरोधाभास ।

श्लोक—दोहा—श्रवण मकर कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र ।
 शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र ॥४९॥

शब्दार्थ—श्रवण=कान । मकरकुंडल=मकराकृति कुंडल ।

सुखमा=(सुपमा) शोभा । श्रवण=नक्षत्र । मकर=मकर राशि की राशि ।

विशेष—उचरापाद, श्रवण और घनिष्ठा के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते हैं । यह केशव की विचित्र सृष्टि है और उनके ज्योतिष-ज्ञान की सूचक है ।

भावार्थ—शुनाथ जी के कानों में मकराकृति (मछली की राक्ष के) कुंडल शोभा दे रहे हैं और मुख की शोभा भी वहीं एकत्र हो रही है । यह ऐसा मालूम होता है माने मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा शोभा

दे रहा हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—पद्मटिकाच्छन्द—

अति यद्गुण शोभा सरसी सुरंगे । तर्हँ कमल नैत्र नासिका तरंगे ।
अन युवति चित्त विभ्रम विलासात्तेह भ्रमर भयत रसरूप आसरे ।

शब्दार्थ—शोभा=शोभा । सरसी=पोखरी, तलैया । सुरंगे=निर्मल । चित्त विभ्रम विलास=चित्तों के अमित होने का कौतुक ।

भावार्थ—श्री शुनाथ जी के मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल पुष्करिणी है । उसमें नेत्र ही कमल हैं और नासिकाही तरंगें हैं और उस शोभा-पुष्करिणी पर युवतिजनों के जो चित्त कौतुक से भ्रमण करते हैं (कौतूहल से बार-बार देखती और मोहित होती हैं) वे ही रूप-रूपी मकरन्द की आशा से मंडलते हुए

भँवर हैं। तात्पर्य यह कि जैसे मकरंद की आशा से कमलों पर भँवर भ्रमते हैं, वैसे ही सुन्दर रूपरस-पान की आशा से युवतियों के चित्त श्री राम जी के नेत्रों पर धूमते हैं।

अलंकार—रूपक (सांग)।

मूल—निशिपालिकाछन्द—सोभिजति, दंत रुचि शुभ्र, उर आनिये। सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये। ओंठ-रुचि रेख सविसेप सुभ श्रीरये। सोधि जनु ईश सुभ लक्षण३ सवै दये ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—रुचि=कान्ति। शुभ्र=सफेद। अनुरूपक=प्रतिमा। रेख सविसेप=एक विशेष प्रकार की रेखा के समान (अर्थात् बहुत पतले—ओंठों का पतला होना ही शुभ लक्षण है)। श्रीरये=शोभा से रंजित। ईश=ब्रह्मा (रचयिता)। सोधि=ढूँढ ढूँढकर।

भावार्थ—दाँतो की कान्ति उज्वल शोभा देती है। जब हृदय में लेकर उसपर विचार करता हूँ तो ज्ञात होता है मानो वह (दाँतो की शोभा) सत्य के रूप की प्रतिमा ही है। ओंठों की कान्ति एक विशेष रेखा सी दीखती है जो शुभ शोभा से रंजित है और ऐसा जान पड़ता है मानो विधाता ने ढूँढ ढूँढ कर समस्त शुभ लक्षण इन्हीं ओंठों को दे दिये हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—प्रीवा श्रीरघुनाथ की, लसति कंठु वर वेप। साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ५२

शब्दार्थ—श्रीवा=गला । कंबु=शंख ।

भावार्थ—श्रीसुनाथ जी का गला, श्रेष्ठ शंख की आकृति का शोभा देता है (अर्थात् शंख की भाँति उसमें भी तीन बलियाँ हैं) । मन, वचन, कर्म तीनों से वह गला साधु है अतः मानो इसी बात के प्रमाण-स्वरूप उसमें ब्रह्मा ने तीन रेखायें करदी हैं

अलंकार--व्येक्षा ।

मूल—सुन्दरीछन्द—

सोमन दीर्घ बाहु विराजत । देव सिंहात अदेवत लाजत ।
पैरिन को अहिराज वखानधु । है हित कारिन की धुजमानहु ।
यों उरमें भृगुलात वपानहुँ । धीकर को सरसीरुह मानहु ।
सांहत है उर में मणियों जनु । जानकि को अनुरागि रख्यो मनु ।

शब्दार्थ—सोमन=सुन्दर । सिंहात=झाह करते हैं (कि ऐसी भुजाएँ हमारी न हुई) । अदेवत=(अदेवता) असुर-गण । लाजत=लज्जित होते हैं (कि इन्हीं भुजाओं से हम पराजित हुए हैं) । अहिराज=बड़ा विषधर सर्प । धुज=ध्वजा । भृगुलात=भृगु जी के चरण का चिन्ह । सरसीरुह=कमल । मणि=पदक (एक भूषण विशेष जिसमें एक बड़ा रत्न जड़ा रहता है, और वह वक्षस्थल पर पहना जाता है) ।

नोट—यहाँ मत्स्य से ऐसा जान पड़ता है कि वह मणि लाल रंगकी थी, क्योंकि अनुराग का रंग लाल माना गया है ।

भावार्थ—(श्री राम जी की) सुन्दर लंबी लंबी भुजाएँ शोभा दे रही हैं, जिन्हें देख कर देवगण डाह करते हैं और असुरगण लज्जित होते हैं । शत्रुओं के लिये उन्हें बड़ा विष-घर सर्प ही कहना चाहिये और मित्रों के लिये ध्वजा ही मानना चाहिये—अर्थात् वैरियों की विनाशिका है और मित्रों का यश और वैभव सूचन करती हैं (५३)

अलंकार—उल्लेख ।

भावार्थ—(श्री रामजी के) वक्षस्थलपर मृगुचरण—चिह्न ऐसा है मानो (हृदयनिवासिनी) श्रीलक्ष्मीजी के हाथ का कमल हो । हृदयपर पदक ऐसा शोभायमान है, मानो श्री जानकीजी का मन अनुराग युक्त होकर वहीं वक्षस्थल पर टिक रहा है (५४)

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—सोहत जनरत राम उर देखत तिनको भाग ।
आय गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग ॥५५॥

शब्दार्थ—जनरत=भक्त-वत्सल । अन्तर=हृदय का भीतरी भाग ।

भावार्थ—(वह पदकमणि) भक्त-वत्सल श्रीरामजी के उर पर शोभायमान है, उस शोभा को जो लोग देख रहे हैं उन का तो बड़ा सौभाग्य है । केशव कहते हैं कि मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो हृदय के भीतर का अनुराग (भक्तवत्सलता) ही ऊपर आगया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—पद्मटिकाछंद—

शुभमोतिन की दुलरी सुवेश । जनु वेदन के आपर सुवेश ।
गज मोतिन का माला विशाल । मन मानहु संतन के रसाल ।

शब्दार्थ—शुभ=दोषरहित । दुलरी=दो लड़ों की माला ।

सुवेश=सुन्दर । आपर=अक्षर । सुवेश=सुन्दर । रसाल=

शान्तरस से परिपूर्ण ।

भाचार्थ—दोष रहित मोतियोंकी दोलड़ी की माला श्रीराम
की पहने हैं, वह ऐसी है मानो वेदों के सुन्दर अक्षर हैं
बड़े बड़े गजमोतियों की भी माला पहने हैं वे गज-मुक्ता ऐसे
जान पड़ते हैं मानो सन्तों के रसाल (शान्तरसपूर्ण) मन हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—विशेषकछंद—श्याम दुऊ पग लाल लखे दुति यो तल
की । मानहु सेवति ज्योति गिरा जमुना जल की । पाट ज्यो
जति सेत सु हीरन की अदली । देवनदी-कन मानहु सेवत
भाँति मर्ला ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—दुति=आमा । तल=तलवा । गिरा=सरस्वती ।

पाट=रेशम । देवनदी=गंगा । कन=(कण) जलबिन्दु ।

विशेष—इसछंद में नतीपहने हुए चरणका वर्णन है ।

भाचार्थ—शेनों पैरों के ऊपरी भाग तो श्याम रंग के हैं और
तलों की आभा लाल है । ऐसा मालूम होता है मानो सर-
स्वती की ज्योति जमुना जल की ज्योति का सेवन कर रही

है—जमुना में सरस्वती आमिली है (और जूतियों में) रेशम से गुँथी हुई हीरों की अति सफेद पंक्ति भी है। यह संयोग ऐसा जान पड़ता है मानो गंगाजल के कणिका भी उस संगम का सेवन भलीभाँति कर रहे हैं—गंगा भी वहाँ मौजूद हैं। ता-
स्पर्य यह कि त्रिवेणी ही रामचरणों का सेवन कर रही है
अतः श्रीरामजी के चरण अति पवित्र और पतित-पावन हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा^x—को बरणे रघुनाथ छवि केशव बुद्धि उदार।
जाकी किरपा सोभिजति, सोभा सब संसार ॥५८॥

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि किसकी ऐसी उदार (बड़ी) बुद्धि है कि श्रीरघुनाथजी की शोभा का वर्णन कर सके, जिन रघुनाथजी की कृपा से ही समस्त संसार की शोभा शोभायमान होती है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति ।

(सीता स्वरूप वर्णन)

मूल—दण्डक छंद^x—को है दमयंती इन्दुमती रति रातिदिन,
होहि न छवीली छनछवि जो सिंगारिये । केशव लजात जल-
जात जातवेद ओष, जातरूप वापुरो विरूप सो निहारिये ॥ मदन
निरूपम निरूपन निरूप भयो, चंद बहुरूप अनुरूपके विचार-
रिये । सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं, रूपही के
रूपक तो बारि बारि डारिये ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—दमयंती=राजा नल की स्त्री (रूपवती स्त्रियों में प्र-
सिद्ध) । इन्दुमती=राजा अज की स्त्री (श्रीरामचन्द्रजी की दादी)

की रूपवर्तियों में प्रसिद्ध थी । छनछवि=विजली । जलनात=कमल । जातवेद=अग्नि । जातरूप=सोना । विरूप=वदसूरत, अनुन्दर । मदन=काम । निरूप=अदेह । बहुरूप=(अनेक रूप धारण करनेवाला) बहुरूपिया, स्वाँग भरने वाला । अनु-रूपक=प्रतिमा । देवता=देवियाँ, देवनारियां (शची, ब्रह्मणी, कुबेर-पत्नी इत्यादि) । वारिवारि ढालना=निछावर करना ।

वशेष—देवता शब्द का प्रयोग केशव ने इसी ग्रन्थ में स्त्रीलिङ्गमें कई बार किया है । 'मदन' की उपमा निरूपण में केशव ने उपमा के नियम को भंग किया है । स्त्रियों की शोभा की उपमा पुरुषों की शोभा से देना उचित नहीं ।

साधार्थ—दमयन्ती, इन्दुमती और रति (सीता के मुकाबिले) क्या हैं (तुच्छ हैं) । इन्हें जो सतोदिन विजलीसे सिंगारते रहिये तब भी उतनी छत्रीली न होंगी (जितनी सीताजी हैं) । केशव कहते हैं कि सीता के रूप के सामने कमल और अग्नि की आभा लज्जित होती है, और सोना विचारा तो वदसूरत देख पड़ता है । अनुपम कामदेव भी उपमानिरूपण करते समय अदेह होने के कारण कुष्ठ न जेंचा, और अनेक रूपधारी चन्द्रमा तो बहुरूपिया की प्रतिमा ही बनारियां क्या हैं? उनका ऐसा रूप है कि सौन्दर्य की जितनी उपमाएँ हैं वे सब उनके रूप पर निछावर कर ढालना चाहिये ।

अलंकार—काकूक्ति से पुष्ट सम्बन्धातिशयोक्ति अथवा प्रतीर्ष ।

(स्वांगी) विचार में आया । सीता के रूप के सामने कुरूप-
मूल—गीतिका छंद*—

तहँ सोभिजैं सखि सुन्दरी, जनु दामिनी बपु मण्डिकै ।
घनस्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघन छँडि कै ।
यक अंग चर्चित चारु चंदन चन्द्रिका तजि चंद को ।

जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनन्द—कंद को ॥६०॥

शब्दार्थ—वपुमण्डिकै=शरीर धरके । ओघन=समूह ।
चर्चित=लगाये हुए । चन्द्रिका=चन्द्र-किरण । आनंदकन्द-
=आनंदरूप जल देने वाले वादल ।

भावार्थ—वहाँ सीताजी की सुन्दरी सखियाँ भी शोभित हैं,
मानो विजली ही अनेक देह धारण करके जड़ मेघ-स-
मूह को छोड़ कर चैतन्य शरीरधर (मेघवत् श्याम)
श्रीरामजी का सेवन करती हैं । कोई सखी अपने शरीरमें
सुन्दर (कपूर युक्त) चंदन लगाये है, वह ऐसी जान पड़ती
है मानो राहु के डर से चंद्रकिरण चंद्रमा को छोड़ कर
आनंद वरसानेवाले रघुनाथ जी की सेवा कर रही हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—गीतिका छंद—मुख एक है जत, लोक-लोचन लोल
लोचन के हरे । जनु जानकी संग सोभिजैं शुभ लाज देहादि
को धरे ॥ तहँ एक फूलच के विभूषन एक मोतिन के किये
जनु छीर सागर देवता तन छीए छीदनि को छिये ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—लोक-लोचन=लोगों के नेत्र । लोल=चंचल । देवता=

* यह वैदिक गीतिका है ।

देवी (यहाँ भी 'देवता' शब्द स्त्रीलिंग में है)। छिये=छुर, छुए।
नोट—बुंदेलखंड में 'छूना' को 'छीना' और 'खूव' को 'खीव' बोलते हैं।

भावार्थ—कोई सखी लज्जा की अधिकता से मुख नीचे झे किये है, पर अपने नेत्रों को चंचल करके (इधर उधर कनखियों से देखकर) लोगों के नेत्रों को हरती है। (अपनी ओर खींचती है), वह ऐसी जान पड़ती है मानो शुभ लज्जा ही शरीर धारण किये जानकी के संग में शोभा दे रही है। वहाँ कोई कोई सखी फूलों के और कोई मोतियों के आभूषण पहने है, वे ऐसी मालूम होती हैं मानो क्षीर सागर निवासिनी देवियाँ (लक्ष्मियाँ) हैं जिनके शरीर में दूध के छीटें अब तक लगे हुए हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सोरठा-पक्षिरे बसन सुरंगं, पाचकयुत स्वाहा मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलय की॥६२॥

शब्दार्थ—पाचक=अग्निदेव। स्वाहा=अग्नि की स्त्री।

भावार्थ—कोई सखी लाल पल्ल पहने हुए है, वह ऐसी मालूम होती है मानो अग्नि समेत स्वाहा है। किसी सखी का अंग सहज ही इतना सुगंधित है, मानो वह मलयगिरि-निवासिनी कोई देवी है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चामरछंद-मत्त वंतिराज, राजि, यात्रिराज, राजि के।
दंभ क्षीर द्वार मुल्ल क्षीर चारु साजि के॥

१ वेप वेष वाहिनी असेप वस्तु सोधियो ।

दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दिया ॥६३॥

शब्दार्थ—दन्तिराज राजि=बड़े हाथियों का समूह । बाजिराज राजि=बड़े घोड़ों का समूह । कै=को । हेम=सुवर्ण, । हीर=जवाहिरात । मुक्त=मोती । वाहिनी=सेवक-समूह । असेप=सब । सोधियो=तलाश करवाई । दायजो=यौतुक, दहेज । विदेहराज=जनकजी ।

भावार्थ—बड़े बड़े मस्त हाथियों के समूहों और बड़े बड़े घोड़ों के समूहों को सुवर्ण के आभूषणों, हीरे मोतियों के हारों और सुन्दर वस्त्रों से सजा कर और तरह तरह के सेवक-समूहों से सब देने योग्य वस्तुओं को तलाश कराके राजा जनक ने भाँति भाँति के दहेज श्री राम जी को दिए ।

अलंकार—उदात्त ।

श्रुल—चामरछन्द—वस्त्रभौन, स्यों वितान आसने विछावने । अस्त्र सस्त्र अंगत्राज भाजनादि को गने ॥ दासि दास वासि वास रोम पाट को कियो । दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—वस्त्रभौन=वस्त्र के बने हुए धर (तंबू, रावटी, कनात इत्यादि) । स्यों=सहित । वितान=शामियाने । अंगत्रान=कवच, जिरहवस्त्र । भाजन=भोजन पान के पात्र (लोटा, थारी, गिलास, सुराही, कलस, परात, कोपरादि) । वासि वास=छोटे बड़े कपड़े । रोम पाट को कियो=जन

और रेशम के बुने हुए (कंबल, दुशाले, पीताम्बरदि) ।
भाषार्थ—सरल ही है ।

मूल—दोहा-जनकराय पहिरादयो, राजा दशरथ साथ ।

छत्र चमर गज बाजि वै आसमुद्र छितिनाथ ॥६६॥

भाषार्थ—राजों दशरथ के साथ ही साथ, राजा जनक ने,
तमाम पृथ्वी मर से आये हुए राजों को छत्र चमर घोड़े हाथी
देकर यथोचित सत्कार से बक्षामूषण पहिनाये ।

नोट—इस रीति को बरतौनी कहते हैं ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—निशिपालिका छंद—दान दिय राय दशरथ सुख
पाय के । सोधि ऋषि ब्रह्म ऋषि राजन बुलाय के ॥ तोपि
जांचक सकल दादुर मयूर से । मेघ जिमि वर्षि गज बाजि
पयपूर से ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—सोधि=तलाश कराके । दादुर=मैदक । मयूर=मोर ।
पयपूर=वारिधारा ।

भाषार्थ—(वहेज पाकर) राजा दशरथ ने भी प्रसन्न होकर
ब्रह्मऋषियों और राजाओं को दूँद दूँद कर बुलाकर सबको
यथोचित दान दिया । सब बाघकों को हाथी घोड़ों की वर्षा-
धारा बरसा कर जैसे ही संतुष्ट कर दिया जैसे मेघ वारिधारा
बरसा कर मैदकों और मोरों को संतुष्ट कर देता है ।

अलंकार—पूर्वोपना ।

छठवाँ प्रकाश समाप्त ।

सातवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या प्रकाश ससम कथा परशुराम संवाद ।

रघुबर सों अरु रोष तोहि भंजन मान विषाद॥

मूल—दोहा—विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाय ।

मिले आगिली फौज को परशुराम अकुलाय॥१॥

मूल—चंचरीछन्द—मत्त दंति अमत्त ह्वेगये, देखि देखि न गज्जहीं ।

ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिँ बज्जहीं । डारि डारि
हृथ्यार सूरज जीव लै लय भंज्जहीं । काटि कै तन शान एक
हि मारि भेषन सज्जहीं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—मत्त=मस्त । दंती=हाथी । अमत्त=मदह्वीन ।

सुदेश=सुन्दर । सूरज=शूरो के पुत्र (पीढ़ियों के शूर) ।

तनत्रान=कवच ।

भावार्थ—(परशुराम के आते ही) मस्तहाथियों का मद

उतर गया, अब वे एक दूसरे को देख कर गरजते नहीं, ठौर

ठौर पर सुन्दर (गंभीरध्वनि से) नगाड़े नहीं बजते । पीढ़ियों

के शूरवीर लोग अस्त्र-शस्त्र फेंक फेंक कर अपने-अपने जीव

लेले भांगते हैं और कोई कोई तो, कवचादि काट काट कर

(फेंक कर) स्त्री का भेष धारण करलेते हैं ।

नोट—इस छंद में परशुराम के आतंक का अच्छा वर्णन है ।

अलंकार—अत्युक्ति (शूरता की) ।

मूल—दोहा—^xवामदेव ऋषि सों कही, परशुराम रणधीर ।
महा देव को धनुष यह, को तोन्यो बल धीरा३॥

शब्दार्थ—वामदेव=राजा दशरथ के एक मंत्री ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—(वामदेव)—दोहा—

^x महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज ।

तोन्यो 'रा' यह कहत ही समुक्ष्यो रावणराज ॥ ४ ॥

भावार्थ—वामदेवने उत्तर में कहना चाहा कि हे ऋषिराज परशुराम जी, महादेव के धनुष को 'रा' (म ने तोड़ा है), पर 'रा' अक्षरमात्र के उच्चारण से परशुरामजी ने 'रावण' समझा और अति क्रुद्ध होकर वामदेव की बात काट कर बोल उठे कि:—

^x मूल—(परशुराम)—दोहा—

अति कोमल नृप सुतन की प्रीति बली अपार ।

अब कठोर दशकंठ के काटहु कंठ कुठार ॥ ५ ॥

भावार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर अपने कुठार को सम्बोधित करते हैं) हे कुठार ! तूने असंख्य अति सुकुमार राजकुमारों की गर्दन काटी है (पर यह कोई बड़ा बहादुरी का काम नहीं था) अब रावणके कठोर कण्ठ काट, (तो जानें कि तू वीर है) । फिर विचार कर कहते हैं:—

मूल—(परशुराम)—मत्तगण्ड सबैया—

बाधिके बाँध्यों जु बालि बली पलना परलै सुत के हित ठाटे ।
हृदयराज लियो गहि केशव भायो हो छुद्र जु छिद्रहि डाटे ॥

बाहर काढ़ि दियो बलिदासिन जाय पन्यो जु पताल के बाटे ।
तोहि कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठहि काटे ॥६॥
शब्दार्थ—बाधि कै=रोक कर । सुत के हित ठाटे=पुत्र का
हित किया, (जोपुत्र चाहता था वही किया) । हैहयराज=
सहस्राजुन, कार्तवीर्य । आयो हो=आया था । छिद्रहि
डाटे=कुअवसर देखकर । बाटे=रास्ते में ।

भावार्थ—जिस रावण को बली बालिने रोक कर बाँध लिया था
और पलना में खिलौना की तरह उलटा लटका कर अपने
पुत्र का हित साधन किया था (पुत्रको खुश किया था)
और जिस रावण को हैहयराज ने पकड़ लिया था जब वह
क्षुद्र कुअवसर देखकर उसके निकट गया था (स्त्रियों सहित
जलक्रीड़ा करते समय रावण हैहयराज के पास गया था) और
जिस रावण को बलि की दासियों ने बाहर निकाल दिया था
जब वह पाताल के मार्ग जापड़ा था (जब पाताल गया था)
उस ऐसे बलहीन रावण के कंठों को काटने से हे कुठार !
तूही कह ! तुझे क्या बड़ाई मिलैगी ? (अर्थात् कुछ भी नहीं)
नोट—बालि, हैहयराज और बलि की दासियों द्वारा रावण
के अपमान की कथायें ग्रन्थान्तर से समझ लो ।

मूल—सोरठा—जइपि है अतिदीन, मोहि तऊ खल मारने ।
गुह अपराधाहि लीन, केशव क्यौंकरि छोड़िये ॥ ७ ॥

भावार्थ—यद्यपि रावण मेरे कुठार के लिये अति तुच्छ बलि
है, तथापि मुझे उस खल को मारनाही—पड़ेगा, क्योंकि जी

कर दिया (तोड़ डाला) । कौन जानता था कि ऐसा होगा ।
अलंकार—असंभव ।

मूल—(परशुराम, प्रकट) किरीट सवैया—

घोरों सबै रघुवंश कुठारकी धार में धारन बाजि सरत्थहि ।
वान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करी अरिहा समरत्थहि ।
रामहि घाम समेत पठे वन कोप के भार में भूजौ भरत्थहि ।
जो धनुहाथ धरै रघुनाथ तो आनु अनाथ करौ दसरत्थहि । १२

शब्दार्थ—वारन=हाथी । लच्छन=लक्ष्मण । लच्छ=(लक्ष्ये)
निशाना । अरिहा=शत्रुघ्न । रघुनाथ=राम ।

भावार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर कहते हैं) आज हाथी
घोड़े और रथ समेत समस्त रघुवंशियों को कुठार की धार
में डुबादूंगा (मारडालूंगा), बाणों की वायु से लक्ष्मण को उड़ा कर
समर्थ शत्रुघ्न को निशाने की तरह बेधदूंगा । राम को स्त्री
सहित वन को भगाकर कोप के भार में भरत को मूर्च्छा,
और यदि राम धनुष उठा कर लड़ेगा तो आज दसरथ को
अनाथ करदूंगा । अर्थात् वंशनाश करदूंगा ।

अलंकार—स्वभावोक्ति (प्रतिज्ञाबद्ध) ।

मूल—सोरठा-रामदेखि रघुनाथ, रथ ते उतरे वेगि दे ।
गद्दे भरथ को हाथ, आवत राम विलोकियो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—राम=परशुराम । रघुनाथ=श्रीरामचन्द्र । वेगिदे=
शीघ्रता से ।

भावार्थ—खगम ।

मूल—(परशुराम —दंडक छंद—अमल सजल घनस्याम
घपु केशोदास, चन्द्रहृते चारु मुख, सुप्रभा को प्राम है।
कोमल कमल दल दीर्घ विलोचननि, सोदर समान रूप
न्यारो न्यारो नाम है ॥ बालक विलोकित पूरण पुरुष गुण,
मेरो मन मोहियत पेसो रूप धाम है। वैर जिय मानि वामदेव
को धनुष तोरो, जानत हौं बीस विसे राम भेस काम है ॥१४॥

शब्दार्थ—अमल=निर्मल, सकान्ति । वपु=शरीर । चारु=
सुन्दर । पूरण पुरुष गुण=विष्णु के गुणों से युक्त । मोहियत=
मोहित करता है । बीस विसे=(बीसो विस्वा) निश्चय ।

भावार्थ—(राम का रूप देखकर परशुराम जी निज मन में
विचार करते हैं) कैसा निर्मल जलपूर्ण काले बादल के
समान सुन्दर शरीर है, और मुख चंद्रमा से भी अधिक
शोभा तथा कान्ति का समूह है । कोमल कमल दल से (क-
रुणा पूर्ण) बड़े बड़े नेत्र हैं, दोनों सहोदर भ्राता (राम और
भरत) एक रूप हैं, पर नाम न्यारे न्यारे हैं । इस बालक
में तो विष्णु के गुण दिखलाई पड़ते हैं, यह इतना रूपवान्
है कि मेरा भी मन (सहज विरक्त) इसको देख कर मोहित
होता है, अतः निश्चय जान पड़ता है कि यह राम के भेष में
कामदेव है और इसी कारण पुराना वैर स्मरण करके इसने
महादेव का धनुष तोड़ा है ।

अलंकार—भ्रम और अनुमान संकर ।

मूल—(भरत)—गीतिकावृत्त—

कुशमुद्रिका समिधं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये ।

कर दिया (तोड़ डाला) । कौन जानता था !
अलंकार—असंभव ।

मूल—(परशुराम, प्रकट) किरीट सवैया—
घोरों सवै रघुवंश कुठारकी धार में वारन व
वान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करों
रामहि वाम समेत पठै वन, कोप के भार में
जो धनुहाय धरै रघुनाथ तो आहु

शब्दार्थ—वारन=हाथी । लच्छन=लक्ष्मण ।

निशाना । अरिहा=शत्रुघ्न । रघुनाथ=राम ।

भाषार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर कहते
घोड़े और रथ समेत समस्त रघुवंशियों को
में डुबादूँगा (मारडालूँगा), बाणों की वायु से
समर्थ शत्रुघ्न को निशाने की तरह बेधदूँगा
सहित वन को भगाकर कोप के भाड़ में
और यदि राम धनुष उठा कर लड़ेगा तो
अनाथ करदूँगा । अर्थात् वंशनाश करदूँगा ।

अलंकार—स्वभावोक्ति (प्रतिज्ञाबद्ध) ।

मूल—सौरठा-रामदेखि रघुनाथ, रथ ते
गहे भरथ को हाय, आवत

शब्दार्थ—राम=परशुराम । रघुनाथ=श्रीरा
शीमवा से ।

भाषार्थ—सुगम ।

लेय=(लेयमान) लेनेवाले । देयमान* = देनेवाले । जेय =
(जेयमान) जीतनेवाले । रक्षमान = रक्षणकर्ता । अमेय = अतुल ।
भार्ग = शंकर ।

भावार्थ—(श्री राम जी भरत के प्रश्न का उत्तर देते हैं)
हे भरत ! इन्हें प्रबल पराक्रमी सहस्रार्जुन को दंडदेनेवाला
जानो, और अखंड कीर्ति के लेने वाले तथा अखंड भूमि का
दान करनेवाले मानो, असुरों और देवताओं को जीतनेवाले,
भयभीत जनों की रक्षा करनेवाले समझिये, और अतुल तेज-
धारी शंकरभक्त भृगुवंश में श्रेष्ठ श्री परशुराम जी को तुम
देख रहे हो (भृगुवंशावतंस परशुराम जी हैं) ।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—तोमरछंद—

सह भरत लक्ष्मण राम । चहुँ किये आनि प्रणाम ॥

भृगुनंद आसिप दीन । रण होइ अजय प्रवीन ॥ १७ ॥

शब्दार्थ भावार्थ— सुगम ही है ।

मूल—(परशुराम) सुनि रामचन्द्र कुमार ।

मन वचन कीर्ति उदार ॥

(रामचन्द्र) भृगुवंस के अवतंस । मनवृत्ति है केहि अंस ॥१८॥

भावार्थ—(परशुराम ने श्री रामचंद्र को संबोधन करते हुए
कहा)=हे मन और वचन से उदार और बड़ी कीर्ति वाले
कुमार रामचन्द्र हमारी बात सुनो—(कुछ और कहना

* ये शब्द केशव के गढ़े हुए हैं ।

चाहते थे कि रामजी बात काट कर बोल उठे) हे लुप्त
के भूषण ! तुम्हारी मनोवृत्ति किस अंश पर है अर्थात्
कहना चाहते हो, कहो ।

अलंकार—गूढोत्तर ।

X मूल—(परशुराम)—मदिरा छंद—तोरि सरासन संकर
सुभ सीय स्वयंवर मास्य बरी । ताते यत्नो अमिमान न
मन मेरियो नेक न संक करी ॥ (राम)—सो अपराध न
हमसों अब क्यों सुधरे नुमहों तो कहौ । (परशुराम)—बा
बोड कुठारहि केशव आपने धामको पंथ गहौ ॥ १९ ॥

भावार्थ—(पहले नरमी से मामला तय करना चाहते थे,
पर जब राम जी ने बात काट कर और चिढ़ा दिया, व
परशुराम कहने लगे कि) संकर का धनुष तोड़ कर स्वर्ण
में सीता को विवाहा है, इस से तुम्हारे मन में अमिमान
अधिक बढ़ गया है । भला यह तो बताओ कि धनुष तोड़ने
समय तुमने मेरा भी तनक भय न किया सो क्यों ? (त
राम ने कहा कि) हों यह अपराध तो बेशक मुझसे होगया,
जब आप ही बतलाइये कि किस दंड से इस अपराध का
मायश्चित्त होगा । (तब परशुराम बोले) अपने दोनों हाथ
कुठार को देकर अपने घर का रास्ता लो—अर्थात् हम तुम्हारे
दोनों हाथ काट लेंगे तब घर जाने देंगे ।

श्रीमन्अलंकार—गूढोत्तर ।

भावार्थ—(राम)—कुंडलिया छंद—दूटे दूटनहार तब बायुहि

सातवाँ प्रकाश

दीजत दोष। त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष ॥
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई। होनहार है
रहै मिटै मेटा न मिटाई ॥ होनहार है रहै मोह मद सब को
छूटै। होय तिनूका वज्र वज्र तिनूका है टूटै ॥ २० ॥

अलंकार—लोकोक्ति से पुष्ट गूढोत्तर ।

नोट—इस काव्य में व्यंगार्थ यह है कि राम जी परशुराम
को सूचित करते हैं कि आप का समय गया, अब रामावतार
का समय आया है, अतः आपका वज्रवत् बल मेरे सामने
तिनका के समान टूट जायगा, आप चाहे हमें छुमार ही
समझते रहिये । (देखो छंद नं० १८)

मूल—(परशुराम—कुठार प्रति) मत्तगयंद सवैया—
केशव हैहयराज को मांस हलाहल कौरन खाय लिये रे ।
तालगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियोरे ॥
मेरो कछो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियोरे ॥
तौ लौ नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को श्रोण सुधान पियोरे ११

शब्दार्थ—मेद=चर्बी । सिरानो=ठंडा हुआ । श्रोण=रक्त,

भावार्थ—(परशुराम की शक्ति क्षीण होती जाती थी ।
परशु प्रति कहते हैं) हे कुठार ! तू ने हैहयराज सहस्राजुन
का मांस काटा है सो मानो तू ने हलाहल विषके कौर खा
लिये हैं । उस विष की शक्ति के लिये मैंने तुझ की अनेक
राजाओं की चर्बी घी की तरह घोल कर पिलाई, पर तब भी
तेरा हृदय ठंडा न हुआ । अतः हे मित्र कुठार ! जो

समक्ष में नहीं आता कि केशव से ऐसी भूल क्यों हुई ।

मूल—(परशुराम) नराच छंद—

भला कही भरत्य तैं उठा उ आगि अंगतैं ।
चढ़ाउ चोपि चाप आप यान ले निपंग तैं ।
प्रभाउ आपनो दिखाउ छोड़ि बाल माइ कै ।
रिदाउ राजपुत्र मोहि राम ले छड़ाइ कै ॥ २३ ॥

भावार्थ—(परशुधर कहते हैं) हे भरत तू-ने अच्छी बात कही, अच्छा ले अब अपने अंग से आग उठा (भरत ने कहा है कि अति राग से चंदन से भी आग निकल ती है, उसी पर यह कथन है) और तूणार से बाण लेकर शौक से धनुष पर चढ़ा अपना प्रभाव दिखला, बाल दे । हे राजपुत्र युद्ध करके मुझे प्रसन्न छुड़ा ले (तब जानूँ कि तू बड़ा वीर है) ।

मूल—सोरठा-लियो चाप जब ह ।
बरज्यो धीरघुनाथ, तुम

शब्दार्थ—तीनिहु भैयन=भरत,

भावार्थ—सरल ।

मूल—(राम)
जीतिय एकै बात तैं,

भावार्थ—रामजी अपने भाइयों को
से शक्ति द्वारा कोई नहीं जीवता ।

से ही वे जीते जा सकते हैं ।

नोट—परशुराम की गणना 'भगवानों' में है । भगवान वह व्यक्ति कहलाता है जिसमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, विराग और विज्ञान ये छः शक्तियां हों ।

मूल—हरिगीति छन्द— ×

जब हयो हैहयराज इन विन क्षत्र छिति मंडल कन्यो ।
गिरिवेध षटमुख जीति तारक नन्द को जब ज्यो हन्यो ॥
सुत में न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतवादिनी
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जग बंदिनी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—विनक्षत्र=विना राजा का । छिति=मंडल=समस्त पृथ्वी । गिरि वेध षटमुख=कौंच नामा पहाड़ को तोड़ने वाले स्वामिकार्तिक । तारकनन्द=तारक नामा असुर का पुत्र । राम=परशुराम । पर्वत=नंदिनी=पारवती । रेणुका=परशुराम की माता । जगबंदिनी=समस्त संसार से वंदनीय, सर्वपूज्य ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) जब इन्होंने हैहयराज को मारा था तब समस्त पृथ्वी को विना राजा की कर दिया था, और कौंच पहाड़ को तोड़ने वाले कार्तिकेय को जीत कर जब तारक के पुत्र को मारा था, तब पार्वती ने कहा था कि मैंने परशुराम सा पुत्र न पैदा किया, धन्य है वह रेणुका जो ऐसा वीर पुत्र पैदा करके इस पृथ्वी पर वंदनीया हुई—तात्पर्य

यह कि इनकी वीरता वीरमाता पार्वती द्वारा प्रशंसित है।
अतः ये बड़े वीर हैं।

मूल—(परशुराम)—तोमर छंद।

सुनि राम शील समुद्र। तव बंधु है अति छुद्र।

मम बाढ़वानल कोप। अथ कियो चाहत लोप ॥२७॥

भावार्थ—हे शील सागर राम सुनो। तुम्हारे ये तीनों भाई
बड़े छुद्र हैं, अतः अब मेरा क्रोध बढवानल इनको नष्ट
करना चाहता है (तुम कुशल चाहो तो इन्हे हटक दो)।

अलंकार—रूपक

मूल—(शत्रुघ्न)—बोधकछंद—

हो भृगुनंद बली जगमाहीं। राम विदा करिये घर जाहीं।

हाँ तुमसों फिर युद्धहि माँडों। क्षत्रिय वंशको बैरले छाड़ों ॥२८॥

भावार्थ—हे भृगुनंदन ! सचमुच आप संसार में बड़े बली

हैं (तात्पर्य यह कि तुम्हारा कृपा-शक्ति-विकास-क्षेत्र-जैवों पर चलेगा,

हम लोभ-समारी जाँ-राम को तो

विदा-घर को-में-तुमसे

युद्ध-क्षत्री-तुमसे

चुका-

अलंकार

मूल—तोमर

भरत से कहा कि तुम राम को लेकर अभी घर जाओ । यदि इनसे जीता वच जाऊँगा तो तुम से फिर युद्ध करूँगा (व्यंग यह कि बड़े मियां तो बड़े मियां, छोटे मियां सुभानलाह हैं, बड़ा भाई तो अपनी नम्रता दिखाता है, सबसे छोटा भाई हमें ललकारता है) ।

मूल—दोहा—निज अपराधी क्यों हतौं, गुरु अपराधी छाँड़ि ।
साते कठिन कुठार अव रामहि सौं रण माँड़ि ॥ ३० ॥

भावार्थ—(पुनः परशुराम मन में विचार कर परशुप्रति कहते हैं) गुरुदोषी को छोड़ कर निजदोषी को क्या मारूँ, अतः हे कठिन कुठार ! अव तू रामही से युद्धकर ।

मूल—(परशुधर) मत्तगयन्द सबैया ।

भूत उ के सब भूपन को मद भोजन तो बहु भाँति कियोई ।
माँद सौं तारकन्द को मेद पछ्यावरि पान सिरायो हियोई ॥
खीर पड़ानन को मद केशव सो पल में करि पान लियोई ।
राम तिहारेइ कंठ को श्रोनित पान को चाहै कुठार पियोई ॥३१॥

शब्दार्थ—पछ्यावरि=छाँछ से बना हुआ एक पेय पदार्थ जो भोजनान्त में परोसा जाता है । इसके प्रभाव से भोजन शीघ्र पचता है । खीर=(क्षीर) दूध । श्रोनित=(१)रक्त (२)श्रौ=श्रवितपदार्थ+नित=नित्य ।

भावार्थ—(परशुरामजी श्री रामचन्द्र-प्रति कहते हैं) मेरे इस कुठार ने संसार के सब राजाओं के मद का भोजन तो करही लिया है, और बड़े आनन्द के साथ तारकपुत्र की

चरबी की पछायावर पक़िर अपना हृदय ठंडा कर चुका है।
 षडानन के मद को भी दूध की तरह एक पलमात्र में पी
 डालाही है, हे राम ! अब यह मेरा कुठार तुम्हारे ही गले का-
 खून पीना चाहता है।

विशेष—महात्मा जानकीप्रसादजी ने इस छंद के अंतिम चरण
 का सरस्वती-उच्चार्य यों किया है—हे राम ! तिहारेही कंठ
 से थावित (मधुर स्वरयुक्त परम हितकर उपदेशामृत) यह
 कुठार नित्य पान करना चाहता है। तात्पर्य यह कि अब इस
 कुठार से अपनी दुष्टदलनी शक्ति खींचलो जिस से यह हत्या
 करना छोड़ दे और मैं ब्राह्मणकी तरह शान्त हो कर तप में
 निरत रहूँ। देखो फुट नोट छंद न० २१।

मूल—(लक्ष्मण)—तोड़फोड़-जिनको तु अनुग्रह वृद्धि करे।
 तिन को किमि निग्रह चित्त परे ॥ जिनके जग अचछत, सीस-
 धरे। तिन को तन सच्छत कौन करे ॥ ३२ ॥

उ अनुग्रह
 आ सकता है
 सच्छत=(सक्षत

। निग्रह=दंड । चित्त परे=चित्त
 धरे=पूजन करता है।

—जिन प्रा
 १) दंड देने क

मंगल की वृद्धि करती
 आसकती है।
 उनके शरीर
 ब्राह्मण हो

अतः अवध्य हो, नहीं तो समझ लेते, जाओ तुम्हारा दोष क्षमा करते हैं। (उत्तम व्यंग है)।

अलंकार—विरोधाभास ।

शूल—(राम)—मदिरा छंद ।

कंठ कुठार परै अब हार कि, फूले असोक कि सोक समूरो ।
कै चित्तसारि चढ़ै किचिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो ।
लोक में लोक बड़ो अपलोक सु केशवदास जु होउ सु होऊ ।
विप्रन के कुल को भृगुनंदन । मूर न मूरज के कुल कोऊं॥३३॥

शब्दार्थ—असोक=(अशोक-शोकका विरोधी भाव) सुख ।

सोक=(शोक) दुःख । समूरो=समूल (पूरा) । चित्तसारि=
चित्रसारी (रंगमहल) । लोक=यश । अपलोक=कुयश, बद-
नामी, निन्दा ।

भावार्थ—(रामजी परशुराम प्रति कहते हैं)—चाहे अब

मेरे कंठ पर कुठार पड़े अथवा हार; चाहे सुख हो अ-
अत्यन्त दुःख भोगना पड़े; चाहे यह शरीर चित्रसारी में आनन्द
करे अथवा चित्त में जलाया जाय; चाहे यह चन्दन से
चर्चित हो अथवा आग में झोंक दिया जाय, चाहे संसार में
बड़ा यश मिले अथवा बड़ा अपयश हो, जो कुछ होना हो
सो हो, पर हे भृगुनंदन ब्राह्मणों से लड़ने के लिये सूर्यवंश
में कोई भी शूर तैयार नहीं—अर्थात् आप ब्राह्मण हैं, अतः
अवध्य हैं, हम आप पर हाथ न घालेंगे, आप की जो इच्छा

हो तो करें। व्यंग से खुनाथजी यह जनाते हैं कि अब जान केवल ब्राह्मण मात्र रह गये हैं, पिण्डु का वह अंश निकल गया जिसके द्वारा आपन वड़े २ दुष्ट क्षत्रियों का विनाश किया है।

अलंकार—विकल्प से पुष्ट स्वभावोक्ति—(कुल-स्वभाव-वर्णन है)

मूल—(परशुराम)—विशेषक छंद—हाथ धरे हथियार सबे तुम सोभत ही। मारनदाराहि देखि कहा मन छोभत ही। क्षत्रिय के कुल है किमि वैन न दीन रची। कोटि करो उपचार न कसहु मीचु बचौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—छोभत ही=डरते हो। किमि वैन न दीन रची=दीन बचन क्यों न बोले (बोलनाही चाहिये—उत्तम क्षत्री ब्राह्मणों से सदा दीन ही बचन बोलते हैं)। उपचार=उपाय।

भावार्थ—तुम सब लोग हथियार लिये हो, फिर मारनेवाले को देख कर मन में डरते क्यों हो? तुम क्षत्री वंशजात हो, मतः ब्राह्मण के सामने दीन बचन बोलना तुम्हें बचित ही है, (क्यों कि उत्तम कुलीन क्षत्रियों का कुटुम्ब ही ऐसा होता है), परंतु इस प्रकार के कोटि उपाय करने से भी मूल से नहीं बचोने (हम तुम्हें मारेंगे अवश्य)।

मूल—(उत्तमज)—विशेषक छंद—क्षत्रिय है गुरु लोगन को प्रति पाठ करे। मूलिहु तौ तिनके गुन भोगुन जो न धरे।

तौ हमको गुरुदोष नहीं अब एक स्ती । जो अपनी जननी
मुम ही सुख पाय हती ॥ ३५ ॥

भावार्थ—(लक्ष्मणजी परशुधर से कहते हैं)—क्षत्री होकर
हम लोग गुरु लोगों का प्रतिपालन करते हैं और भूलकर भी
कभी उनके गुणावगुण की ओर ध्यान नहीं देते । परंतु जब
आपने अपनी माता को आनंदित होकर मार डाला, तो अब
हमको भी तन्निक भी गुरु-हत्या का पाप न लगेगा यदि हम
आपको मार डालें ।

सूचना—परशुराम ने श्रीरामचन्द्रजी को गुरु द्रोही ठहराया है,
अतः लक्ष्मणजी भी स्त्रीवध और मातृवध दिखलाकर परशुधर
को गुरुदोषी ठहराते हैं ।

मूल—(परशुराम)—मदिरा छन्द ।

लक्ष्मण के पुरिपान कियो, पुरुपारथ सो न कह्यौ परई ।
बेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यौ हरई ।
फूर कुठार निहारि तजो फल ताको यहै जु हियो जरई ।
आजु ते तो कहैं बंधु महा धिक क्षत्रिन पै जु दया करई ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—लक्ष्मण के पुरिपान—(यहाँ ठीक लक्ष्मण के पुरि-
पाओं से ही तात्पर्य नहीं है, वरन् वर्ण मात्र से तात्पर्य है)
क्षत्रियों के पुरषों ने । पुरुपारथ=पौरुष । बेष बनाय . . हरई=
सुन्दर स्त्रियों का भेस बना लिया था—(जब परशुरामजी
हूँद २ कर क्षत्रियों का वध करते थे उस समय अनेक वीर
क्षत्रियों ने स्त्रीरूपधारण करके दया-प्रार्थना द्वारा प्राण बचाये

थे, अथवा इसी प्रकाश में परशुराम के आगमन-समय का देखो छंद नं० २ । स्त्री=हिय, हृदय । पंथु=कुठार का संबोधन है ।

भावार्थ—(कुठार—प्रति परशुरामजी कहते हैं) लक्ष्मण के पुरषों ने जो पुरुषार्थ किया है वह कहा नहीं जा सकता, अपना रूप बदल कर स्त्रियों का सा रूप कर लिया जिसे देख कर मन मोहित होता है । हे क्रूरकर्मा कुठार ! उन स्त्रीभेस-धारी क्षत्रियों को देख कर भी जो तूने छोड़ दिया उसी का यह फल है कि इस समय जी जलता है । हे पंथु ! आज से तुझे को महा धिक्कार है जो तू क्षत्रियों पर दया करे—अर्थात् जैसे उन को स्त्री भेस में देख कर छोड़ दिया वैसे ही इनको बाल भेस में देख कर इन्हें भी छोड़ दे तो तुझे धिक्कार है । यह बात आगे के छन्द में स्पष्ट कही है ।

नोट—इस छंद का सरस्वती-उक्तार्थ यों समाक्षिप्येः—लक्ष्मण के बड़ों ने अर्थात् श्री रामचन्द्र जी ने जो पुरुषार्थ किया है वह कहा नहीं जा सकता । वह कृत्य यह है कि उन्होंने ने स्त्री का ऐसा सुन्दर रूप बना दिया जिसे देख मन मोहित होता है (गौतमपत्नी अहल्या का चरित्र) । हे क्रूरकर्मा कुठार ! ऐसे अद्भुतकर्मा को देख (और उनकी शरण ले, तो तेरी भी जड़ता दूर होजायगी) और यदि उनकी शरण का त्यागगा तो इसका फल यह होगा कि पापों के संताप

से तेरा हृदय सदा जल करेगा । और हे बंधु आज से मैं भी तुझे धिक्कारूंगा । (यदि तू यह सोचे कि मुझे पापों को ये अपनी शरण में लेंगे या नहीं, तो मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि अवश्य लेंगे, क्योंकि) क्षत्रियों की यह पैज (प्रतिज्ञा) होती है कि शरण आये हुए पर सच्चा क्षत्री दया करता ही है ।

मूल—(परशुराम)—गीतिका छंद *

तव एक विंशति बेर मैं विन छत्र की पृथिवी रखी ।
बहु कुंड शोनित सों भरे पितु-तर्पणादि क्रिया सची ॥
उबरे जु छत्रिय क्षुद्र भूतल सोधि सोधि संहारिहौं ।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—एकविंशति=इक्कीस । शोनित=रक्त । सची=की ।
सोधिसोधि=खोज खोजकर । पारिहौं=(पालिहौं) पालन करूंगा ।

भावार्थ—तव तो मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को निछत्र (राजा-हीन) कर दिया, राजोंओं को मार मार कर उनके रक्त से बहुत से कुंड भरे और उसी से पितरों के हेत तर्पणादि क्रिया की (उस समय कभी कभी कुछ दया भी करता था, परन्तु अब) इस भूतल में बचे हुए क्षुद्र स्वभाव क्षत्रियों को खोज खोज कर मारूंगा और इस धर्म को इतनी निर्दयता से पालूंगा कि बालक, बूढ़ा अथवा युवा कोई हो, एक को भी न छोड़ूंगा । (यह परशुराम जी की चँदर घुड़की है) ।

मूल—(राम)—दोहा—

भृगुकुल कमल दिनेश मुनि, जीति सकल संसार ।

क्यों चलिहै इन सिसुन प, डारत हौ यश-भार ॥ ३८ ॥

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हे भृगुवंश रूपी कमल को मफुलित करनेवाले सूर्य (परशुराम जी) मुनिये ! सारे संसार को जीत कर जो विजय यश आपने पाया है, उस यश का भार इन बालकों पर क्यों लादते हैं, वह भार इनसे कैसे चलेगा (क्यों ऐसा करते हो कि ये बालक तुमसे लड़ बैठें और तुम्हें पराजित करके स्वयं विश्वविजयी-विजेता का यश पावें) ।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा—(कारजनिबंधना) और प्रथम चरण में परम्पारित रूपक ।

मूल—(सोरठा) परशुराम—

राम सुबंधु सँभारि, छोड़त हौं शर प्राणहर ।

वेडु हथियारम डारि, हाथ समेतिन वेगिदै ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—सुबंधु=(स्वबंधु) अपने भाइयों को । हाथ समेतिन=हाथों सहित । वेगिदै=शीघ्रता से ।

भावार्थ—हे राम अपने भाइयों को सँभालो (बचाना चाहते हो तो इटकों हमारा अपमान न करें) शीघ्र ही हाथों समेत हथियार फेंक दो, नहीं तो मैं प्राणहर बाण छोड़ता हूँ—नर्भत्-हथियार रख दो तो केवल हाथ ही काटकर छोड़ दूँगा,

यदि ऐसा न करोगे तो जान से मारूंगा।

अलंकार—सहोक्ति।

नोट—इसका सरस्वती उक्तार्थ यों होगा:—(परशुराम जी अपने इष्टदेव जी को सहायतार्थ स्मरण करते हैं) हे हर ! अपने सुबंधु राम को सँभालो—ये आप ही के मना करने से मानेंगे—इनके बाण से अब मैं प्राण छोड़ता हूँ अर्थात् अब ये मुझे मारना ही चाहते हैं। हे इष्टदेव शंकर। ऐसा करो कि शीघ्र ही इनके हथियार—सहित हाथों से हथियार गिरजायें, जब तक ये सशस्त्र रहेंगे तब तक मुझे भय बनाही रहेगा, अतः इनका कोप शांत कराके हथियार उतरवा दो। (इस प्रार्थना के अनुसार महादेव का आना केशव ने छंद नम्बर ४३ में आगे वर्णन भी किया है)।

मूल—(राम)—पद्दटिकाछंद—सुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि। तपविशिष्य अनेकन की जु अग्नि। सब विशिष्य छाँड़ि सदिहीं अखंड। हर धनुष कन्यो जिन खंड खंड ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—जामदग्नि=जमदग्नि के पुत्र (परशुराम)। तपविशिष्य=तपस्या के बाण (शाप)। सब विशिष्य=एक नहीं जितने बाण आपके पास हों।

भावार्थ—हे सर्वलोक गुरु परशुराम जी सुनिये, एक नहीं जितने बाण आपके पास हों, सब, और समस्त शापों के बाणों की अग्नि, सब एक ही बार हमारे ऊपर छोड़ो। मैं,

शंभु-धनु-भंजनकारी, आपके सब बाणों की असंख्यता सहन करूंगा—अर्थात् जब मैंने शिवधनु मंग किया है तब मैं दोषी हूँ ही, आप मारिये अथवा शाप दीजिये सब सहना ही होगा, पर मैं आप पर हाथ न उठाऊंगा, क्योंकि आप सर्व पूज्य ब्राह्मण हैं। (सरस्वती उक्तार्थ) जिसने तुम्हारे गुरु हर का धनुष खंडन कर दिया, उसपर तुम्हारे समस्त बाणों और शापों का प्रभाव पड़ही नहीं सकता। इस कथन से राम ने यह जनाया कि तुम्हारे गुरु भी हमारा कुछ नहीं कर सकते तब तुम्हारे बाणों से हमें क्या भय है, तुम बाण चलाओ वे सब निष्फल होंगे।

मूल—(परशुराम)—मत्तमयद् सवैया ।

बाण हमारेत के तनत्राण विचारि विचारि विरंचि करे हूँ ।
गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जगदीनस्वभाव भरे हूँ ।
राम कहा करिही तिनको तुम घालक देव अदेव जरे हूँ ।
गाधि के नंद तिहारे गुरु जितते ऋषि वेप किये उबरे हूँ ॥४१॥

शब्दार्थ—तनत्राण=कवच, अभेद्य व्यक्ति (जिन पर बाण कुछ प्रभाव नहीं कर सकते) । विचारि=विशेष चार व्यक्ति । गोकुल=गोउपें । नपुंसक=अमरद । अदेव=असुर (राक्षस वा दैत्य) । गाधि के नंद=विश्वामित्र ।

भावार्थ—(परशुपर सगर्व कहते हैं) हमारे बाणों से अभेद्य रहें ऐसे व्यक्ति तो असाने विचार कर केवल चार ही बनाये

हैं अर्थात् गऊ, ब्राह्मण, स्त्री और नपुंसक जो इस संसार में अत्यन्त दीन स्वभाव वाले हैं। हे राम ! तुम उनसे बचने का क्या उपाय कर सकते हो, मेरे बाणों से सब सुरासुर डरते हैं तुम तो अभी बालक हो (तुम उन्हें किसी प्रकार नहीं सह सकते) यहां तक कि तुम्हारे गुरु विश्वामित्र ऋषि होने के कारण बच गये हैं ।

सूचना—जब गुरु-निंदा श्री रामजी से सहन न हो सकी, तब परशुराम को पुनः सचेत करने को बोले:—

मूल—(राम)—छप्पय छंद-भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं । नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं । सकल लोक संहरहुं सेस सिरते धर डारौं । सप्त सिंधुमिलि जाहि होहि सबही तम भारो ॥ अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय वरु । भृगुनंद संभारु कुठारु में कियो सरासन युक्त सर ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—भव-धनुष=महादेव का धनुष (पिनाक जिसकी गणना वज्रों में है) । ईश=महादेव । आसन ते चालौं=योगासन से डिगा दूं । धर (धरा)=पृथ्वी । सबही=सर्वत्र । तम=अंधकार । भारी=बड़ी । नारायणीजोति=नारायण का वह अंश जो परशुराम में था । वर=श्रेष्ठ ।

विशेष—राम रूप देखकर परशुराम मोहित हो ही चुके थे (देखो छंद नं० १४) । जब दयंग वचनों से परशुराम न

समझ सके कि रामावतार हो चुका और उनका समय बीत चुका तब रामजी ने स्पष्ट वचनों का सहारा लिया ।

भावार्थ—(रामजी ने कहा कि हे परशुराम, जब बार बार हम तुमको 'केवल ब्राह्मण' कहते हैं और जगतें हैं कि अब तुममें से नारायणी अंश चला गया, तब भी तुम नहीं समझते, तो लो स्पष्ट सुनो) जब मैंने शिवधनु भंग किया, तब भी तुम नहीं समझे, अब मैं तुमको दुःख देता हूँ तब भी तुम नहीं समझ रहे हो (तुम्हें ये बालक चिदा रहे हैं और तुम्हारा परशु नहीं चलता) तो लो सुनो, मैं वह व्यक्ति हूँ कि ब्रह्मा की सृष्टि को चाहूँ तो नष्ट कर दूँ, महादेव को (तुम्हारे गुरुको) योगासन से डिगा दूँ, चौदहों लोकों का संहार कर दूँ, शेष के सिर से पृथ्वी को गिरा दूँ, सातों समुद्र मेरी आज्ञासे मिलकर एक होजायें (प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दूँ) सर्वत्र भारी अंधकार होजाय (यह भी प्रलय का एक दृश्य है) । श्रेष्ठ नारायणावतारी अंश तो तुम में से चला ही गया है, चाहूँ तो तुम में से उस अमल ज्योति का (जो केवल प्राणमात्र के रूप में मौजूद है) अत्यन्तभाव कर दूँ (तुम्हारे प्राण भी खींच लूँ) । हे भृगुनन्द ! अब आप अपना कुठार सँभालो (ब्राह्मण रूप से बंगलों से हवन के लिये केवल लकड़ी काट लिया करी, अब तुम्हारे कुठार में दुष्टदलनी शक्ति नहीं रह गई) अब मेरे अवतार का समय

है और दुष्ट दलन कार्य के लिये अब मैंने धनुष को शरयुक्त किया है अर्थात् अब दुष्ट दलन की जिम्मेदारी मेरे सिर है आप ब्राह्मण की तरह तप में निरत हूजिये ।

नोट—स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रसंग में रामजी ने परशुराम को भृगुनन्दन, भार्गव, जामदग्न्य इत्यादि शब्दों से ही संबोधित किया है जिसका व्यंग यही है कि अब तुम केवल ब्राह्मण हो, नारायणावतार नहीं रहे । अतः उन सब छंदों में सामिप्राय संज्ञा होने से परिकरांकुर अलंकार मानना अनुचित न होगा ।

मूल—स्वागतछंद— ✽

रामराम जव कोप कन्यो जू । लोकलोक भय भूरि भन्यो जू ।
वामदेव तव आपुन आयै । रामदेव दोउन समझायै ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—भूरि=अत्यन्त । वामदेव=श्रीमहादेवजी । राम राम=श्रीरामचन्द्रजी और श्रीपरशुरामजी ।

भावार्थ—जब श्रीरामचन्द्रजी और श्रीपरशुरामजी दोनों परस्पर क्रुद्ध हुए तो समस्त लोक अत्यन्त भय से परिपूर्ण हो गये (कि अब क्या होगा, इन दोनों के क्रोधसे प्रलय तो न हो जायगी), यह दशा देख महादेवजी स्वयं आ उपस्थित हुए और दोनों राम देवों को समझा बुझाकर शांत किया ।

मूल—दोहा—महादेव को देखि कै दोऊ राम विशेष ।

कान्हों परम प्रणाम उन आशिष दीन अशेष ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—परम प्रणाम=सांख्य प्रणाम' ऐसा प्रणाम जैसा शास्त्रीति से उचित था । अशेष आशिष=उचित आशिर्वाद, जैसा आशिर्वाद परशुराम को चेले की हेसियत से उचित था वैसा उनको, और जैसा क्षत्रिय राजकुमारकी हेसियत से रामचन्द्र को उचित था वैसा उनको ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—सम (प्रथम)

मूल—(महादेव)—चतुष्पदीछन्द (चवपैया)

भृगुनन्दन मुनिये, मन महँ गुनिये, रघुनन्दन निरदोषी ।

निजु ये अविकारी, सब सुखकारी, सबहीविधि संतोषी ॥

एकै नम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहाये ।

आयुर्वल खूट्यो, धनुष हूट्यो में तन मन सुखपायो । ४१०

शब्दार्थ—निजु=निश्चय । अविकारी=माया कृत विकार से रहित अर्थात् ईश्वर । संतोषी=इच्छारहित (यहभी एक इक्षरीय गुण है) । आयुर्वल खूट्यो=विष्णु के अंशावतार होने का समय (तुम्हारे लिये) व्यतीत होचुका (अब इस समय से तुम विष्णु के अंशावतार नहीं रहे, अबतुम केवल एक ब्रह्मण मात्र रहोगे, ईश्वरांश की समस्त शक्तियां श्री रामचन्द्रजी में केन्द्रीभूत होगई) ।

भावार्थ—हे भृगुनन्दन । तुमने और मेरे कथन का तात्पर्य मन में अच्छी तरह समझो । इस विषय में श्रीरामजी नितान्त

दोषरहित हैं (उन्होंने तुझारा या मेरा अपमान करने के लिये धनुष नहीं तोड़ा) । ये निश्चय ईश्वर हैं, सबको सुखदेनेवाले हैं, सर्व प्रकार इच्छारहित हैं, तुम और ये दोनों एकही हो, कोई दूसरे नहीं, अतः नाम भी एकही है । अब तुझारा समय-व्यतीत होगया (अबतुम अपने को ईश्वरावतार या ईश्वरांश-धारी मत समझो वरन् इनको ईश्वरावतार मानो), धनुष के टूटने से मैं अपसन्न नहीं वरन् तन मन से सुखी हुआ हूँ (तन से इसलिये सुखी हुआ कि अब पिनाक का भार दोने से छूटा और मन से इसलिये कि येही रामजी मेरे इष्टदेव हैं) ।

मूल—(महादेव)—पद्मटिका छंद—तुम अमल अनंत अनादि देव । नहिं वेद बखानत सकल भेद । सबको समान नहिं बैर नेह । सब भक्तन कारन धरत देह । ४६ ।

शब्दार्थ—तुम=परशुराम और श्रीरामचन्द्र दोनों प्रति संबोधन है—छंद नं० ४५ में कहा है “एकै तुम दोऊ” ।

भावार्थ—सुगम है ।

अलंकार—अतिशयोक्ति और उल्लेख ।

मूल—अब आपनपौ पहिचानि विप्र । सब करहु आगिलो काज छिप्र ॥ तव नारायण को धनुष जानि । भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि । ४७ ।

शब्दार्थ—आपनपौ=यह भाव कि “हम और ये एकही हैं” ।

आगिलो काज=रामावतार के कर्त्तव्य—वनगमन, सीता-

वियोग, सिंधुबंधन, रावणादिवध । छिप्र=शीघ्र ।

भावार्थ—हे विप्र ! अब यह जानकर कि तुम दोनों एक ही हो और अब आगे दुष्टों का दमन रामचन्द्र द्वारा होगा (तुम्हारे शरीर द्वारा नहीं) शीघ्र ही आगेका कार्य आरंभ करो (जगद्वा छोड़ो आगे का काम होने दो) । ऐसा सुन कर परशुरामजी ने नारायण का धनुष (जो उनके पास था) भी राम जी के हाथों में दे दिया (एकतो इस लिये कि दुष्ट दमन की जिम्मेदारी उनके सिपुर्द करदी, दूसरे यह कि निश्चय होजाय कि ये नारायणावतार हैं या नहीं) ।

मूल—मोदनकच्छद—

नारायण को धनुष बाण लियो । ऐन्वो हँसि देवन मोद कियो ॥
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनो । प्रयलोक कैप्यो भय मानि घनो
दिग्देव दहे बहु वात बहे । भूकंप भये गिरिराज दहे ॥
आकाश विमान अमान छये । हा हा सबही यह शब्द रये ॥४९॥

शब्दार्थ—पतो=बहुत अधिक । दिग्देव=दिग्पाल । वात बहे=(व्याकरण से अशुद्ध है) हवा चली । अमान=बेप्रमाण, बहुतसे । रये=(रव किया) उच्चारित किया ।

भावार्थ—परशुराम के हाथ से श्रीरामचन्द्र ने नारायणी धनुषबाण ले लिये और परशुराम का (परीक्षा का) अभिप्राय समझ कर धनुष पर बाण चढ़ाकर मुसकाते हुए उसे खींचा ।

यह देख देवगण आनंदित हुए (विश्वास हो गया कि राम नारायणावतार हैं और अब ये रावण को अवश्य मारेंगे) । खींचने के बाद राम जी ने परशुराम से पूछा,—कहो किसे मारूं ? यह देख बड़े भय से त्रिलोक काँप उठा, दिग्दाह होने लगा जिससे दिग्पाल जलने लगे, हवा तेजी से बहने लगी (तूफान सा आगया) भूकंप हुआ, बड़े बड़े पर्वत भहराकर थिर गये, आकाश में असंख्य देवविमान आकर छागये और सब के मुखसे हाहाकार का शब्द निकलने लगा ।

नोट—“ मुसकाते हुए खींचा ” इसके तीन भाव हैं । एक यह कि बिना परिश्रम ही हँसते हँसते खींचा । दूसरे यह कि संकर के बचनों का भी विश्वास न करके तुम हमारी परीक्षा लेते हो अतः तुम्हारी बुद्धि हास्यास्पद है । तीसरे यह कि जिसकी ओर देख श्रीरामजी मुसुका देते हैं वह माया में फँस जाता है और उसका सारा दिव्य ज्ञान मारा जाता है, ज्ञान मारे जाने से सारी शक्ति लुप्त होजाती है । रामजी की हँसी को ‘ तुलसीदास ’ ने माया रूप ही माना है—जैसे, “माया हास बाहु दिगपाला”—(रामायण—लंकाकांड) ।

अलंकार—छंद ४८ में पीहित अलंकार ।

सूत्र—(परशुराम)—शशिवदना छंद—जगगुरु जान्यो ।

त्रिभुवन मान्यो । मम गति मारो । समय विचारो ॥५०॥

शब्दार्थ—त्रिभुवनमान्यो=त्रिभुवन-पूज्य (यह शब्द 'जगगुरु'

का विशेषण है) । गति=शक्ति ।

भावार्थ—(परशुराम कहते हैं) हे राम अब मैंने जाना कि तुम त्रिभुवनपूज्य जगद्गुरु हो अर्थात् ईश्वरावतार हो । अतः समय का विचारकरके (इस समय आपके हाथ से मारकाट का काम होना उचित नहीं क्योंकि आप दृढहृद बेपने हैं और दृढहृद के हाथों मारकाट सा समांगलिक कार्य होना उचित नहीं) इस बात से मेरी ही शक्ति को मारो (मेरा जो वह अहंकार है कि मैं सर्व श्रेष्ठ वीर हूँ इसे ही नष्ट करो, विससे अब मैं निरहंकारी ब्राह्मण होकर शांतियुक्त हो नवन करूँ) ।

—दोहा—विषयी की ज्यों पुष्पहार गति को हनत अनंग ।
रामदेव योही करी परशुराम गति मंग ८५६३

शब्दार्थ—विषयी, अनंग=कान्धेव, रामदेव, योही करी परशुराम गति मंग ८५६३

अनंग=कान्धेव

भावार्थ—बेसे

के बाप से

—रामदेव

फूल

पर

॥

पुष्पशर और अनंग शब्दों के प्रयोग से पुनरुक्तिवदाभास अलंकार भी स्पष्ट है ।

श्लोक—चवैपैया छन्द—

सुरपतिगति भानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारो ।
आसिप रस भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहि मारो ॥
अति अमल भये रवि, गगन बढ़ी छवि, देवन मंगल गाये ।
सुरपुर सब हरये, पुहपन बरये, डुडुभि दीह बजाये ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—सुरपति=विष्णु । भानी=भंग करदी । सासन
(शासन)=आज्ञा ।

भावार्थ—जब श्री रामचन्द्रजीने परशुराम की आज्ञा मानकर उनकी वैष्णवीगति (विष्णुके अंशावतार की शक्ति) भंग कर दी, तब परशुराम को बड़ा सुख हुआ (इस विचार से कि अब हम दुष्टदलन की जिम्मेदारी से छूटे और अब इस कार्य का भार राम जी के सिर जा पड़ा) । तब राम को आशीर्वाद देकर कहने लगे कि तुमने हमें सब प्रकार से सुखी कर दिया (हमारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर) । अब रावण को आप मारिये (यह काम आपके ही हाथों होना है, हमारे हाथों नहीं) । इतनी वार्ता हो जाने पर, सूर्य निर्मल होकर निकल आये, आकाश शोभायुक्त होगया, देवताओं ने मंगलगान किये, सुरपुर निवासी हर्षित हो उठे, फूल बरसाने लगे और बड़े बड़े नगारे बजाते लगे (छन्द न० ४८, ४९ में

वर्णित अवस्था दूर होगई) ।

मूल—दाहा—सोचत सीतानाथ के भृगुमुनि दांन्ही लात ।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह चान ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—सीतानाथ=रामजी; (यहाँ) नारायण, भगवान ।
लात दांन्ही=लात मारी थी । भृगुकुलपति=भृगुकुल में श्रेष्ठ
परशुराम । सुमिरि=स्मरण करके ।

भावार्थ—भृगुमुनि ने सोते में नारायण को लात मारी थी ।
इसी का स्मरण करके मानो नारायणावतार श्री रामजी ने
भृगुकुल में श्रेष्ठ परशुराम जी की गति हरण करली (पंगु
कर दिया) ।

अलंकार—स्मरण, उत्प्रेक्षा, प्रत्यनीक की छटा देखने योग्य है।

नोट—जो पूज्यको लातमारे उसका पैर तोड़ देना चाहिये ।
यह शास्त्रोक्त दंड है । रामजी ने मर्यादा रक्षणार्थ भृगुमुनि
के अपराध का दंड उनके वंशज परशुराम को दिया (गति
हरी=पंगु कर दिया) ।

मूल—मधुमार छंद—

दशरथ जगाइ । संभ्रम भगाइ ॥ चले रामराइ । दुंदुभि बजाइ ॥

शब्दार्थ—संभ्रम=संपूर्ण भ्रम ।

भावार्थ—महाराज दशरथ को मूर्च्छा से जगाकर (परशुराम
के आगमन और उनके क्रुद्ध होने से राजा दशरथ मूर्च्छित

होगये थे) और उनका संपूर्ण भ्रम भगाकर (यह कह कर कि परशुरामजी हमसे हार गये) नगाड़े बजवाकर श्री राम जी आगे चले ।

मूल—सवैया (मत्तगयन्द)—

ताड़का तारि. सुवाहु संहारि कै गौतमनारि के पातक टारे
चाँप हत्यो हर को हठि केशव देव अदेव हुते सब हारे ।
सीतहि व्याहि अभीत चले गिरिगर्व चढ़े भृगुनंद उतारे ।
श्री गरुडध्वज को धनुलै रघुनंदन औधपुरी पशुधारे ॥५५॥

शब्दार्थ—गौतमनारि=अहल्या । हत्यो=तोड़ा । हठि=हठ करके (राजा जनक के मना करते रहने पर) । अदेव=असुर, राक्षसादि । अभीत=निडर होकर । गिरि गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे=परशुराम का दर्प दूर करके । गरुडध्वज=विष्णु ।

भावार्थ—सरल ही है ।

सातवाँ प्रकाश समाप्त ।

आठवाँ प्रकाश ।

दोहा—या प्रकाश अष्टम कथा अवध प्रवेश वखानि ।
सीता वरन्यो दशरथहि और वंधुजन मानि ॥

✓ मूल—सुमुखी छंद—

X सय नगरी बहु सोम रये । जहँ तहँ मंगलचार ठये ।
वरनत हैं कविराज वने । तन मन बुद्धि विवेक सुने ॥ १ ॥

शब्दार्थ—रये=रंजित, रंगे हुए । मंगलचार=हर्षसूचक
आचार (देखो छंद नं० २, ६, ७) । ठये=ठाने, किये ।
विवेकसुने=विचारयुक्त ।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के सब स्थान अति शोभा से रंजित
हैं (सजावट से सजाये हुए हैं) । जहाँ तहाँ हर्षसूचक चिह्न
बनाये गये हैं (तोरण, बंदनधार, कदलीखंभ, चौक और
कलशादि सजाये हैं) । सब लोग नगर की शोभा का विवर्ण
वर्णन कर रहे हैं । सब नगरवासियों के तन, मन और बुद्धि
विचार संयुक्त हैं (तन यथोचित वस्त्राम्पण से सुसज्जित हैं,
उचित हर्ष से प्रफुल्ल हैं, और बुद्धि विवेक युक्त हैं) ।

लसै । मानो पुरदीपति सी ^{दोहा} ~~दोहा~~ ॥

लसै । सोमैं तिनके मुख-^{अंचल} ~~अंचल~~ ^{सँभल} ॥

। दीपति=(दीप्ति) छविछटा ।

भावार्थ—नगर के मकानों के ऊपर बहुत ऊँची और अनेक रंगों की पताकाएँ चढ़ाई गई हैं, वे ऐसी शोभा देती हैं मानो नगर की छविछटा ही दोख पड़ती है अथवा आकाश-विमानों में चढ़कर जो देवखियां आई हैं उनके घूँघटों के समान शोभा देती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—कलभन लीन्हे कोट पर खेलत सिखु चहुँओर ।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

शब्दार्थ—कलभन=हाथियों के बच्चे । कोट=शहरपनाह की ऊँची दीवार । चंचरीक=भैरि । चितचोर=मनोहर ।

भावार्थ—कोट पर चारों ओर नगर के बालक हाथियों के बच्चों को लिये खेलते हैं । वे हाथी के बच्चे कोट पर ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनोहर भैरि हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कलहंसछंद—

पुर आठआठ दरवार विराजै । युत्त आठ आठ सेनाधल साजै ॥
रह चार चार घटिका परिमानै । घरजात और जब थावत जानै ॥

विशेष—प्राचीन ग्रन्थों में आठ प्रकार के कोट कहे गये हैं ।

प्रत्येक राजधानी इन आठों कोटों से वेष्टित रहती थी जिससे शत्रुके आक्रमण से रक्षा होतीथी । उनके नाम ये हैं:—(१) अतिदुर्ग (२)कालवर्म (३) चक्रावर्त (४)डिबुर (५) तटावर्त

आठवाँ प्रकाश ।

दोहा—या प्रकाश अष्टम कथा अवध प्रवेश बखानि ।
सीता वरन्यो दशरथहि और वंधुजन मानि ॥

✓ मूल—सुमुखी छंद—

x सय नगरी बहु सोम रये । जहँ तहँ मंगलचार ठये ।
वरनत हैं कपिराज वने । तन मन बुद्धि विवेक सने ॥ २ ॥

शब्दार्थ—रये=रंजित, रंगे हुए । मंगलचार=हर्षसूचक
आचार (देखो छंद नं० २, ६, ७) । ठये=छाने, किये ।
विवेकसने=विचारयुक्त ।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के सब स्थान अति शोभा से रंजित
हैं (सजावट से सजाये हुए हैं) । जहाँ वहाँ हर्षसूचक चिह्न
बनाये गये हैं (तोरण, बंदनवार, कदलीखंभ, चौक और
कलशादि सजाये हैं) । सब लोग नगर की शोभा कविवर
वर्णन कर रहे हैं । सब नगरवासियों के तन, मन और बुद्धि
विचार संयुक्त हैं (तन यथोचित बस्त्रानूपण से सुसज्जित हैं,
मन उचित हर्ष से प्रफुल्लित हैं, और बुद्धि विवेक युक्त हैं) ।

✓ मूल—मोटनकछंद—

x ऊंची बहुवर्ण पताक लसे । मानो पुरदीपति सी दरसे ॥
देवी गण ध्यान विमान लसे । सोभै तिनके मुख अंचल से ॥ २ ॥

शब्दार्थ—पताक=पताकाएँ । दीपति=(दीप्ति) उजलता ।
मुख-अंचल=मूँघट ।

भावार्थ—नगर के मकानों के ऊपर बहुत ऊँची और अनेक रंगों की पताकाएँ चढ़ाई गई हैं, वे ऐसी शोभा देती हैं मानो नगर की छविछटा ही दीख पड़ती है अथवा आकाश-विमानों में चढ़कर जो देवस्त्रियाँ आई हैं उनके घूँघटों के समान शोभा देती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—कलभन लीन्हे कोट पर खेलत सिखु चहुँओर ।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

शब्दार्थ—कलभन=हाथियों के बच्चे। कोट=शहरपनाह की ऊँची दीवार। चंचरीक=भैरे। चितचोर=मनोहर।

भावार्थ—कोट पर चारों ओर नगर के बालक हाथियों के बच्चों को लिये खेलते हैं। वे हाथी के बच्चे कोट पर ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनोहर भैरे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कलहंसछंद—
पुर आठआठ दरवार विराजै । युत्त आठ आठ सेनावल साजै ॥
रह चार चार घटिका परिमानै । घरजात और जब थावत जानै ॥

विशेष—प्राचीन ग्रन्थों में आठ प्रकार के कोट कहे गये हैं। प्रत्येक राजधानी इन आठों कोटों से वेष्टित रहती थी जिससे शत्रुके आक्रमण से रक्षा होती थी। उनके नाम ये हैं:—(१) अतिदुर्ग (२) कालवर्म (३) चक्रावर्त (४) डिबुर (५) तटावर्त

श्रीरामचन्द्रिका

दोह—रक्षक (७) रक्षक (८) सार्वर । कालिंजरके किले में
 इस प्रकारका कुछकुछ आमास मिलवा है ।

शब्दार्थ—रु आठ=नगर के आठो कोठों में । दरवार=द्वार,
 बाह्य सिपाही, रक्षक ।

भावार्थ—नगर के आठो कोठों में आठो दिशाओं पर फाटक

फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी

हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते

तो वे आठ अपने घर जाते हैं । इस प्रकार हिसाब लगाने

के अगोचर नगरके फाटकों के रक्षक $8 \times 8 \times 8 \times 24 = 9600$

होते हैं ।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुण भाषा भेष विचार ।

वाहन वसन विलोकिये केशव एकहिँ द्वार ॥५॥

शब्दार्थ—द्वार=दरवाजा, फाटक (कोठ का द्वार) ।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा,
 भेष, विचार, वाहन और वस्त्र एक फाटक पर ही देखे जातेथे

अर्थात्, गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही

एक फाटक पर—सबकी
 थे ।

५ पुहपन घरे ।

* पर इस में लघु है ।

दुहूँ दिसि दीसै सुवरन मये । कलस विराजै मनिमय नये ॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रज परिहरे=धूलरहित, स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियाँ हैं, वे चंदन से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के दोनों ओर रत्नजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद— ✕

घर घर घंटनके रव वाजै । विच विच शंख जु झालरि साजै ॥
पटह पखाउज आवझ सोहैं । मिलि सहनाइन सौं मन मोहैं ॥

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा ।
पखाउज=मृदंग । आवझ=ताशा ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद—सुन्दरि सव सुन्दर प्रति मंदिर पुर यौ वनी ।
मोहनगिरि शृंगन पर मानहु महि मोहनी ॥
भूपनगन भूपित नत भूरि चितन चारही ।
देखत जनु रेखत तनु वान-नयन कोर ही ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, सरोचती हैं अर्थात् धावकरती हैं । नयन कोर=नेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई वरात का जलूसदेखने के लिये आठारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

६)पद्माख्य (७)यक्षभेद (८)सार्वर । कालिंजरके किले में अभी भी इस प्रकारका कुछकुछ आभास मिला है ।

शब्दार्थ—पुर आठ=नगर के आठो कोठों में । दरबार=द्वार, फाटक । सेनाबल=सिपाही, रक्षक ।

भावार्थ—नगर के आठो कोठों में आठो दिशाओं पर फाटक हैं, प्रत्येक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी वहाँ रहते हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते हैं तब वे आठ अपने घर जाते हैं । इस प्रकार हिसाब लगाते से अबोध्या नगरके फाटकों के रक्षक $८ \times ८ \times ८ \times १५ = ७६८०$ होते हैं ।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुण भाषा भेष विचार ।
वाहन वसन विलोक्य केशव एकहिँ द्वार ॥५॥

शब्दार्थ—द्वार=दरवाजा, फाटक (कोठ का द्वार) ।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा, भेष, विचार, वाहन और वस्त्र एक फाटक पर ही देखे जाते थे अर्थात् जैसे सुभाव, गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही एक फाटक पर रहते थे वैसे ही सब फाटकों पर—सबकी वहाँ, सबके स्वभाव और गुण एक से थे ।

मूल—कुसुमविचित्राछन्द*—

शक्ति सुभ चीथी रज परिहरे । मलयज लोपी पुहपन धरे ।

* कुसुम विचित्रा छंद का १२ वां अक्षर दीर्घ होता चाँदिके, पर इस में लघु है । काँल शत नहीं ।

उह दिसि दीसैं सुवरन मये । कलस विराजैं मनिमय नये ॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रज परिहरे=धूलरहित, स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियाँ हैं, वे चंदन से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के दोनों ओर स्तनजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद— ✕

घर घर घंटनके रच वाजैं । विच विच शंख जु झालरि साजैं ।
पटह पखाउज आउझ सोहैं । मिलि सहनाइन सौ मन मोहैं ॥

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा ।
पखाउज=मृदंग । आउझ=ताशा । ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद-सुन्दरि सब सुन्दर प्रति मंदिर पुर यो चनी ।

मोहनगिरि शृंगन पर मानहु माहि मोहवी ॥

भूषनगन भूपित नत भूरि चितन चारही ।

देखत जनु रेखत तनु वान-नयनकोर हीं ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, सरोचती हैं अर्थात्
घावकरती हैं । नयन कोर=नेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई वरात का जलूसदेखने
के लिये आठारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

(६)पद्माख्य (७)यक्षमेद (८)सार्वर । कालिंजरके किले में अभी भी इस प्रकारका कुछकुछ आमास मिलवा है ।

शब्दार्थ—पुर आठ=नगर के आठो कोठों में । दरवार=द्वार, फाटक । सेनावल=सिपाही, रक्षक ।

भावार्थ—नगर के आठो कोठों में आठो दिशाओं पर फाटक हैं, प्रत्येक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी वहाँ रहते हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते हैं तब वे आठ अपने घर जाते हैं । इस प्रकार हिसाब लगाने से अयोध्या नगर के फाटकों के रक्षक $८ \times ८ \times ८ \times १५ = ७६८०$ होते हैं ।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुण भाषा भेष विचार ।
बाहन बसन विलोकिये केशव एकहिँ द्वार ॥५॥

शब्दार्थ—द्वार=दरवाजा, फाटक (कोट का द्वार) ।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा, भेष, विचार, बाहन और बस्त्र एक फाटक पर ही देखे जाते थे । अर्थात् जैसे सुभाव, गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही एक फाटक पर रहते थे वैसे ही सब फाटकों पर—सबकी चर्चा, सबके स्वभाव और गुण एक से थे ।

मूल—कुसुमविचित्राछन्द—

अति सुभ बोधा रज पारिहरे । मलयज लोपी पुहपन धरे ।

• कुसुम विचित्रा छन्द का १२ वां अक्षर दीर्घ होना चाहिये, पर इस में लघु है । कारण काल नहीं ।

उह दिसि दीसैं सुबरन मये । कलस विराजैं मनिमय नये ॥॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रजः परिहरे=धूलरहित,
स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियाँ हैं, वे चंदन
से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के
दोनों ओर रत्नजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख
पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद— ✕

घर घर घंटनके रव वाजैं । विच विच शंख जु झालरि साजैं ॥
पटह पखाउज आउझ सोहैं । मिलि सहनाइन सौं मन मोहैं ॥

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा ।
पखाउज=मृदंग । आउझ=ताशा । ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद-सुन्दरि सब सुन्दर प्रति मंदिर पुर यों वनी ।

मोहनगिरि शृंगन पर मानहु महि मोहनी ॥

भूपनगन भूपित नत भूरि चितन चारहीं ।

देखत जनु रेखत तनु वान-नयन कोर हीं ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, खरोंचती हैं अर्थात्
घावकरती हैं । नयन कोर=चेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई वरात का जलूसदेखने
के लिये आठारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

सुन्दरी स्त्रियों अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी बनी ठनी हैं मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनी देवियाँ हैं (नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहनी' कहकर नगर और स्त्रियों की अति सुन्दरता सूचित की है) । अनेक आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जत हैं (इस से उनका धन-सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि अनेक जनों के चितों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं) । वे जिसकी ओर देख देती हैं मानो कटाक्ष से-याणसम नेत्रों की अनी से-उसके शरीर पर रेखा सी करता है (घाव करता है) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—सुन्दरीछन्द—

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति । सिद्धन की तनया जनु सोहति ।
पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु । कपन ऊपर दीपति जानहु ॥१॥
कोरति धी जयसंयुत सोहति । धीपति मंदिर को मन मोहति ।
ऊर मेरु मनो मन रोचन । स्वर्णलता जनु रोचति लोचन ॥२॥

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत । पद्मिनि=लक्ष्मी । धीपति-मंदिर=वैकुण्ठ । मनरोचन=मनोहर । रोचति=सुहावनी लगती है ।

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी उत्प्रेक्षामाला लिखते हैं) वे स्त्रियाँ कैसी शोभती हैं मानो कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (शंकर का) मन मोहित कर रही हैं । (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियाँ हैं, वा

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है
जो बैकुण्ठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर
मानो नेत्रानन्द दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

मूल—विशेषकछन्द (इसे 'नील' और 'अश्वगति' भी कहते हैं)—
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे । मोहति है मन मानहु
चाँदनि चंद्र धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगरी ।
मानहु रागिनि राजति है अनुराग रंगी ॥ ११ ॥
नील निचोलन को पहरे एक चित्त हरै । मेघन की दुति
मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय
जरी । सूर करावलि सी जनु पक्षिनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल
माना गया है) । निचोल=वस्त्र । दुति=कान्ति । सूछम=चारीक,
महीन । सारि=साड़ी । अराय जरी=जरदोजी काम की (जिसपर
सल्मे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों
का समूह । पक्षिनी=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ
में दर्पण किये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है,
वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चंद्रमा को अपने हाथ
में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है
(चाँदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद वस्त्र धारण किये
हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल चक्षुओं

श्री ग्योति से जगमगा रही है, मानो अनुपम से रंगी हुई कोई रागिनी ही शोभित है ॥ ११ ॥ कोई ली नीलान्धर धारण किये हुए मन मोहती है, मानो विजय ही ने मेघकान्ति को अपने शरीर पर धारण किया है । किसी ली के तन पर जपी की धारण साड़ी है, वह ऐसी शोभा देती है मानो कमलिनोने सूर्य-किरण-समूहको शरीर पर धारण किया हो ॥ १२ ॥

अलंकार—व्येका ।

मूल—तोटक छंद— x

वरपै कुसुमागलि एक धनी । सुन-सोमन कामलता सी धनी
वरपा फल फूलन लायक की । जनु हैं तदना रतिनायक की ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—एक=कोई ली । सुन-सोमन=अत्यन्त रूपवती ।

कामलता=अत्यन्त सुंदर लता । फल=पुंगी फलादि । लायक

(लायक)=लावा (मत्ताने के लयवा धान के लावा) । रति-
नायक=कामदेव ।

भावार्थ—कोई ली अत्यन्त सुंदर कामलता सी धनी पुष्प
वर्षा कर रही है । कोई फल फूल और लावों की वर्षा कर
रही है, वह ऐसी सुन्दर है मानो कामदेव की ली (रति)
ही हो । वास्तव यह कि अटारी पर चढ़ी हुई सुन्दर लीयों
फल फूल लावा इत्यादि मंगल सूचक वस्तुओंकी वर्षा कर
रही हैं ।

लंकार—उत्प्रेक्षा ।

ल—दाहा—भीर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि ।
तिनहि देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि ॥१४॥

वदार्थ—नागरी=चतुरा ।

ल—तोटक छन्द—

तमपुंज लियो गहि भानु मनो । गिरि अंजन ऊपर सोम मनो ।
मनमत्थ विराजत सोम तरे । जनु भासत दानहि लोभ धरे ॥

वदार्थ—गिरिअंजन=कज्जलगिरि । सोम=चंद्रमा ।
मनमत्थ=कामदेव । सोम=शोभा । तरे=नीचे । धरे=धारण
किये हुए, सिरपर लिये हुए ।

वदार्थ—(भौड़ अधिक होने से जब श्री रामजी हाथी पर
चढ़ कर चले तब हाथी पर सवार श्रीरामजी का वर्णन वे
स्त्रियों यों करने लगीं) मानो तमसमूह ने सूर्य को पकड़
लिया हो (रामजी सूर्य, तमपुंज हाथी), अथवा कज्जलगिरि
पर चंद्रमा है ऐसा कहिये (रामजी चंद्र, कज्जलगिरि हाथी)
अथवा लोभ ही दान को मस्तक पर धारण किये हुए देख
पड़ता है (हाथी काल्य होने से लोभसम, और रामजी सुन्दर
होने से दान सम हैं) ।

मलंकार—उत्प्रेक्षा माला ।

ल—गरहडा छन्द—

प्रकासी सव पुंरवासी करत ते दौरादौरी ।

उतारि सरचन्द्र वारि अपनी अपनी पौरी ॥

सुन्दरी स्त्रियों अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी
 मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनो देवोंकी
 (नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहन्य' इस
 नगर और स्त्रियों को अति सुन्दरता सूचित की है)। वे
 आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जित हैं (इस से उनके
 सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि वे
 जनों के चित्तों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं)। वे कि
 ओर देख देती हैं मानो कटाक्ष से—यापसम नेत्रों की क
 से—उसके शरीर पर रेखा सी करती हैं (पाव करती हैं)

अलंकार—उपेक्षा ।

मूल—सुन्दरीलंर-

संकर-सैल चर्दा मन मोहति । सिद्धन की तनया अनु सोहति
 पद्म ऊपर पद्मिनि मानहु । रूपन ऊपर दीपति आनहु ।
 कोरतिथी जयसंयुत सोहति । श्रीपति मंदिर को मन मोहति
 ऊपर मेढ मनो मन रोचन । स्वर्णलता अनु रोचति लोचन

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत । पद्मिनि=लक्ष्मी । श्रीपति
 मंदिर=कैकुण्ठ । मनरोचन=मनोहर । रोचति=सुहावनी लगती है

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी
 उपेक्षामाला लिखते हैं) वे स्त्रियाँ कैसी शोभती हैं माने
 कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (संकर का) मन मोहित
 कर रही हैं । (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियों है, व

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है
जो वैकुण्ठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर
मानो-नेत्रानन्द दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

मूल—विशेषकछन्द(इसे 'नील' और 'अश्वगति' भी कहते हैं)—
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे । मोहति है मन् मानहु
चाँदनि चंद धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी ।
मानहु रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ ११ ॥
नील निचोलन को पहिरे एक चित्त हरै । मेघन की दुति
मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय
जरी । सूर करावलि सी जनु पधनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल
माना गया है) । निचोल=वस्त्र । दुति=कान्ति । सूछम=वारीक,
महीन । सारि=साड़ी । अराय जरी=अरदोजी काम की (जिसपर
सल्मे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों
का समूह । पधनि=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ
में दर्पण लिये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है,
वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चन्द्रमा को अपने हाथ
में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है
(चाँदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद वस्त्र धारण किये
हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल बत्नों

सुन्दरी स्त्रियों अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी बनी ठनी हैं मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनी देवियों हैं (नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहनी' कहकर नगर और स्त्रियों की अति सुन्दरता सूचित की है) । अनेक आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जित हैं (इस से उनका धन-सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि अनेक जनों के चित्तों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं) । वे तिसड़ी ओर देस देती हैं मानो कटाक्ष से-ग्राणसम नेत्रों की अनी से-वसके शरीर पर रेखा सी करती हैं (धाव करती हैं) ।

अलंकार—उपेक्षा ।

मूल—सुवरीलद-

संकर-सैल चढ़ो मन मोहति । सिद्धन की तनया जनु सोहति ॥
पद्म ऊपर पद्मिनि मानहु । रूपन ऊपर दोपाति जानहु ॥२५॥
कोरतिथी जयसंयुत सोहति । श्रीपति मंदिर को मन मोहति ॥
ऊर मेरु मनो मन रोचन । स्वर्णलता जनु रोचति लोचन ॥

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत । पद्मिनि=लक्ष्मी । श्रीपति-
मंदिर=वैकुण्ठ । मनरोचन=मनोहर । रोचति=सुहावनी लगती है ।

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी उपेक्षामाल्य लिखते हैं,) वे स्त्रियां कैसी शोभती हैं मानो कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (संकर का) मन मोहित कर रही हैं । (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियों है, वा

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है
जो वैकुण्ठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर
मानो नेत्रानन्द दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

प्रलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

तूल—विशेषकछंद(इसे 'नील' और 'अश्वगते' भी कहते हैं)-
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे । मोहति है मन मानहु
चाँदनि चंद्र धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी ।
मानहु रासिनि राजति है अनुराग रंगी ॥ ११ ॥
नील निचोलत को पहरे एक चित्त है । मेघन की दुति
मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय
जरी । सूर करावलि सी जनु पधनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=बख । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल
माना गया है) । निचोल=बख । दुति=कान्ति । सूछम=बारीक,
महीन । सारि=साड़ी । जराय जरी=जरदानी काम की (जिसपर
सस्त्रे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों
का समूह । पधनी=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ
में दर्पण लिये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है,
वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चंद्रमा को अपने हाथ
में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है
(चाँदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद बख धारण किये
हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल बखों

की ज्योति से जगमगारही है, मानो अनुराग से रंगी हुई कोई रागिनी ही शोभित है ॥ ११ ॥ कोई स्त्री नीलाम्बर धारण किये हुए मन मोहती है, मानो विजली ही ने मेषकान्ति को अपने शरीर पर धारण किया है । किसी स्त्री के तनपर जरी की बारीक साड़ी है, वह ऐसी शोभा देती है मानो कमलिनीने सूर्य-किरण-समूहकी शरीरपर धारण किया हो ॥ १२ ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तोटक छंद— x

वर्षे कुसुमावलि एक घनी । सुभ-सोभन कामलता सी घनी
वरपा फल फूलन लावक की । जनु हैं तयनी रतिनायक की ॥ ३

शब्दार्थ—एक=कोई स्त्री । सुभ-सोभन=अत्यन्त रूपवती ।
कामलता=अत्यन्त सुंदर लता । फल=पुंगी फलादि । लावक
(लावक)=लावा (मखाने के अथवा धान के लावा) । रति-
नायक=कामदेव ।

भावार्थ—कोई स्त्री अत्यन्त सुंदर कामलता सी घनी पुष्प वर्षा कर रही है । कोई फल फूल और लावों की वर्षा कर रही है, वह ऐसी सुन्दर है मानो कामदेव की स्त्री (रति) ही हो । तात्पर्य यह कि अटारीपर चढ़ी हुई सुन्दर स्त्रियों फल फूल लावा इत्यादि मंगल सूचक वस्तुओंकी वर्षा कर रही हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—भीर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि ।
तिनहि देखि बरनत सवे नगर नागरी नारि ॥१४॥

शब्दार्थ—नागरी=चतुरा ।

मूल—तोटक छन्द—

तमपुंज लिखो गहि भानु मनो । गिरि अंजन ऊपर सोम भनो ॥
मनमत्थ विराजत सोभ तरे । जनु भासत दानहि लोभ धरे ॥१५॥

शब्दार्थ—गिरिअंजन=कज्जलगिरि । सोम=चंद्रमा ।

मनमत्थ=कामदेव । सोभ=शोभा । तरे=नीचे । धरे=धारण
किये हुए, सिरपर लिये हुए ।

शब्दार्थ—(भीड़ अधिक होने से जब श्री रामजी हाथी पर
चढ़ कर चले तब हाथी पर सवार श्रीरामजी का वर्णन के
स्त्रियाँ यों करने लगीं) मानो तमसमूह ने सूर्य को पकड़
लिया हो (रामजी सूर्य, तमपुंज हाथी), अथवा कज्जलगिरि
पर चन्द्रमा है ऐसा कहिये (रामजी चंद्र, कज्जलगिरि हाथी)
अथवा लोभ ही दान को मस्तक पर धारण किये हुए देख
पड़ता है (हाथी काला होने से लोभसम, और रामजी सुन्दर
होने से दान सम हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा माला ।

मूल—मरहटा छन्द—

आसद प्रकासी सय पुरवासी करत ते दौरादौरी ।

आरती उतारै सरबद्ध वारै अपनी भपनी पौरी ॥



भावार्थ—सुगम ही है ।

मूल—पद्मावतीचंद्र-वाजे बहु वाजें, तारनि साजें, सुनि सुर
लाजें, दुख भाजें । नाचें नव नारी, सुमन सिंगारी, गति
मनुहारी, सुख साजें ॥ वीनानि बजावें, गीतनि गावें, मुनिन
रिझावें, मन भावें । भूषण पट दीजें, सब रस भीजें, देखत
जाजें, छवि छावें ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—तार=उच्चस्वर । तारनि साजें=उच्चस्वर से गाते
हैं । भूषण पट दीजें=भूषण और वस्त्र देते हैं । सब रस
भीजें=सब पुरवासी लोग प्रेमयुक्त होकर । देखतजाजें=
जिनको देखदेख कर लोग जाते हैं (ऐसे सुन्दर हैं जिनको
देखने के लिये लोग कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हैं)।
भूषणपट. छावें=वे नाचने गाने वाली नटिनियां,
घेड़िनियां ऐसी सुन्दर हैं कि लोग उनको देखदेख कर जाते हैं
और प्रेमयुक्त होकर उन्हें भूषण और वस्त्र पुरस्कार में देते हैं।

भावार्थ—सुगम ही है ।

मूल—सोरठा-रघुपति पूरण चंद्र, देखि देखि सय सुख मूढ़ें ।
दिन दूने, आनन्द, तादिन ते तेहि पुर बढें ॥२०॥

शब्दार्थ—दिन=प्रतिदिन ।

विशेष—तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है—जब तें राम
व्याहि घर आये । नित नव संगल मोद बधाये ।

आठवाँ प्रकाश समाप्त ।

बालकण्ठ की कथा सम्पूर्ण ।

पदि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दे सविशेष ।

कुंकुम करपूरनि मृगमद चूरनि वर्षत वर्षो वैपै ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ—आनंद प्रकाशी=आनन्द प्रकाशित करनेवाले।

पौरी=दरवाजा । अशेषनि (अशेष)=समस्त, सब प्रकारसे-

अभिषेकनि=मंत्रों द्वारा जल छिड़कना । आशिष=अर्पण-

दुग्धा । सविशेषै=विशेष रीति से, बड़े प्रेमभाव से । कुंकुम-

केसर । करपूर=कपूर । मृगमद=कस्तूरी । चूर=चूर्ण ।

भावार्थ—आनंद प्रकाशित करने वाले समस्त पुरवासी लक्ष-

इधर उधर दौड़ घूमकर रहे हैं । अपने अपने द्वार पर पहुँचने

पर वे श्रीरामजी की आरती करते हैं और अपना सर्वस्व(धन,

मन, धन) निछावर कर डालते हैं । समस्त मंत्र पढ़ पढ़ कर

शुभकामना सूचक मंत्रजलसे अभिषेक करते हैं और बड़े प्रेम

से आशीर्वाद देते हैं । केसर, कपूर और कस्तूरी का चूर्ण वर्ष

की तरह बरसाते हैं ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

✓ मूल—आमीर छंद—यद्विविधि श्रीरघुनाथ । गये भरत को हाथ

पूजित लोक अपार । गये राज-दरवार ॥ १०॥

गये एकही धार । धारो राज कुमार ॥

सहित यधून सनेह । कौशल्या के गेह ॥ ११॥

शब्दार्थ—पूजित लोक अपार=अनेक लोगों से पूजित होवे

हुए । दरवार=द्वार । सहित यधून=दुल्हिनों सहित । सनेह=

(सनेह) प्रेम पूर्वक ।

।।वार्थ—सुगम ही है ।

ल—पद्मावतीछंद—वाजे बहु वाजें, तारनि साजें, सुनि सुर
गजें, दुख भाजें । नाचें नव नारी, सुमन सिंगारी, गति
।सुहारी, सुख साजें ॥ वीनानि बजावें, गीतनि गावें, मुनिन
रेखावें, मन भावें । भूषण पट दीजें, सब रस भीजें, देखत
गिजें, छवि छावें ॥ १९ ॥

वदार्थ—तार=उच्चस्वर । तारनि साजें=उच्चस्वर से गाते
हैं । भूषण पट दीजें=भूषण और वस्त्र देते हैं । सब रस
भीजें=सब पुरवासी लोग प्रेमयुक्त होकर । देखतजिजें=
जिनको देखदेख कर लोग जीते हैं (ऐसे सुन्दर हैं जिनको
देखने के लिये लोग कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हैं)।
भूषणपट. छावें=वे नाचने गाने वाली नटिनियां,
वेदिनियां ऐसी सुन्दर हैं कि लोग उनको देखदेख कर जीते हैं
और प्रेमयुक्त होकर उन्हें भूषण और वस्त्र पुरस्कार में देते हैं।

।।वार्थ—सुगम ही है ।

ल—सोरठा-रघुपति पूरण चंद्र, देखि देखि सय सुख प्रदें ।
दिन दूने, आनन्द, तादिन ते तेहि पुर बद्धें ॥२०॥

।।वदार्थ—दिन=प्रतिदिन ।

वेषोप—तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है:—जब तें राम
व्याहि घर आये । नित नव मंगल मोद बधाये ।

आठवाँ प्रकाश समाप्त ।

बालकाण्ड की कथा सम्पूर्ण ।

नवा प्रकाश

—:०:—

(अयोध्या कांड)

दोहा—यह प्रकाश नवमें कथा रामगमन वन जानि ।

जनकनंदिनी को मुकृत वरनन रूप बखानि ॥

मूल—दोहा—^xरामचन्द्र लछिमन सहित घर राखे दसरथ ।
विदा कियो ननसार को संग शत्रुघ्न भरथ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ननसार= (नाना-शाला) ननिहाल, ननिओरा ।

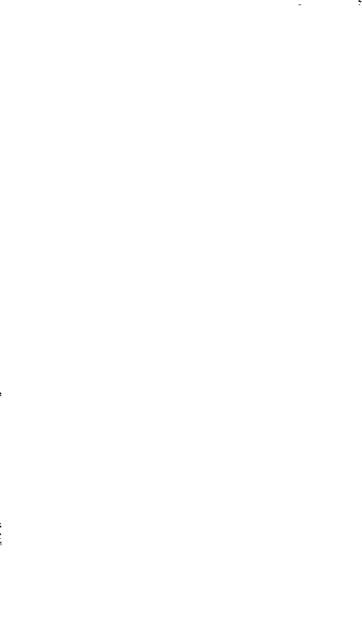
मूल—तोटक—^x
दसरथ महा मन मोद रये । तिन वोलि वशिष्ठ सौ मंत्र लये ।
दिन एक कहो सुभ सोभरयो । हम चाहत रामदि राज दयो ॥२॥

शब्दार्थ—मोद रये=मोदसे रंजित, मुदित । मंत्र लये=सलाह
की । सोभरयो=सुंदर ।

भावार्थ—सरलही है ।

मूल—^x
यह बात भरथ की मातु सुनी । पठऊं वन रामहि बुद्धि शुनी ॥
तेहि मंदिर मां नृप सौ बिनयो । वर देहु हुता हमको जु दयो ॥
नृप बात कही हंसि हरि हियो । वर मांगि सुलोचनि मैं जु दियो ॥
(कैकेयी) नृपता सुविसेस भरथ लहैं । वरपै वन चौदह राम रहैं ॥

शब्दार्थ—हेरि हियो=गौर करके; अपने दिये हुए वचन को
स्मरण करके ।



नवा प्रकाश

—:०:—

(अयोध्या कांड)

दोहा—यह प्रकाश नवमें कथा रामगमन बन जानि ।

जनकनंदिनी को मुकृत वरनन रूप बखानि ॥

मूल—दोहा—^xरामचन्द्र लछिमन सहित घर राखे दसरथ ।
विदा कियो ननसार को संग शत्रुघ्न भरथ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ननसार= (नाना-शाला) ननिहाल, ननिओरा ।

मूल—तोटक—^x
दसरथ महा मन मोद रये । तिन बोलि बशिष्ठ सौ मंत्र लये ।
दिन एक कहौ सुभ सो भरयो । हम चाहत रामहि राज दये ॥ २ ॥

शब्दार्थ—मोद रये=मोदसे रजित, मुदित । मंत्र लये=सलाह
की । सोभरयो=सुंदर ।

भावार्थ—सरलही है ।

मूल—^x

यह बात भरथ की मातु सुनी । पठज बन रामहि बुझि गुनी ॥
तेहि मंदिर मों नृप सौं बिनयो । वर देहु हुता हमको लु दयो ॥
नृप बात कही हंसि हेरि हियो । वर मांगि सुलोचनि मै लु दियो ॥
(कैकेयी) नृपता सुपिसेल भरथ लहे । वरपै बन चौदह राम रहे ॥

शब्दार्थ—हेरि हियो=गौर करके; अपने दिये हुए वचन को
स्मरण करके ।

भावार्थ—सरल ही है ।

X मूल—पद्मटिका—यह बात लगी उर यज्ञ तूल । द्विप फ
ज्यों जीरनदुकूल ॥ उठि चले विपिन फहँ सुनत राम ।
तात मानु तिय बंधु धाम ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तूल=तुल्य, समान । जीरनदुकूल=पुराना कपड़ा ।
विपिन=वन ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—वसंततिलका—छूटे सचै सयनि के सुख क्षुत्पिपास ।
विद्वद्विनोद गुण, गीत विधान, वास ॥ ब्रह्मादि अंत्यजन
अंत अनंत लोग । भूले अशेष सविशेषनि राग भोग ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—क्षुत्पिपास=भूखप्यास । विद्वद्विनोद=विद्याविनोद,
शास्त्रार्थ इत्यादि । गुण=विद्या का अभ्यास । गीत विधान=
गाना, बजाना, नृत्य इत्यादि । वास=घर । ब्रह्मादि अंत्यजन
अंत=ब्राह्मणों से लेकर पवित्र शूद्रों तक । अशेष=सब ।
सविशेषनि=विशेषरूपसे, विश्वकुल, अत्यंत । राग=प्रेम । भोग
=सुख भोग इत्यादि ।

भावार्थ—(राम के वनगमन की खबर सुनकर) सब लोगों
को सब प्रकार के सुख भोग भूल गये, भूख प्यास भी जाती
रही, पण्डित लोगों को शास्त्रार्थ विनोद, विद्याभ्यास (पठन-
पाठन) भूल गया, गायक लोग गान वाद्यादि का व्यसन
भूल गये, यहांतक कि लोगों को अपने अपने घर द्वार की भी

या छंद-नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार ।
 वाधिर अंध अनाथ अपार ॥ अंध अनाथ
 प्रावन अति रोगी । बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन
 ॥ कलही कोढ़ी भीरु चोर स्वारी व्यभिचारी ।
 गी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥ १६ ॥

—और भावार्थ—सरल ही है ।

जजवाटिका छंद (यह भी चौपाई ही है)—नारि
 मेरे भरतारहि ॥ ता सँग सहहि धनंजय झारहि ॥
 विधि करतार जियावहि । तौ तेहि कहँ यह बात
 ॥ १७ ॥

र्थ—धनंजय=अग्नि । करतार=ईश्वर । वात=आचार-

—स्त्री को चाहिये कि वह मरजाने पर भी अपने
 न छोड़े । उसीके साथ अग्नि की शार सहन
 (जाय) यदि किसी कारण वश ईश्वर ऐसा
 पतिकी मृत्यु के बाद भी उसे जीवित
 कृत्य के अनुरोध से—यथा पतिका
 (गलन इत्यादि) तो उसके

न, कवि पहले
 कौशल है ।

शब्दार्थ—सासना=(शासन) आज्ञा । नर्क=नरक ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—(कौशल्या)—सारवती छंद—

x मोहि चली वन संग लिये । पुत्र तुम्हें हम देखि जिये ॥
औधपुरी महँ गाज परै । केअव राज्य मत्थ करे ॥ १० ॥

(नारि-धर्म वर्णन)

मूल—(राम) तोमर छंद—

तुम क्यों चली वन आज्ञु । जिन सीस राजत राजु ॥
जिय जानिये पति देव । करि सब भांतिन सेव ॥ ११ ॥

पति देख जो भति दुःख । मन मानि लीजै सुख ॥
सब जगत जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ १२ ॥

मूल—अमृतगति छंद—

नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ॥
तन मन सेवहु पतिको । तय लहिये सुभ गति को ॥ १३ ॥

मूल—स्वागताछंद—(यह छंद एक प्रकार की 'चौपारि' है)—
जोग जाग मत आदि जु कीजै । न्हान, गानगुन, दान जु दीजै ॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहि एक फल के पति सेवा ॥ १४ ॥

मूल—तात मानु जन सांवर जानौ । देव जेठ सब संगिहु मानो ॥
पुत्र पुत्रसुत थी छविछाई । हँ विहीन भरता दुखदाई ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—(छंद १२) अमित्र=अहितु । मित्र=हितैषी ।

(छंद १४) गानगुन=गुणगान(देवकी भजन) । देवा=देवपूजन ।

(छंद १५) देव=देवर । पुत्रसुत=पौत्र । विहीन=बिना ।

भावार्थ—छंद ११ से १५ तक का अर्थ सरल ही है ।

मूल—कुंडलिया छंद-नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार ।
पंगु गुंग वौरा वधिर अंध अनाथ अपार ॥ अंध अनाथ
अपार वृद्ध वावन अति रोगी । बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन
जड़ जोगी ॥ कलही कोटी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी ।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—और भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—पंकजवाटिका छंद (यह भी चौपाई ही है)—नारि
न तजहि मेरे भरतारहि ॥ ता सँग सहहि धनंजय झारहि ॥
जो केहु विधि करतार जियावहि । तो तेहि कहँ यह बात
बतावहि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—धनंजय=अग्नि । करतार=ईश्वर । वात=आचार-
शिक्षा ।

भावार्थ—स्त्री को चाहिये कि वह मरजाने पर भी अपने
पति को न छोड़े । उसीके साथ अग्नि की शार सहन
करे (सती होजाय) यदि किसी कारण वश ईश्वर ऐसा
संयोग ला दे कि पतिकी मृत्यु के बाद भी उसे जीवित
रहना पड़े (किसी धर्मकृत्य के अनुरोध से—यथा पतिकी
धर्मितम संस्कार करना वा पुत्र पालन इत्यादि) तो उसके
लिये यह आचार-शिक्षा बतलाई गई है ।

अलंकार—मुद्रा ।

नोट—आगे होने वाली बात का आभास सुचतुर कवि पहले
से श्रीरामजी के मुख से दिलाता है । यह केशव का कौशल है ।

शब्दार्थ—सासना=(शासन) आज्ञा । नरक=नरक ।
 भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—(कौशल्या)—सारवती छंद—

* मोहि चली वन संग लिये । पुत्र तुम्हें हम देखि जियें ॥
 आंधपुरी महँ गाज परै । कै अब राज्य भरत्य करे ॥ १० ॥

(नारि-धर्म वर्णन)

मूल—(राम) तोमर छंद—

तुम क्यों चली वन आहु । जिन सीस राजत राजु ॥
 जिय जानिये पति देव । करि सख्य भांतिन सब ॥ ११ ॥
 पति देख जो अति दुःख । मन मानि लीजै सुख ॥
 सब जगत जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ १२ ॥

मूल—अमृतगति छंद—

नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ॥
 तन मन खेवहु पतिको । तव लहिये सुभ गति को ॥ १३ ॥

मूल—स्वागताछंद—(यह छंद एक प्रकार की 'चौपाई' है)—
 जोग जाग प्रत आदि जु कीजै । न्हान, गानगुन, दान तु दीजै ॥
 धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहि एक फल के पति सेवा ॥ १४ ॥

मूल—तात मानु जन सौंदर जानौ । देव जेठ सब संगिहु मानो ॥
 पुत्र पुत्रसुत श्री छविछाई । हँ विहीन भरता दुखदाई ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—(छंदे १२) अमित्र=अहित । मित्र=द्वितीय ।
 (छंद १४) गानगुन=गुणगान(ईश्वर भजन) । देवा=देवपूजन ।

(छंद १५) देव=देवर । पुत्रसुत=पौत्र । विहीन=विना ।

भावार्थ—छंद ११ से १५ तक का अर्थ सरल ही है ।

नवी प्रकार

मूल—कुंडलिया छंद-नारी तेजे न थाकना सहेय कवयार
पगु गुंग वौरा वधिर अंच अनाय
अपार वृद्ध वावन अति नोगी दालन में कुन
जड़ जोगी ॥ कलही कोड़ी भीन में
अधम अभागी कुटिल कुमति प्रति तेजे न करी

शब्दार्थ—और भावार्थ—सरल ही है।

मूल—पंकजवाटिका छंद (यह भी चौपाई छंद है)
न तजहि मेरे भरतारहि ॥ ता संग सदाहि बन्य
जो केहु विधि करतार जियावहि । वो तेहि कहै
यतावहि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—घनंजय=अग्नि । करतार=इन्द्र ।

भावार्थ—स्त्री को चाहिये कि वह मरने पर भी अपने
पति को न छोड़े । उसीके साथ अग्नि की दहन करने
करे (सती होजाय) यदि किसी कारण दस
संयोग ला वे कि पतिकी मृत्यु के बाद भी
रहना पड़े (किसी धर्मकृत्य के अनुरोध से—इत्यादि)
अंतिम संस्कार करना वा पुनः पालन इत्यादि)
लिये यह आचार-शिक्षा बतलाई गई है ।

अलंकार—गुदा ।

नोट—आगे होने से श्रीराघजी के मुख

(विधवा-धर्म-वर्णन)

मूल—(राम)—निशिपादिकाखंड—गान बिन मान बिन हास
बिन जीवहीं । तस नहिं छाय जल सीत नहिं पीवहीं ॥ तेह
तजि खेल तजि छाट तजि सोवहीं । सीत जल न्हाय नहिं
उष्ण जल जोवहीं ॥ १८ ॥

छाय मधुरात्र नहिं पाय पनहीं धरें । काय मन वाच सब
धर्म करियो करै ॥ कृच्छ उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं ।
पुत्र सिख लीन तन जौलनि अतीतहीं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—मधुरात्र=मिठाई । पनहीं=पादत्राण । कृच्छ
उपवास=चांद्रायण व्रत इत्यादि, शरीर को कृश करने वाले
वा कष्ट देने वाले उपवास । ऐसे व्रतों में एक दिन पहिले
पंचगव्य का प्राशन किया जाता है दूसरे दिन व्रत किया जाता
है । पुत्र सिख लीन=पुत्र की आज्ञा के अनुसार रहते हुए ।
अतीतहीं=छोड़े, त्याग करे ।

भावार्थ—न स्वयं गावे न गान सुने, किसी से सम्मान पाने
की इच्छा न करे, किसी से परिहास न करे, गर्म वस्तु न
खाय, पानी को ठंडा कर न पिये (जैसा मिल जाय वैसाही
पिये), तैल न लगावै, किसी क्रीड़ा में सम्मिलित न हो,
खटिया पर न सोवै, ठंडे पानी से स्नान करे, गर्म जल की
तल्लस न करे ॥ १८ ॥ मीठा भोजन न करे, पैर में पतली
न पहिने, मन वचन कर्म से धर्म कार्य ही किया करे ।
शरीर को कष्ट देने वाले व्रत करके इन्द्रियों को जीते, पुत्र

की आज्ञा में रहे, जब तक शरीर न छूटे तब तक इस प्रकार जीवन व्यतीत करे ॥ १९ ॥

मूल—दोहा—पति हित पितु पर तनु तज्यो सती साखि दे देव ।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥ २० ॥

x | मनसा बाचा कर्मणा हमसों छौंड़हु नेहु ।
राजा को विपदा परी तुम तिन की सुधि लेहु ॥ २१ ॥

नोट—सती (दक्षकन्या) और तुलसी (वृन्दा) की कथाएं प्रसिद्ध हैं ।

शब्दार्थ—विपदा=आफत, कष्ट । सुधि लेहु=सार सँभार करो ।

भावार्थ—सरल ही है ।

(राम जानकी संवाद)

मूल—पद्यिका छंद— x

उठि रामचंद्र लक्ष्मण समेत । तब गये जनक-तनया निकेत ॥
सुनि राज पुत्रिके एक बात । हम वन पठये हैं नृपति तात ॥ २२ ॥
तुम जननि सेव कहँ रहहु बाम । कै जाहु आजु ही जनक धाम ॥
सुनि चंद्रचदानि गजगमानि एनि । मन रुचै सो फीजे जलजनैति २३

शब्दार्थ—एनि=(एणी) कस्तूरी-मृगी (यह मृगी बहुत सुन्दर होती है । कद छोटा, पर आँखें बहुत बड़ी बड़ी और सुन्दर होने से बहुत प्यारी सूरत की होती है, अतः यहां पर अर्थ होगा) सुन्दरी, प्यारी ।

भावार्थ—सरल है । x

मूल—(सीता)-नराचछंद-न हौं रहौं न जाहुँ जू विवेह-धाम

को अबै । कही जु यात मातु पै सु थाजु मैं सुनी सबै ॥ ७५ ॥
 छुघाहि माँ भली विपति माँझ नारिये । पियास-त्रास नीर
 नीर युद्ध में सँभारिये ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—विदेह-धाम=जनकपुर । छुघाहि=मूख में । मां=
 माता । पियास-त्रास=पियास की त्रास । नीर=योद्धा या भाई ।

भावार्थ—(सीता जी कहती हैं) न तो मैं अयोध्या में
 रहूँगी, न अभी मैं जनकपुर जाऊँगी । जो बात अभी आपने
 माता जी से कही है वह मैंने सब सुनी है । मूख के समय
 माता ही अच्छी लगाती है, विपति में स्त्री ही अच्छी सेवा-
 शुश्रूषा करती है, पियास में पानी ही अच्छा काम देता है,
 और युद्ध के समय भाई ही (या योद्धा) काम आता है,
 अतः ऐसे समयों के लिये इन्हीं व्यक्तियों को सँभाल कर
 साथ रखना चाहिये ।

नोट—भावी राम-रावण-युद्ध का तथा लक्ष्मण द्वारा अच्छी
 सहायता प्राप्त होने का आभास यहीं से कुशल कवि ने सीता
 जी के मुख से दिला दिया:—

“ विपति माँझ नारिये ” = “ नारिये माँझ विपति ”
 शब्द भी आगे की लीला का आभास दे रहे हैं । केकई द्वारा
 वनगमन की विपत्ति पड़ी, आगे सूर्यणखा और सीता द्वारा
 विपत्तियाँ आवेंगी । विपत्ति से उद्धार पाने के उद्योग में
 नारियाँ ही (सुरसा, सिंहिका लंका इत्यादि) बाधा डालेंगी ।

आगे स्त्री ही द्वारा विपत्ति हटैगी अर्थात् कपियों द्वारा मंदोदरी के केशकर्षण को देखकर रावण का यज्ञ भंग होगा जिससे रावण मारा जायगा और विपत्ति हटैगी। फिर सीतात्याग द्वारा पुनः विपत्ति आवैगी, इत्यादि कथाओं का आभास इन तीन शब्दों में भरा है।

‘ हैमलेट ’ और शकुंतला में इसी प्रकार के आभासों के लिये शेक्सपियर और कालिदास की कुशलता की प्रशंसा करते हुए अनेक अंगरेजी आलोचकों की जवान घिस गई। वे लोग देखें कि हिन्दी कवियों में भी वही योग्यता मौजूद है और बहुत अधिक मात्रा में है। हमारे चतुर साहित्यकारों ने इस कुशलता के प्रदर्शन के लिये अलंकार शास्त्र में ‘मुद्रा’ नामक अलंकार की रचना आदि काल से कर रखी है।

अलंकार—मुद्रा।

मूल—(लक्ष्मण)—सुप्रिया वा शशिकला छंद—वन मह विकट विविधि दुख सुनिये। गिरि गहवर मग अगमहि सुनिये ॥ कहूँ अहि हरि कहूँ निशिचर चरहि। कहूँ देव-दहन दुसह दुख शर हीं ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—गहवर=अर्थकार मय गूढ स्थान। हरि=सिंह वाघ, वंदर। देव-दहन=दावाग्नि। शर=मूँज, सरकंडा, सरपत (मुँज वन)।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी सीता जी को वनदुःख बतलाते हैं)
हे वैदेही! सुनिये, वन में विविधि प्रकार के कठिन दुःख

* (राम-लक्ष्मण संवाद)

मूल—(राम)—विशेषकछंद—धाम रहीं तुम लक्ष्मण पर
की सेवा करो। मातन के सुनि ताव ! सुदोरख दुख ह्यो।
आय भरत्य कहां घों करँ विय भाव गुनो। जो दुख देखें तो
लै डर गीं यह सीख सुनो ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—सेव=सेवा। भाव=भाव। गुनो=स्व ध्यान से
सनसो। लै डर गीं=गीं से उसे हृदय पर लेयो (सहन करयो)।

भावार्थ—(राम जी लक्ष्मण प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण !

(हम तो बनको जाते हैं) तुम पर पर रहो, और राज

(दशरथ) की सेवा करो (वे इस समय बीमार हैं और

दोनों लघु माता भी यहां मौजूद नहीं हैं। और हे ताव !

सुनो, माताओं के दीर्घ दुःख भी हरना (किसी माता को

दुःख न होने पावे)। न जाने भरत आकर (और राज्य

पाकर) क्या करें। पर जो कुछ वे करें उसका भाव स्व

गौर से समझते जाना। जो माताओं को, राज्यको वा तुम को

दुःख दें, तो भी तुम गीं से (सुपचाप) सह लेना; यही हमारी

शिक्षा है—इसे ध्यान में रखना।

नोट—श्री राम जी लक्ष्मण के स्व स्वभाव को स्व जानते

। अतः यही स्वभाव को स्व जानते

न हो। तिस से भाइयों में वै

लक्ष्मण)
देसी

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर । तपनताप=सूर्यकी धूप।
पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख । वीर=भाई ।

नोट—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग दोष स्पष्ट है ।

भावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख
प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी,
यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ । वायु
के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूंगी, यहां तक कि
अगर बड़वानल की ज्वालाओं में रहना पड़े तो रह सकूंगी ।
अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण
ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह
लूंगी । सूर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह
लूंगी, पर हे वीर ! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा
जा सकता ।

नोट—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द बड़ा मजा दे रहे
हैं । भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर
की भौजाई हूँ । मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो,
अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा,
अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा है । मैं इतने कष्ट सहन
कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है ?

अलंकार—अनुप्रास, परिकर ।

होते हैं। कहीं पर्वत हैं, कहीं समावृत्त गहरे गहरे हैं : यह चलना अगम ही है, इस बातको आप. मली भांति समझ लीजिये। कहीं सपे, कहीं सिंह, कहीं निश्चिचर. (चेर) विचरते हैं, कहीं श्वाग्नि लगती है, कहीं मुंजवन. में दुस्र दुःख सहने पड़ते हैं (वसे पार करते समय शरपत्र से शरीर चिरजाता है)।

नोट— इस में भी हरि (बंदर) और निश्चिचर शब्दों से भाव्य पटनाओं का आभास मिलता है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

मूल—(सीता)—दंडकछंद—केशोदास नांद भूख व्यास उपहास प्राप्त, दुख को निवास चिप मुखह गहरी परै। वायु को बहन दिन दावा को बहन, पड़ी बाइयाअनल ज्वालजाल में रही परै ॥ जीरन जनमजात जोरं जुर घोर परि—पूरा प्रगट परिताप क्यों कही परै ॥ सहिहो, तपने ताप पर के प्रताप रघुवीर को विरह धीर। मो सों न सह्यो परै ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—उपहास=निन्दामय हँसी (अन्य जनों की)। बहन=शोक। दिन=प्रतिदिन। दहन=जलन (ताप)। जीरन जोर जुर घोर=अत्यंत जोरदार और भयंकर ज्वर। जनम जात जोर जुर घोर=भारजावन रहने वाला फठिन और भयंकरज्वर। ('जोरे और जुर' का अन्वय 'जीरन' और 'जनमजात' दोनों शब्दों के साथ करना चाहिये)। परि पूरन... परै=बिनका पूरा दुःख किसी तरह कहा नहीं जा

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर । तपनताप=सूर्यकी धूप ।
पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख । वीर=भाई ।

श्लोक—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग दोष स्पष्ट है ।

भावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख, प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी, यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ । वायु के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूंगी, यहां तक कि अगर वड़वानल की ज्वालों में रहना पड़े तो रह सकूंगी । अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह लूंगी । सूर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह लूंगी, पर हे वीर ! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा जा सकता ।

श्लोक—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द बड़ा मजा दे रहे हैं । भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर की भौजाई हूँ । मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो, अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा, अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा है । मैं इतने कष्ट सहन कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है ?

प्रत्यय—अनुप्रास, परिकर ।

होते हैं। कहीं पर्वत हैं, कहीं समावृत्त गहरे गड्ढे हैं, जहाँ चटना अगम ही है, इस बातको आप भली भाँति समझ लीजिये। कहीं सर्प, कहीं सिंह, कहीं निशिचर, (चोर) बिचरते हैं, कहीं दावाग्नि लगती है, कहीं मुंजवन में दुःख सहने पड़ते हैं (उसे पार करते समय शरपत्र से शरीर चिरजाता है)।

नोट—इस में भी हरि (बंदर) और निशिचर शब्दों से भावों घटनाओं का आभास मिलता है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

मूल—(साँता)—इँडकलेंद—केशोदास नाँद भूख प्यास उपहास प्राप्त, दुख को निघास विष मुखहू गह्यौ परै। बाहु को बहन दिन दावा को बहन, बड़ी यादवा अनल ज्वालज्वाल में रह्यौ परै ॥ जीरन जनमजात जोर जुर घोर परि—पूरन प्रगट् परिताप क्यों कह्यौ परै ॥ सहिह्यौ तपन ताप पर के प्रताप रघुवीर को विरह वीर ! मो सों न सख्यौ परै ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—उपहास=निन्दामय हँसी (अन्य जनों की)।

बहन=शोका। दिन=प्रतिदिन। बहन=जलन (ताप)।

जीरन जोर जुर घोर=अत्यंत जोरदार और भयंकर ज्वर।

जनम जात जोर जुर घोर=आजीवन रहने वाला कठिन और भयंकरज्वर।

(‘जोरें और जुर’ का अन्वय ‘जीरन’ और ‘जनमजात’ दोनों शब्दों के साथ करना चाहिये)। परि

पूरन...परै=जिनका पूरा दुःख किसी तरह कहा नहीं जा

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर। तपनताप=सूर्यकी धूप।
पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख। वीर=भाई।

नोट—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग
दोष स्पष्ट है।

भावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख
प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी,
यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ। वायु
के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूंगी, यहां तक कि
अगर वड़वानल की ज्वालाओं में रहना पड़े तो रह सकूंगी।
अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण
ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह
लूंगी। सूर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह
लूंगी, पर हे वीर! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा
जा सकता।

नोट—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द बड़ा मजा दे रहे
हैं। भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर
की भौजाई हूँ। मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो,
अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा,
अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा है। मैं इतने कष्ट सहन
कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है?

अलंकार—अनुप्रास, परिकर।

x (राम-लक्ष्मण संवाद)

✓ मूल—(राम)—विशेषकलंद—धाम रहो तुम लक्ष्मण राज की सेव करो । मातन के सुनि तात । सुदीरघ दुःख हरौ ॥ आय भरत्य कहां धौ करै जिय भाय गुनौ । जो दुख देयँ तो लै उर गौ यह सीख सुनौ ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—सेव=सेवा । भाय=भाव । गुनौ=स्व ध्यान से समझो । लै उर गौ=गौ से उसे हृदय पर लेलो (सहन करलो) ।

भावार्थ—(राम जी लक्ष्मण प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण ! (हम तो बनको जाते हैं) तुम घर पर रहो, और राजा (दशरथ) की सेवा करो (वे इस समय बीमार हैं और दोनों लघु भ्राता भी यहां मौजूद नहीं हैं । और हे तात ! सुनो, माताओं के दीर्घ दुःख भी हरना (किसी माता को दुःख न होने पावे) । न जाने भरत आकर (और राज्य पाकर) क्या करें । पर जो कुछ वे करें उसका भाव स्व गौर से समझते जाना । जो माताओं को, राज्यको वा तुम को दुःख दें, तो भी तुम गौ से (चुपचाप) सह लेना; यही हमारी शिक्षा है—इसे ध्यान में रखना ।

नोट—श्री राम जी लक्ष्मण के उग्र स्वभाव को स्व जानते थे । अतः यही उचित शिक्षा दी, जिस से, भाइयों में वैर विरोध न हो । x

✓ मूल—(लक्ष्मण)—दौदा—शासन भेटौं जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ । ऐसी कैसे बुझिये, घट सेचक बन नाथ ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—शासन=आज्ञा । जीवन=जीवित रहना । बूझिये= उचित है ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि) बहुत अच्छा ! आप की आज्ञा कैसे भंग की जा सकती है (आपकी आज्ञा से घर पर रह जाता हूँ) । पर जीना वा न जीना यह तो मेरा हाथ है, क्योंकि यह कैसे उचित समझा जा सकता है कि सेवक तो घर में रह कर आनन्द छड़वै और मालिक वन वन भटकता फिरै । भाव यह कि यदि आप आज्ञा के चल मुझे घर पर ही रखेंगे तो मैं आत्महत्या करूँगा । और अपने प्राणों को आप की सेवा में रखूँगा ।

(वन-गमन वर्णन)

श्रुत्य—द्रुत विलंबितछन्द—विपिन मारुत राम विराजहीं ।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं ॥ विविधि श्रीफल सिद्ध मनो
फलो । सकल साधन सिद्धिहि ले चलो ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—श्री=शोभा । फल=तपस्या के फल । साधन=संयम, नियम, ध्यानादि सिद्धजनों के कर्तव्य । सिद्धि=ष्ट सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, और वशित्व) ।

भावार्थ—राम जी वन मार्ग में जाते हुए शोभा पा रहे हैं, साथ में सुखप्रद पत्नी (सीता) और भाई लक्ष्मण भी शोभा दे रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है मानो कोई सिद्धपुरुष (महा-

त्मा योगी) अपनी तपस्या में सफल होकर शोभा पा रहा है और अपने सब साधनों और प्राप्त सिद्धियों को समेट कर अपने घर जा रहा है (राम जी सिद्ध हैं, लक्ष्मण साधन हैं, सीताजी एकत्रीभूत सिद्धियाँ हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—शेहा—राम चलत सब पुर चल्यो ब्रह्म तँह सहित उछाया
मनो भगीरथ पथ चल्यो, भागीरथी प्रवाह ॥ ३० ॥

भावार्थ—राम के चलते ही जहाँ तहाँ से समस्त पुरवासी जन भी बड़े उत्साह से नगर छोड़ कर उनके पीछे चले । मानो राजा भगीरथ के पीछे गंगा की धारा बह चली हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—चंचला छंद—रामचंद्र धाम तें चले सुने जयै नृपाल ।
वात को कहै सुनै सु छे गये महा विहाल ॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यौ मिल्यो जुलोक जाय ।
गेह धरि ज्यो चकोर चंद्रमे मिलै उड़ाय ॥३१॥

शब्दार्थ—नृपाल=राजा दशरथ । विहाल=व्याकुल । ब्रह्म-
रंध्र=मस्तक पर का तालु, ब्रह्मांड, नवमद्वार । जुलोक (जुलोक)
=सुरलोक, वैकुण्ठ । गेह=पिंजरा ।

भावार्थ—जब राजा ने सुना कि रामजी घर से बन की प्रस्थान कर गये, तब इतने व्याकुल हो गये कि उन्हें किसी से कुछ बात करने की शक्ति न रही । तदनंतर ब्रह्मांड फोड़कर उनके प्राण को इस प्रकार चले गये जैसे

पिंजरा तोड़कर चकोर उड़कर चंद्रमा से जा मिलता है ।

अलंकार—उदाहरण ।

ल—चित्रपदाच्छद—रूपहि देखत मोहें । ईश ! कही नर को हूँ
संभ्रम चित्त अरुहैं । रामहिँ यों सब वूँहें ॥३२॥

भावार्थ—(पंथ में जाते हुए) राम लक्ष्मण सीता को देख कर
लोग-अपेक्षित होते हैं । मन में विचार करते हैं कि हे भगवान् !
ये कौन नर हैं (कहां के रहने वाले और किसके पुत्र हैं) ।
जब कुछ निश्चय नहीं कर सकते और चित्त भारी भ्रम में
उलझ जाता है, तब सब लोग रामजी से यों पूछते हैं ।

ल—चचरीछंद—कौन हो कित तें चले कित जात हो कहि
कामजू । कौनकी दुहिता वह कहि कौन की यह वामजू ॥
एक गाँव रहो, कि साजन मित्र वंधु बखानिये । देश के पर
देश के किधौ पंथ की पहचानिये ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—दुहिता=पुत्री । वहू=पुत्रवधू । वाम=स्त्री ।
साजन=आदरणीय सजन । किधौ पंथ-की पहिचानिये=या तुम
में सिर्फ रास्ते ही भर की जान पहचान है, पंथ के साथीही
हो । तात्पर्य यह कि तुम तीनों एक गाँव के हो, एक कुल
के हो, या केवल मार्ग ही के साथी संगी हो ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—सन्देह ।

मूल—दंडकछंद—किधौ यह राज पुत्री वर ही परी है किधौ,
उपदि बन्धो है यह सोभा अभिरत हो । किधौ रति रति-

नाथ जस साथ केसोदास, जात तपोवन, शिव बैर सुमिरत
हौ ॥ किधौ मुनि साप हत किधौ प्रह्लादोपरत, किधौ सिद्धि-
युत सिद्ध परम बिरत हौ । किधौ कोऊ ठग हौ उगौरी लीये
किधौ तुम, हरि हर थी हौ सिवा चाहत फिरत हौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—परही=बलही से, बलपूर्वक, जबरदस्ती। बरी है=
विवाही है। उपदि=अपनी इच्छा से। उपदि बन्यो है यहि=
इस राजकुमारीने अपनी इच्छा से चुनकर तुम्हें बरण किया है।
सोभा अभिरत हो=ऐसी सुन्दरता से युक्त हो, तुम ऐसे सुन्दर
हो। जस=सुयश। बिरत=वैराग्य युक्त। श्री=लक्ष्मी।
सिवा=(शिव) पार्वती। चाहत फिरत हौ=खोजते फिरते हो।

भावार्थ—(लोग पूछते हैं) या तो तुमने इस राज पुत्री को
जबरदस्ती विवाहा है, या इसने ही मातापिता की इच्छाके
विरुद्ध केवल अपनी इच्छा से तुमको बरा है (इसीसे डर कर
बन बन छिपे फिरते हो), तुम ऐसे सुन्दर हो (कि क्या
कहें)। केशवदास कहते हैं कि या तो तुम तीनों रति, काम
और (संसार विजयी होनेका) सुयश हो—(लक्ष्मण जी
सुयश रूप हैं) और शिव का बैर स्मरण करके बन में एकान्त
वास करने जा रहे हो। या किसी मुनि द्वारा शापित, ब्याक्ति
हो, या किसी ब्राह्मण का कुछ दोष करने में मन लगाये हो
(अतः रूप बदले बन में फिर रहे हो, घात पाकर हत्या
करोगे) या सिद्धि प्राप्त कोई परम विरागी सिद्ध पुरुष हो,
या तुम दोनों पुरुष (राम और लक्ष्मण) विष्णु और शिव

हो जिनके साथ लक्ष्मी तो हैं पर (खोई हुई) पार्वती को खोजते फिरते हो (बतलाओ तुम हो कौन ?) ।

अलंकार—संदेह ।

पुल—मत्तमातंगलीलाकरण झंडक छंद—

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसै देहधारी मनो ।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंश के ह मनो, भांग भार, मनो ।
देवराजा लिये देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये ।
पक्ष दू संधि संध्या संधी ह मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्षही मोहिये ।

शब्दार्थ—मंदाकिनी=आकाश गंगा । सौदामिनी=विजली ।

रूरे=सुंदर । भागीरथी=गंगा । भास्ती=सरस्वती (नदी) ।
हंसजा=सूर्यकन्या जमुना । पक्षदू=दोनों पक्ष (कृष्ण और
शुक्ल) । संधी है=परस्पर संधित हैं (एकदूसरे से जुड़ी हुई
एकत्र हैं) । लक्षिये=लखते हैं, देखते हैं । स्वच्छ=अति
निर्मल । प्रत्यक्षही=इन्हीं चर्म चक्षुओं से (देखते हैं) ।

नोट—राम, सीता, लक्ष्मण तीनों आगे पीछे मार्ग में चल रहे हैं । वन के कारण तीनों की स्थिति अति संनिकट की है, अर्थात् सटे हुए से चलते हैं—इसी स्थिति पर केशव जी उत्प्रेक्षा द्वारा अपनी प्रतिभा प्रगट करते हैं—कहते हैं कि—

भावार्थ—(राम, सीता लक्ष्मण मार्गमें चलते हुए कैसे मालूम होते हैं) मानो मेघ, आकाशगंगा और विजली हो देहधारी होकर सुंदर रूप से शोभा दे रहे हैं (राम-मेघ हैं,

जानकी लाकाशगंगा हैं और लक्ष्मण बिजली हैं) या यों कहे कि अनेक गंगा, सरस्वती और यमुना के अंशों के देहधारी-रूप हैं । जो इनके दर्शन कर रहे हैं उनका बड़ा सौभाग्य है (इनके दर्शन अनेक तीर्थराज प्रयाग के समान पुण्य-प्रद है) अथवा मानो इन्द्र महाराज इन्द्राणी और अपने पुत्र जयंत को लिये हुए भूलोक की शोभा बढ़ा रहे हैं । या मानो दूनो पक्षों की संधि (पूर्णमासी या अमावस) की तीनों संध्यायें सात्त्विक होकर एकत्र हो गई हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ही अत्यन्त निर्मल देखकर मन मोहित होता है ।

सूचना—सामवेदी संध्या में यह प्रमाण है कि—प्रातः संध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत तथा सायं-संध्या का रंग श्याम है । इस छक्ति से यह भी लक्षित होता है कि केशवदास जी सामवेदी संध्या ही किया करते थे (अर्थात् सामवेदी सनौडिया ब्राह्मण थे) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—अनंगशेखर दंडक—तयाग नीरखीन ते सनीर होत केशोवास पुंडरीक झुंड और मंडलीन मंडर्ही । तमाळ बाहुरी समेत धुवि धुवि के रहे, ते बाग फूडि फूडि के समुल सुळ खंडही ॥ चित्त चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसिनी सुकादि सारिका लवे पुदं । जहीं जहीं विराम छेव रामजू तही तही अनेक मांतिके अनेक भोग भाग सों वदं ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—पुंडरीक=कमल । वल्ली=लता । मूल=दुःख ।
विराम लेत=ठहर कर सुस्ताते हैं, ठहरते हैं ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—मोदक छंद—घाम को राम समीप महा-बल । सीतहि
लागत है अति सीतल ॥ ज्यों घन संयुत दामिनि के तन ।
होत है पूषन के कर भूषन ॥ ३७ ॥

मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहि सीतल लागति ॥
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि । दैजु चलै तेहि ते सुख दायनि ॥

शब्दार्थ—पूषन के कर=सूर्य की किरणें । प्यौ=पति ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—दोहा—प्रतिपुर औ प्रति ग्राम की प्रति नगरन की नारि
सीता जू को देखि कै वरनत है सुखकारि ॥

शब्दार्थ—भावार्थ—सरल है ।

(सीता-सुख वर्णन)

मूल—दंडक—वासों मृग अंक कहैं तोसों मृगनैनी सब, वा
सुधाधर तुहं सुधाधर मानिये । वह द्विजराज तेरे द्विजराजि
राजै वह, कलानिधि तुहं कलाकलित वखानिये ॥ रत्नाकर
हैं दोऊ केशव प्रकाशकर, अंबर विलास कुचलय
मानिये । वाके अति सीत कर तुहं सीता सीतकर, चन्द्रमा स
चन्द्रमुखी सब जग जानिये ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—सुधाधर=सुधा है अधर में जिसके ।
दाँतों की पंक्ति । कलाकलित=चौंसठ कलाओं को

वाला । रत्नाकर=(१) समुद्र (२) रत्नसमूह, रत्न जटित आभूषण । अंबर विलास=(१) आकाश में है विलास जिसका (२) जो सुन्दर वस्त्रों से शोभित है । कुवलय हितु=(१) कुमोदिनी का हितैषी (२) पृथ्वीमण्डल (कु=पृथ्वी+वलय=मंडल) की हितैषिणी । सीतकर=(१) टंडों किरणें (२) संताप हरिणी (दर्शकों को ध्यानददायिनी) ।

भाषार्थ—(ग्रामवासिनी स्त्रियों में से एक सीता प्रति कहती हैं) हे चंद्रमुखी सीता सब जग निवासी तुझे चंद्रमा समान जानते हैं (जो शुण चंद्रमा में हैं, वे सब तुझ में भी हैं अर्थात्) उस चंद्रमा को लोग मृगांक कहते हैं तो तुझे भी सब लोग मृगनैती कहते हैं; वह सुधाधर (अमृतधारी), है तो तू भी ओठों में सुधा रखती है; वह द्विजराज है तो तेरे भी दंतपंक (द्विज+राजी) शोभित है; वह कलानिधि (कला फला करके बढ़नेवाला) है तो तू भी चौंसठ कलाओं की जानकारी से युक्त है; तुम दोनों रत्नाकर के प्रकाशक हो—अर्थात् चंद्रमा समुद्र को हुलसाता है और तुझ से रत्नजटित आभूषण प्रकाशित होते हैं—चंद्रमा आकाश में विलास करता है और तेरे शरीर पर वस्त्र विलास करते हैं; चंद्रमा कुमोदिनी का हितु है तो तू भूमण्डल (कु+वलय) की हितैषिणी है (पृथ्वी की कन्या होने से); उस चंद्रमा की किरणें शीतल है तो तूभी दर्शकों के संताप (त्रिताप)

हरं कर उनके चित्त को शांति रूपी शीतलता देनेवाली है—अतः
तू चंद्रमा से किसी गुण में कम नहीं है ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

श्रुल—दंडक—कलित कलंक केतु, केतु अरि, सेत गात,
भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो । पून्यो ई को पूरन
वे आन दिन ऊनो ऊनो छन छन छान होत छीलर के जल
सो ॥ चंद्र सो जो वरनत रामचंद्र की दोहाई सोई मति मंद
कवि केशव मुसल सो । सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल
अति सीता जू फो मुख सखि केवल कमल सो ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—कलित कलंक केतु=कलंक केतु से युक्त (भारी
कलंकी) । केतु अरि=केतु है शत्रु जिसका—(राहु और केतु
को एक ही मान कर केशव ने ऐसा लिखा) । ऊनो=अपूर्ण ।
छीलर=वथला जलाशय (थोड़ा जल और अधिक कीचड़
वाला जलाशय) । मुसल=मूसल (मूर्ख) ।

भावार्थ—(दूसरी स्त्री उसके मतको खंडन करती हुई अपनी
वक्ति लड़ाती है) हे सखी ! सीता जी का मुख केवल कमल
सा है चंद्रमा के समान नहीं, क्योंकि चंद्रमा तो भारी और
प्रसिद्ध कलंकी है, केतु उसका शत्रु है, वह श्वेतांग भी है
(कुष्ठ रोगी है) भोग योग के अयोग्य है, रोगी है (क्षय
रोग युक्त है) शुक्ल पक्ष में भी केवल पूर्णिमा को ही पूर्ण
होता है, अन्य दिनों तो अपूर्ण ही रहता है, कृष्ण पक्ष में

तो उबले जलाशय के जल की भांति प्रति दिन क्षीण ही होता जाता है। सीता जू के मुख को जो कवि चंद्रमा सा कहता है वह भविष्यद पक्षा मूसरचंद्र है (महा मूर्ख है)। सीता जू का मुख तो इन दोषों से रहित तथा सौन्दर्य, सुगंध, सुक्रीमलता और स्वच्छता से युक्त है, अतः केवल कमल के समान है चंद्रसम नहीं।

अलंकार—प्रतीप और उपमा।

मूल—दंडक—एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जूको, एकै कहैं चंद्र सम आनंद को कंद री। होय जो कमल तो रयनि में न सकुचै री, चंद्र जो तो वासर न होत दुति मंद री ॥ वासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र, मुख वासर इ रजनि विराजै जगवंद री। देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद्र, वाते मुख मुछै सघी कमलै न चंद्र री ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—आनंद को कंद=आनन्द बरसानेवाला बादल। रयनि=(रजनी) रात्रि। जगवंद=जगत भर से वंदनीय। अनदेखेई कमल चंद्र=बात यह है कि कमल और चंद्रमा अपने गुणों और प्रभाव की बदाँलत ही अच्छे समझे जाते हैं। इनका वास्तविक रूप देखने में सुन्दर नहीं।

भावार्थ—(तीसरी स्त्री दोनों का मत संहन करके कहती है) कोई कहता है सीता जी का मुख अमल कमल सा है, कोई कहता है चंद्र सा आनन्ददायक है। पर मैं कहती हूँ कि

यदि कमल सा होता तो रात्रि को संकुचित न होता ? यदि चंद्र सा होता तो दिन में उसकी आभा मंद न पड़ती ? कमल तो दिनमेंही प्रफुल्लित रहता है, चंद्रमा रात्रि ही में प्रकाशित रहता है, पर यह मुख तो रातिदिन समस्त जगत से सम्मान पाने योग्य है। कमल और चंद्रमा देखने में तो सुन्दर नहीं हैं (केवल उनके गुण सुनने में भले जँचते हैं) पर यह मुख टफटकी बांधकर देखने में ही भाता है (सौन्दर्य से तृप्ति नहीं होती)। इस कारण मेरी सम्मति तो यह है कि इस मुख के समान यही मुख है, न तो कमल ही इसके समान है न चंद्रमा ही इसके तुल्य है।

अलंकार—प्रतीप और अनन्वयोपमा।

मूल—दोहा—सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमल मुख, भलो बन्धो है साथ ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—भलो=अत्यन्त अद्भुत, बड़ा ही विलक्षण।

भावार्थ—हे सखी सीता के नेत्र चकोर हैं, रघुनाथजी रवि-वंशी हैं (चकोर और रवि से विरोध होने पर भी सीता के नेत्र चकोर उनपर आसक्त हैं यह आश्चर्य है) और राम जी चंद्र हैं (पर उसे देख कर) सीता का मुख-कमल प्रसन्न रहता है (चंद्र और कमल का विरोध होने पर भी) यह बड़ा ही अद्भुत संयोग है।

अलंकार—विरोधाभास।

श्रीरामचन्द्रिका

सूचना—इस दोहे में अद्भुत रस छलक रहा है। केशव के पांडित्य और प्रतिभावान होने का अच्छा नमूना है।

उ०—

याग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह पिलोकि भली।
घटिका एक बैठत हैं सुख पाय यिछाय तहाँ कुस काँस थली ॥
मम को धम धीपति दूर करें सिय को, शुभ थाकल अंचल सौं।
धम तेऊ हरेँ तिनको कहि केशव चंचल चारु हगंचल सौं ॥४४॥

शब्दार्थ—तरंगिनी=नदी। धीपति=श्रीराम जी (पवि की हैसियत से)। थाकल अंचल सौं=बल्कलवस्त्र से हवा कर के। तेऊ=श्री सीता जी। तिनको=श्री राम जी का। हगंचल=कटाक्ष, बांकी चितवन।

भावार्थ—(रास्ते में चलते हुए) कहीं किसी बाग में वा तड़ाग अथवा नदी के किनारे तमाल की अच्छी घनी छाया देख कर कुशासन विछाकर एक घड़ी आनन्दपूर्वक बैठते हैं। सीता जी की थकावट बल्कलवस्त्र की हवा करके श्री राम जी दूर करते हैं, और श्री सीता जी बांकी चितवन से डेर कर श्री रामजी की थकावट दूर करती हैं।

अलंकार—अन्योन्य।

मूल—सोरठा—धी रणुवर के इष्ट, अश्रुबलित सीता-नयन।
सांची करी अहृष्ट, झूठी उपमा मीन की ॥४५॥

शब्दार्थ—इष्ट=अति प्रिय। अश्रुबलित=आनंदाश्रु युक्त।

अष्टम—होनहार ।

भावार्थ—श्री रामजी का इतना प्रेम देख जानकी के नेत्रों में आनन्द के आँसू आजाते हैं । वे अश्रुयुक्त नेत्र श्री राम जी को अतिप्यारे मालूम होते हैं । कवि कहता है कि संयोग वश इस होनहारने (सीता सहित राम का वनगमन) नेत्रों की मीन की उपमा जो झूठी ही दी जाती है (क्योंकि मीन तो पानी में रहती है, नेत्र सदैव पानी में नहीं रहते, अतः उपमा झूठ थी सो) वह इस समय सत्य हो गई अर्थात् अश्रुयुक्त सीता के नेत्र ठीक मीन से जान पड़ते हैं ।

मूल—दोहा—मारग यो रघुनाथ जू, दुख सुख सब ही देत ।
चित्रकूट परबत गये, सोदर सिया समेत ॥४६॥

भावार्थ—दर्शनों से सब लोगों को सुख तथा पुनः निज वियोग से दुख देते हुए श्री रघुनाथ जी लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे ।

नवम प्रकाश समाप्त ।

दसवाँ प्रकाश

—:#:—

दो०—यहि प्रकाश दशमें कथा आवन भरत स्वधाम ।
राज मरन अरु तासु को बसिवो नंदीग्राम ॥

मूल—दोषक—

भानि भरत पुरी अवलोकी । थापर जंगम जीव ससोकी ॥
भाट नहीं विरदावलि साजें । कुंजर गाँज न कुंदुभि बाजें ॥१॥
राज समा न विलोकिय कोऊ । सोक गहे तब सोदर दोऊ ॥
मंदिर मातु विलोकि अकेली । ज्यों विन वृक्ष विराजति बेली ॥२॥

भावार्थ—दाँनों छंदों का सरल ही है । विन वृक्षकी बेडि=
बिना आश्रय की बेडि अर्थात् भूमि पर पतित, जमीन पर
पड़ी हुई ।

मूल—तोटक—

तय दीरघ देखि प्रनाम कियो । उडि कै वन कंठ लगाय लियो ॥
न पियो जल संभ्रम भूलि रहे । पुनि मातु सों धेन भरत कहे ॥
शब्दार्थ—दीरघदेखि=जमीन पर लंबायमान पड़ी हुई (शोक
से नृ-पतिता) । न पियो जल=कैकयी का दिया हुआ
जलपान न किया । संभ्रम=भारी अम ।

मूल—दुर्मिल—

मातु कहाँ नृप ? तात गये सुरलोकहि; क्यो ? सुत शोक लये ।
सुत कौनसु ? राम, कहाँ हैं भवे ? वन लच्छन सीय समेत गये ॥

यन काज कहाँ कहि? केवल सो सुख; तोको कहा सुख यामे भये?
तुमको प्रभुता, धिक तोंकों कहा अपराध बिना सिगरेई ह्यो॥३॥

शब्दार्थ—प्रभुता=राज्याधिकार । सिगरे=(सकल) सब ।
ह्ये=(हने) मारे ।

अलंकार—प्रश्नोत्तर ।

मूल—दोहा—भर्ता सुत विद्वेषिनी सबही को दुखदाइ ।
यह कहि देखे भरत तव कौसल्या के पाइ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विद्वेषिनी=बहुत अधिक द्वेष रखने वाली । देखे,
....पाइ=तव भरतजी कौशल्याजी के निकट जा उनके पैर
छुप, प्रणाम किया ।

मूल—तोटकछंद—

तव पायन जाय भरत परे । उन भेंटि उठाय के अंक भरे ।
सिरसंधि विलोकि बलाइ लई । सुत तो विन या विपरीति भई

शब्दार्थ—सिरसंधि=प्राचीन काल में वात्सल्य प्रेम प्रकाशन
की यह रीति थी—(अब भी छोटे बालकों के सिर पर लोग
हाथ फेरते हैं) । बलाइ लई=बलिहारी गई (बच्चों को
चुवन करते हुये स्त्रियां ऐसा कहती हैं) ।

मूल—(भरत)—तारकछंद—

सुनुमातु भई यहवात अनैसी । जुकरी सुत भर्तु विनाशिनि जैसी
यहवात भई अरु जानत जाके । द्विज दोष परे सिगरे सिर ताके ॥

शब्दार्थ—अनैसी=(अनइष्ट) बहुत बुरी । भर्तु=(भर्ता) पति ।
द्विजदोष=ब्राह्मणहत्यादि पाप । सिगरे=सब ।

भावार्थ—(भरत जी कौशल्याजी का इतमीनान कराने को शपथ खाते हैं) हे माता ! सुनो, यह घटना जैसी पुत्र और पति-घातिनी कैकेयी ने की है, बहुत ही बुरी हुई । जिसके जानते हुए यह बात हुई हो उसके सिर ब्रह्महत्यादि पाप पड़े (अर्थात् यदि मेरे जानते यह बात हुई हो तो मुझे ब्रह्महत्या का पाप लगे) ।

मूल—(भरत)—

x जिनके रघुनाथ विरोध यत्न जू । मठधारिण के तिन पाप प्रसैः
रसराम रस्यो मन नाहिन जाको । रणमें नित होय पराजय ताको ।

शब्दार्थ—रसराम=रामप्रेम । रस्यो=रस से मीमांसा । पराजय=हार

भावार्थ—हे माता ! जिनके हृदय में रघुनाथ जी का विरोध बसता हो, उनको मठधारियों का पाप लगे । जिनका मन रामप्रेम से आर्द्र न हो, ईश्वर करे रण में नित्य उनकी हार हो ।

सूचना—गो०तुलसीदासजी ने भी निजकृत रामचरितमानस में ऐसी शपथें खिलाई हैं, (देखिये रामचरितमानस अयोध्या-काण्ड दोहा ६६ से दोहा ६८ तक का प्रसंग) ।

मूल—(कौशल्या)—

x जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयानोअति साधुचरित्र तुम्हें हम, जाने
सबको सयकाल सदा सुखदाइ।जिय जानति हौं सुतज्यो रघुपति

शब्दार्थ—सौंह=शपथ । साधुचरित्र=अति शुभ चरित्रवाले ।

रघुपति=श्री रामजी ।

मूल—चंचरीछंद—हाय हाय जहाँ तहा सब ह्वे रही सिगरी पुरी।
धाम धामनि सुन्दरी प्रगटीं सबै जे रहीं डुरी ॥
लै गये नृपनाथ को सब लोग श्री सरजू तयी।
राजपति समेत पुचनि विप्रलाप गटी रटी ॥१०॥

शब्दार्थ—विप्रलाप=प्रलाप, अनर्थ वचन। गटी=समूह।
रटी=कह कह कर।

भावार्थ—समस्त अयोध्यापुरी में जहाँ देखो वहीं हाय हाय
शब्द हो रहा है, जो स्त्रियाँ कभी अंतःपुर के बाहर न
निकली थीं वे भी इस समय राजा दशरथ की अर्थी के
दर्शनों के निमित्त बाहर निकल आईं। महाराजा दशरथ के
मृत शरीर को सरयू नदी के तटपर सब लोग ले गये, राज-
पत्नियों और राजपुत्रों ने बहुत कुछ प्रलाप किया।

मूल—सोमराजीछंद—करी अग्नि अर्चा। मिटी प्रेत चर्चा ॥
सबै राजधानी। भई दीन-वानी ॥११॥

भावार्थ—(भरतजी ने) राजा दशरथ की दाह-क्रिया की,
प्रेत कृत्य समाप्त हुए, और समस्त राजधानी के लोग अत्यन्त
करुण स्वर से रोये।

मूल—कुमारललिताछंद—क्रिया भरत कानी। वियोग रसमीनी ॥
सजी गति नबीनी। सुखदपद लीनी ॥१२॥

शब्दार्थ—भरत जी ने पिता की मृतकक्रिया की। यद्यपि
वियोग से अति दुखी हुए, तथापि ऐसी विधि से प्रेत क्रिया
की कि राजा दशरथ की नवीन गति होगई अर्थात् वे सुख

पद में लीन होगये (मुक्ति को प्राप्त हुए) ।

मूल—तोटकछंद—

पंहिरे बकला सुजटा धरिकै । निज पायन पंथ चले अरिकै ।
तरि गंग गये गुह संग लिये । चित्रकूट विलोकत छांड़ि दिये १३

भावार्थ—तदनंतर भरत जी ने बल्कल वस्त्र पहन, जटा धारण कर, हठ पूर्वक पैदल ही रामजी के पास को चले । गंगा वतर कर गुह (केवट) को साथ लिये आगे बढ़े । जब चित्रकूट पर्वत को देखा तब उसे भी छोड़ कर अति जातुरता बश आगे बढ़े ।

मूल—सुन्दरीछंद—

सब सारस हंस भये खग खेचर यारिद ज्यो यहु वारन गात्रे ।
वनके नर वानर किन्नर पालक लै मृग ज्यो मृगनायक मात्रे ॥
तजि सिद्ध समाधिने केशव दीरघ दौरि दरीन में आसन साजो
सब भूतल भूधर हाले अचानक धार भरतथ के दुंदुभि यात्रे १४

शब्दार्थ—खेचर भये=आकाश गामी हुए (उड़ चले) ।

वारन=हाथी । मृगनायक=सिंह । दरीन=कंदरायें । भूधर=पहाड़ ।

भावार्थ—जब भरत जी चित्रकूट के निकटवाले जंगल में अपनी सेना तथा समाज सहित पहुँचे, तब सेना के नगाड़ों के बजने तथा हाथियों के गरजन के शब्द से भयभीत होकर वन के नर, वानर, किन्नर, अपने अपने बालकों को लेकर ऐसे भागे जैसे कोई सिंह मृगे को उठाकर ले भागता है, उस वनके तपस्वी लोगों ने भी तपस्या में विनम्र आया हुआ ज्ञान शीघ्रतापूर्वक

दौड़ कर गिरि कंदराओं के भीतर जाकर आसन लगाये और
एकाएक पृथ्वी और पहाड़ हिलगये ।

मूल—दोहा-रामचंद्र लक्ष्मण सहित, सोभित सतिा संग ।
केशव दास सहास उठि, चढ़े धरनिघर खंग ॥१५॥

शब्दार्थ—सहास=हँसते हुए । धरनिघरसंग=पहाड़ की चोटी ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—(लक्ष्मण)—मोहनछंद—

देखहु भरत चमू सजि आये । जानि अबल हमको उठि घाये ॥
हींसत हय बहु वारन गाजे । दारघ जहँ तहँ डुडुभि वाजे ॥१६॥

शब्दार्थ—चमू=सेना । अबल=निबल, सहाय वा सेना
रहित । हींसत=हिनहिनाते हैं ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—तारकछंद—गजराजन ऊपर पाखर सोहँ । अति सुंदर
सीस-सिरी मत्त मोहँ ॥ मनि धुँधुर घंटन के रव बाँज ।
तड़ितायुत मानहुँ बारिद गाजँ ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—पाखर=झूले । सीस-सिरी=(शीश-श्री) मस्तक
की शोभा । तड़िता=विजली ।

भावार्थ—बड़े बड़े हाथियों पर झूले सोहती हैं, उनके मस्तक
की शोभा (आभूषणों अथवा चित्र-विचित्र रंगों से) अति सुंदर
है जिसे देखकर मन मोहता है । मणि जटित धुँधुर सहित
घंटों का शोर हो रहा है, मानो विजली समेत बादल गरज रहे हों ।

सूचना—मेरी सम्मति में हाथियों का ऐसा वर्णन इस स्थल

पर अनुचित जँचता है ।

दूत—मत्तगयंदछंद—

• युद्ध को आज्ञा भरतथ चंद्रे भुनि कुंडुभिकी वसहँ दिसप
प्रात चली चतुरंग चमू धरनी सु न कंसथ कैसहु जाई ॥
यो सयके तनत्राननि में क्षलकी अरुनोदय की अरुनाई
अंतर ते अनु रंजन को रजपूतन की रज याहर आई ॥

शब्दार्थ—तनत्रान=कवच, जिरहबखतर । अरुनोदय=सूर्य
अरुनाइ=ललाई । अंतर=अंतस्तल (मन) । रजपूत=क्ष
रज=रजपूती, रजोगुणमयक्षत्रीपन ।

भावार्थ—(लक्ष्मणजी विचारते हैं कि भरत ने आज्ञा
के हेतु चढ़ाई की है, नगरों की ध्वनि दशो दिशाओं में
गई है । प्रातःकाल (सूर्योदय के समय) भरत की चतुराई
सेना चली आ रही है, (केशव कहते हैं कि) उसका
किसी प्रकार नहीं करते बनता । समस्त सैनिकों के (लोहे
कवचों पर सूर्योदय समय की लालिमा इस प्रकार झलकती
मानो क्षात्रपर्ण से (वीरता से) वरजित करने के हेतु क्षा
त्र का क्षत्रियत्वं अंतःकरण से निकलकर ऊपर ही आगया

सूचना—केशव कृत भरतसेना का यह वर्णन कुछ अनु
सा जँचता है, पर आगे चलकर लक्ष्मण जी के चित्त में
रस का आविर्भाव प्रदर्शित करना कविका लक्ष्य है, अतः
उद्दिष्टों का वर्णन रसकी परिपूर्णता हेतु जरूरी है । ..

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तोटकछंद—

उड़ि कै धूर धूरि अकाश चली । बहुचंचल वाजि खुरीन दली ।
भुव धालति जानि अकालहि ये । जनु थंभित ठौरनि ठौर किये ॥

शब्दार्थ—घर=(घरा से) पृथ्वी से । वाजि=घोड़े ।
खुरीन=सुमों से । अकालहि=वेवक, असमय (प्रलय से पहले
ही) । थंभित किये=स्तंभ लगा दिये हैं ।

भावार्थ—(कवि वर्णन करता है) बहुत से चंचल घोड़ों के
सुमों से पिसकर पृथ्वी से धूल उड़कर आकाश को जारही है ।
वे धूल के घौरहर ऐसे जान पड़ते हैं मानों पृथ्वी को असमय
ही डोलते डगमगाते देख ब्रह्मा ने खंभे गाड़ दिये हैं (जिससे
पृथ्वी के हिलने डुलने से सृष्टि का विनाश न हो) ।

नोट—पृथ्वी का हिलना पीछे छंद १४ में कह आये हैं ।

**मूल—तारकछंद—रण राजकुमार अरुद्धहिगे जू । अति सन्मुख
घायन जूझहिगे जू ॥ जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने । तिनछे
चढ़िये कह सारग कीने ॥ २० ॥**

शब्दार्थ—अरुद्धहिगे=(अवरुद्धहिगे) एक दूसरे को रोकेंगे,
भिड़ेंगे । जूझहिगे=जखमी होंगे, जूझ जायेंगे, मरेंगे ।

भावार्थ—(अथवा) भूमि ने यह समझ कर कि यहाँ क्षत्री
गण भिड़कर युद्ध करेंगे और वीरता पूर्वक रणमें सन्मुख मार
करते हुए प्राण त्यागेंगे, अतः ठौर ठौर पर उनके स्वर्गारोहण
के लिये नवीन सड़कें तैयार कर दी हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा

मूल—तोटकछंद—

राहि पूरि विमानन व्योमधली । तिनको जनु टारन भूमि छाबी
पारिपूरि अकासहिं धूरि रही । सु गयो मिटि सूर्यकास सही ॥

मूल—दोहा—अपने कुल को कलह क्यों देखाई रवि भगवंत ।
यहै जानि अन्तर कियो मानो मही अनंत ॥ २२ ॥

भावार्थ—अपने वंशधरों का पारस्परिक कलह सूर्य भगवान्
कैसे देख सकेंगे, इसी विचार से मानो पृथ्वी ने सूर्य के मुख-
पर धूल का पर्दा डाल दिया है (बड़ी अनोखी उक्ति है) ।

मूल—तोटकछंद—

बहु तामहँ दीह पताक लसैं । जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं ।
रसना किधौ काल कराल घनी । किधौ मांघु नचे चहुँ ओर बनी ॥

भावार्थ—उस उड़ती हुई धूल में अनेक पताकाएँ फहराती
हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो धूम में अग्नि की ज्वालाएँ
हैं । अथवा कराल काल की अनेक जीमें हैं, या अनेक रूप
धारण किये हुए मृत्यु ही जहाँ तहाँ घूम रही है ।

सूचना—ऐसे समय में इस वर्णन में ये उत्प्रेक्षाएँ हमें समु-
चित नहीं जँचती । न जाने केशव ने इन्हें क्यों यहाँ स्थान
दिया है ? इसमें केवल सूखा पांडित्य प्रदर्शन ही प्रधान है ।
कैसा समय और कैसा प्रसङ्ग है, इसका ध्यान कुछ भी नहीं ।
वास्तविक युद्धस्थल में ऐसा वर्णन उपयुक्त हो सकता था ।

मूल—दोहा—देखि भरत की चल ध्वजा धूरिन में मुख देति ।
युद्ध जुरन को मनुहुँ प्रति-योधन योलै लेति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—प्रतियोधा=प्रतिभट, शत्रु, विरोधी दल का योद्धा ।

भावार्थ—उड़ती हुई धूल में भरत के दल की चंचल ध्वजाएँ
ऐसी शोभा दे रही हैं मानो युद्ध करने के लिये शत्रुपक्ष के
योद्धाओं को इशारा दे दे कर बुला रही हैं

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

नोट—इस दोहे के तीसरे चरण में यतिभंग दूषण है ।

मूल—(लक्ष्मण)—दंडक छंद—मारिझारों अनुज समेत
यहि खेत आजु मेदि पारों दीरघ बचन निज गुर को । सीता-
नाथ सीता साथ बैठे देखि छत्र तर, यहि सुख सोखों सोक
सथ ही के उर को ॥ कैसीदास सविलास बीसविसे वास होय
कैकेयी के अंग अंग सोक पुत्रजुर को । रघुनाथ जू को साज-
सकल छिड़ा लेउ भरताहि आजु राजु देउ प्रेतपुर को ॥२५॥

शब्दार्थ—अनुज=शत्रुघ्न । मेदि पारों=मेटदंगा । सविलास=
विलासपूर्वक अर्थात् भलीभांति । बीस विसे=निश्चय । पुत्र-
जुर=पुत्रमरण का संताप । प्रेतपुर=यमपुर । रघुनाथ जू को
साज=सारा राज साज (हाथी, घोड़े, शंख, निशान, सेना,
कोश इत्यादि राजवैभव जो इस समय भरत के पास है) ।

अलंकार—प्रतिज्ञा वद्ध स्वभावोक्ति (देखो अलंकार मंजूषा
पृष्ठ २१८) ।

मूल—दोहा—एक राज महँ प्रगट जहँ है प्रभु केशवदास ।
तहां बसत है रैन दिन शूरतिवत विनास ॥ २६ ॥

मूल—कुसुम विचित्रा छंद—
तव सब सेना वाहे थल राखी ॥ मुनि जन लीन्हें संग अभिलाषी ॥

रघुपति के चरनन सिर नाये । उन हँसि कै गहि कंठ लगाये ॥
शब्दार्थ—अभिलाषी=अभिलषित, अपने पसंद के, चुने हुए
(यह शब्द 'मुनि जन' का विशेषण है) ।

मूल—(भरत) दोधक छंद—

मातु सबै मिलियं कहँ आई । ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई ॥
लक्ष्मण स्यों उठिके रघुराई । पावन जाय परे दंड भाई ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—सुरभी=गाय । लवाई=सच प्रसूता, जो अभी
बच्चा जनी हो । स्यों=सहित ।

मूल—दोधक—

मातनि कंठ उठाय लगाये । प्राण मनो मृत देहनि पाये ।
आय मिली तब सीय समागी । देवर सासुनके पगलागी ॥ २९ ॥

मूल—तोमर—तब पूछियो रघुराई । सुख है पिता तन माई ।
तब पुत्र को मुख जोई । क्रम ते उठी सब रोई ॥ ३० ॥

मूल—दोधकछंद—

आँसुन सों सब पर्वत घोये । जंगम को जड़ जीवहु रोये ।
सिद्ध बधू सिगरी सुनि आई । राजबधू सयई समुझाई ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—जंगम=चर जीव । जड़=अचर जीव (वृक्ष,
पाषाण आदि) सिद्ध बधू=सिद्धि प्राप्त तपस्त्रियों की स्त्रियां ।
राजबधू=दशरथ की स्त्रियां ।

मूल—मोहन छंद—धरि चित्त धीर । नये गंग तीर ।
शुचि है शरीर । पितु तर्पि नीर ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—गंग=मंदाकिनी नदी जो चित्रकूट में है । तर्पि
नीर=जल देकर, तर्पण करके, तिलांजलि देकर ।

मूल—(भरत) तारक छंद— ॐ

घर को चलिये अब थी रघुराईजुन हौं तुम राज सदा सुखदाई
यह बात कही जल सौ गल भीनो उठि सोदर पाँच परे तव तीनो

शब्दार्थ—हौं=मैं । राज=राजा । जलसौं गल भीनो= कंठ-
गद्गद् हो आया, आगे बात न कर सके (यथा-गद्गद् कंठ
न कछु कहि जाई—तुलसी) ।

मूल—(श्रीराम)—दोधक छंद— ॐ

राज दियो हमको वन रूरो । राज दियो तुम को परिपूरो ॥
सो हम हूँ तुम हूँ मिलि कीजै । वाप को बोल न नेकहु छीजै ॥३४॥

भावार्थ—राजा ने हमको वन का वासदिया है, और तुम को
पूरा राज्य दिया है । अतः तुम को और हमको मिल कर
वही बात करना चाहिये जिससे पिता जी के वचन भंग न हों ।

मूल—दोहा—राजा को अरु वाप को वचन न मेटे कोइ ।

जो न मानिये भरत तो मारे को फल होइ ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—फल=पाप ।

मूल—(भरत)—स्वागता छंद— ॐ

मद्यपान रत्न तिय जित होई । सन्निपातयुत वातुल जोई ।
देखि देखि जिन को सब भागै । तासु बैन हनि पाप न लागै ॥३४॥

शब्दार्थ—तियजित=छीके वशीभूत । वातुल=बहुत व्यर्थ
बकवादी । देखि देखि.....भागै=महापापी, घृणित । तासु बैन
हनि=उसका वचन मेटने में ।

भावार्थ—(अशुभकी नीतिवचन कहने में) जो अशुभकी जो

स्त्री के वशीभूत हो (स्त्री की सम्मति पर चलता हो), सन्निपात में प्रलय करवा हो, व्यर्थ बकवादी हो और जो महापाप हो, उसका बचन भेटने में पाप नहीं लगता—(चाहे वह राजा हो चाहे बाप हो) ।

मूल—

ॐ

ईश ईश जगदीश, यखान्यो । वेदवाक्यबल ते पहिचान्यो ।
ताहि मोटि हठ के रजिहौं जी । गंग तीर तन को ताजिहौं ती ३७

शब्दार्थ—ईश=महादेव । ईश=विष्णु । जगदीश=ब्रह्मा ।

रजिहौं=मुझसे राज काज कराओगे । गंग=मंदाकिनी नदी जो चित्रकूट में है जिसे सब लोग मंदाकिनी गंगा कहते हैं ।

भावार्थ—(भरत जी कहते हैं) जो नीति मैंने ऊपर कही है, वह मेरी गढ़ी नीति नहीं है, वह ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के बचन हैं । विद्या बलसे मैंने उन वाक्यों को पहचाना है (वेद में ऐसाही लिखा है और मैंने पढ़ा है)—

महादेव, ब्रह्मा तथा विष्णु के बचनों से बढ़कर तो राजा और बाप के बचन माने नहीं जा सकते अतः यदि आप उन त्रिदेवों के बचन भेट कर हठपूर्वक मुझसे राज्य करावेंगे, तो मैं यहीं चित्रकूट में मंदाकिनी गंगा के किनारे शरीर त्याग कर दूंगा ।

मूल—दोहा—मौन गही यह बात कहि छौंढो सबै विकल्प ।

भरत जाय मागीरथी तीर कन्यो संकल्प ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—विकल्प=विचार । मागीरथी=(गंगा) यहाँ—मंदाकिनी गंगा ।

भावार्थ—यह बात कह कर भरत जी चुप हो रहे, अन्य सब विचार (अर्थात् और अधिक तर्क वितर्क करने का विचार) छोड़ दिया और मंदाकिनी गंगा के तीर जाकर शरीर त्यागने का संकल्प किया ।

मूल—इन्द्रवज्रा— ⊗

भागीरथी रूप अनूप कारी । चंद्राननी लोचन कंज धारी ।
बाणी बखानी सुख तत्व सोध्यो । रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो॥

शब्दार्थ—सुखतत्व=सुखका मूल सिद्धान्त (राम रजाय मानना) जिससे सब को सुख होगा ।

भावार्थ—अनुपम रूप धारण करनेवाली मंदाकिनी गंगा जीने चंद्रवदनी और कमल लोचनी स्त्री का रूप धारण कर सुख-तत्व की बात शोधकर (संक्षेप में) रामानुज भरत को समझा कर प्रबोध कर दिया, जिससे सब को सुखहो ।

मूल—(गंगा) उपेन्द्रवज्रा छंद— ⊗

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो । अनेकधा वेदन गीत गायो ॥
तिन्हें न रामानुज वंधु जानो । सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानो॥०

भावार्थ—जिनका अंत (सच्चा भेद) अनेक ब्रह्माओं ने नहीं पाया, जिनकी प्रशंसा वेद ने अनेक प्रकार से की है, उनको (रामको) हे रामानुज भरत ! तुम अपना भाई न समझो (बड़ा भाई ही समझ कर ही जो तुम्हें ऐसा मोहजनित संकोच हो रहा है उसे छोड़ो) हे बुद्धिमान भरत ! सुनो, इस समय तुम उन्हें (भाई न मानकर) केवल ब्रह्म ही मानो ।

हो), सानि
मेहापान
चाहे व
मेहापान
कनी मरी
कहते हैं।
ऊपर की
तुम्हें
हैं)।
रामा को
उत्त विद्वे
में वही
हो।
विकला
॥ ३१॥
पहले

मूल—निजेच्छया भूतल देहधारी । अधर्म संहारक धर्म चारी ।
चले दशमीवहि मारिये को । तपी मती केवल पारिये को ॥४१६॥

शब्दार्थ—निजेच्छया=अपनी इच्छासे । पारियेको=पालन करने को ।

भावार्थ—उन्होंने अपनी इच्छासे पृथ्वीमें नर शरीर धारण किया है । वे अधर्मके संहारक और धर्मका प्रचार करनेवाले हैं । वे रावण को मारने के लिये और रावणको मारकर तपस्वियों तथा व्रतधारियों का पालन करने के लिये वन को जा रहे हैं (उनके इस कार्य में तुम अपनी हठद्वारा विघ्न न डालो) ।

मूल—

उठो हठी होहु न, काज काँजै । कहँ कछु राम सो मानि लीजै ।
अदोष तेरी सुत मातु साँदै । सो कौन, माया इनकी न मोहै ॥४१७॥

भावार्थ—उठो, हठ मत करो बल्कि उनका काम करो । (उनके काम में सहायक हो) जो कुछ राम जी कहें उसे मान लो । हे पुत्र ! तेरी माता बिल्कुल निर्दोष है (इसका संकोच न करो) । ऐसा कौन है जो इनकी माया के फेर में न पड़ा हो, अर्थात् इन्हीं की माया से तुम्हारी माता ने यह दोष (वनवास दिलवाने का) अपने सिर लिया है, नहीं तो वह तो नितान्त निर्दोष है ।

मूल—दोहा—यह कहि कै भागीरथी, केशव भई अदृष्ट ।

भरत कह्यौ तब राम सो, देहु पादुका इष्ट ॥४१८॥

शब्दार्थ—अदृष्ट भई=अन्तर्धान हो गई । इष्ट=पूज्यदेव

उन सब पुण्य कर्मों के फल हमने राम दर्शन के रूपमें आज पा लिया (धन्य है हमारा भाग्य) ।

मूल—वंशस्थविलम् छंद—अनेक धा पूजन अत्रि जू कन्यो ।
कपालु है श्रीरघुनाथ जू धन्यो ।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

भावार्थ—अत्रि जी ने श्री राम जी का अनेक प्रकार से सत्कार किया (आदरपूर्वक फल मूलादि दिये) और श्रीराम जी ने कृपापूर्वक सब बस्तुएँ ग्रहण कीं (स्वीकार कीं) । तब (भोजनादि से निवृत्त होकर) सुन्दर बुद्धिवाली और सर्व सुखों की देनेवाली (लक्ष्मी स्वरूपा) सीता महर्षि अत्रि जी की पतिव्रता स्त्री अनुसूया के पास गई ।

मूल—दोहा—पतिव्रतन की देवता अनुसूया शुभगाथ ।
सीता जू अचलोकियो जरा सखी के साथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—देवता=देवी (पूजनीया) । शुभगाथ=प्रशंसनीय आचरणवाली ।

सूचना—केशव ने 'देवता' शब्द इसी पुस्तकमें कई जगह खीलिग में लिखा है ।

भावार्थ—(निकट जाने पर) पतिव्रता स्त्रियों से समादरणीया, देवीस्वरूपा, प्रशंसनीय आचरणवाली श्री अनुसूया जी को सीता जी ने जरावस्थारूपी सखी के साथ देखा अर्थात्

को शांति
है नास
को कृपा
जाने कि
जाकर
अपना
जाने
जाए
जगह
॥ २ ॥
कते हैं
को
ईश्वर

ग्यारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—एकादशे प्रकाश में पंचवटी को वास ।

सुर्पणाखा के रूप को रघुपति करिहैं नास ॥

मूल—रथोद्धता छंद—

चित्रकूट तय राम जू तज्यो । जाय यज्ञथल अत्रि को भज्यो ।
राम लक्ष्मण समेत देखियो । आपनो सफल जन्म लेखियो ॥१॥

शब्दार्थ—भज्यो=प्राप्त हुए, पहुँचे ।

भावार्थ—(भरत के चले जाने पर) तब रामजीने चित्र-
कूट पर्वत का निवास छोड़ आगे को बढ़े और जाकर अत्रि
के आश्रम में पहुँचे । जब अत्रिऋषि ने श्री रामलक्ष्मण को
अपने आश्रम में आया हुआ देखा तब अपना जन्म जीवन
सफल माना ।

अलंकार—हेतु (प्रथम) ।

मूल—(अत्रि) चन्द्रवर्त्म छंद—ज्ञान दान तप जाप जो
करियो । सोधि सोधि उर मांझ जु धरियो । जोग जाग हम
जा छगि गहियो । रामचन्द्र सय को फल लहियो ॥ २ ॥

भावार्थ—(अत्रि जी अपने भान्य की संराहना करते हैं)
स्नान दान, जप तप जो कुछ हमने किया, बढ़े परिश्रम और
शुद्धता से जिसे हमने हृदय में धारण किया है (ईश्वर का
ध्यान किया है), जोग और यज्ञादि जिसके लिये किये हैं,

उन सब पुण्य कर्मों के फल हमने राम दर्शन के रूपमें आज पा लिया (धन्य है हमारा भाग्य) ।

मूल—वंशस्थविलम्बं—अनेक धा पूजन अत्रि जु कन्यो ।
 कृपालु है श्रीरघुनाथ जु धन्यो ।
 पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ ।
 सुवृद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

भावार्थ—अत्रि जी ने श्री राम जी का अनेक प्रकार से सत्कार किया (आदरपूर्वक फल मूलादि दिये) और श्रीराम जी ने कृपापूर्वक सब वस्तुएँ ग्रहण कीं (स्वीकार कीं) । तब (भोजनादि से निवृत्त होकर) सुन्दर युद्धिवाली और सर्व सुखों की देनेवाली (लक्ष्मी स्वरूपा) सीता महर्षि अत्रि जी की पतिव्रता स्त्री अनुसूया के पास गई ।

मूल—दोहा—पतिव्रतन की देवता, अनुसूया शुभगाथ ।
 सीता जु अचलोकियो जरा सखी के साथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—देवता=देवी (पूजनीया) । शुभगाथ=प्रशंसनीय आचरणवाली ।

सूचना—केशव ने 'देवता' शब्द इसी पुस्तकमें कई जगह खीलिग में लिखा है ।

भावार्थ—(निकट जाने पर) पतिव्रता स्त्रियों से समादरणीया, देवीस्वरूपा, प्रशंसनीय आचरणवाली श्री अनुसूया जी को सीता जी ने जरावस्थारूपी सखी के साथ देखा अर्थात् अत्यंत जरावस्था में देखा ।

को बात
 नास
 को भजे
 लेखियो
 ने कि
 नाथ
 जा
 जगह
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥
 ॥ १७ ॥
 ॥ १८ ॥
 ॥ १९ ॥
 ॥ २० ॥
 ॥ २१ ॥
 ॥ २२ ॥
 ॥ २३ ॥
 ॥ २४ ॥
 ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥
 ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥
 ॥ २९ ॥
 ॥ ३० ॥

मूल—चवपैया छंद (३० मात्रा का १०, ८, १२ पर विराम)—
 सिर सेत विराजै, कीरति राजै, जनु केशव तपवल की ।
 तनु बलित पलित जनु, सकल वासना, निकरि गई थल थल की ।
 कांपति सुभ प्रीवाँ, सब अंग सीवाँ, देखत चित्त भुलाई ।
 जनु अपने मन प्रति, यह उपदेशति, या जग में कहु नाहीं ॥५॥

शब्दार्थ—बलित पलित=झुर्रियां पड़ी हुई । प्रीवाँ=गर्दन ।
 सीवाँ=सीमा, हृद (सौन्दर्य की सीमा) ।

भावार्थ—सिर के सब बाल सफेद हो गये हैं, मानो तपस्या की कीर्ति सिर पर विराज रही है, सारे शरीर में झुर्रियां पड़ी हुई हैं (जरावस्था के कारण त्वचा सिकुड़ गई है) मानो प्रति अंग की वासनाएं निकल गई हैं (और उनका स्थान खाली पड़ा है) । उनकी सुन्दर गर्दन कंपायमान है (जो गर्दन पहले युवावस्था में सुन्दरता के सब अंगों की सीमा थी अर्थात् अत्यन्त सुन्दर थी)—उस कंप को देख कर देखने वाले का चित्त भूल में पड़जाता है (कि यह क्या ?)—यह गर्दन का हिलना ऐसा जान पड़ता है मानो अनुत्पत्ता जी अपने मन को यह उपदेश देती हैं कि इस जग में कुछ सार नहीं है—(जरावस्था में सिर इस तरह हिलने लगता है जैसे 'नाही' करने में हिलाया जाता है—इसी से ऐसी उत्प्रेक्षा की गई) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—प्रमिताक्षरा छंद—

हरुवाइ जाय सिय पाँय परी । ऋषिनाथि संधिसिर गोद धरी ।
बहु अंगराग अंग अंग रये । बहु भांति ताहि उपदेश दये ॥६॥

शब्दार्थ—हरुवाइ=जल्दी से, शीघ्रता युक्त । संधि सिर=सिर
संधकर (आशीर्वाद देने की प्राचीन चाल थी) । अंगराग=
महावर, मेंहदी, सिंदूर, अर्गजा, केशर, कस्तूरी चंदनादि
के लेप जो भिन्न २ अंगों में लगाये जाते हैं । प्राचीन काल में
सौभाग्यवती स्त्री का सम्मान सिंगार करके ही किया जाता था
अब भी कौंछ डाल कर सौभाग्यवती स्त्री का सम्मान किया
जाता है । बहु अंगराग अंग अंग रये=अनेक प्रकार के अंग-
रागों को लगा कर अनुसूया जी ने जानकी जी का सिंगार
रखकर उनका सम्मान किया ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—अग्निनी छंद—राम आगे चले मध्य सीता चली ।
बंधु पाछे भये सोम सोमै भली । देखि देही सबै कोटिधा कै
भनो । जीव जीवेश के बीच माया मनो ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—देही=देहधारी जन । कोटिधाकै=अनेकप्रकार से ।
भनो=वर्णन किया । जीवेश=ईश्वर, ब्रह्म ।

भावार्थ—अग्नि के आश्रम को छोड़ जब आगे चले तब श्री-
राम जी आगे हुए, बीचमें जानकी जी हुईं और पीछे लक्ष्मण
जी हुए । इन तीनो पथिकों की बड़ी ही सुन्दर शोभा हुई,
जिसे देख कर सब मनुष्यों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया ।

केशव कहते हैं कि मुझे तो ऐसा जान पड़ा मानो ईश और जीव (दोनों) बीच में माया को किये हुए सफर कर रहे हों ।

सूचना—यहां पर केशव को अनेक उपमायें देना चाहिये था सो चूक गये हैं ।

गो० तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है ।

आगे राम लखनपुनि पाछे । मुनिवर बेध बने अति आछे ।
उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—मालतीछन्द—

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो । नृप तनया मयभीत लेखियो ।
तव रघुनाथ बाण कै हयो । निज निरवाण पंथ को ठयो ॥८॥

शब्दार्थ—नृप तनया=सीता । हयो=हन्यो, मारा । निज...
ठयो=उसके लिये अपने निर्वाण पद का मार्ग तैयार कर दिया
अर्थात् उसे मुक्ति दी । बाण कै हयो=बाण करके मार, बाण से मारा ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—श्लोका—रघुनायक सायक धरे, सकल लोक सिर मौर ।
गये छपा करि, भक्ति यस ऋषि अगस्त के ठौर ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—सिरमौर=शिरोमणि । ठौर=स्थान, आश्रम ।

मूल—वसंत तिलका—धीरान लक्ष्मण धगस्त्य सनारि देख्यो ।

स्वाहा समेत शुभ पायक रूप लेख्यो ॥

साष्टांग क्षिप्र अभिचंदन जाच कीन्हो ।

सानन्द आशिष अद्रोप कपीश दीन्हो ॥१०॥

शब्दार्थ—सनारि=स्त्रीसहित (अगस्त्यकी स्त्री का नाम 'लोपामुद्रा' था)। स्वाहा=अग्नि की स्त्री का नाम। साष्टांग= आठो अंगों को पृथ्वी से छुवाते हुए (दोनों हाथ, ललाट और नाक, पैर की दोनों गांठें और पैर के दोनों अंगूठे)।

भावार्थ—श्री राम लक्ष्मण ने आश्रम में जाकर सर्वांक अगस्त्य जी के दर्शन किये और उस युगल जोड़ी को स्वाहा और अग्नि देव के समान समझा। शीघ्रतापूर्वक निकट जाकर साष्टांग दंडवत की और ऋषिवर ने आनंदित होकर सब प्रकार के आशीर्वाद दिये।

मूल—वैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे। सीता समेत रघुनाथ सर्वंधु पूजे। जाके निमित्त हम यज्ञ यज्ञ्यो सु पायो। ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जु वेद गायो ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—यज्ञ यज्ञ्यो=यज्ञ किये।

भावार्थ—अगस्त्य जी ने सीता लक्ष्मण समेत श्री रघुनाथ जी को सुन्दर आसनों पर बैठा कर सादर उनका पूजन किया और अपनी समस्त अभिलाषा पूर्ण कर ली (अपने सब अर्मान पूरे कर लिये, तब कहने लगे कि) समस्त ब्रह्मांड को विभूषित करने वाला रूप जिसका वर्णन वेद करता है और जिससे मिलने के लिये हमने अनेक यज्ञ किये हैं उसे आज हमने पालिया।

मूल—(अगस्त्य)पद्मटिका छंद—

ब्रह्मादि देव जव वितय कीन। तट छीर सिंधु के परस दीन ॥

श्रीरामचन्द्रिका

तुम कही देव अवतरहु जाय । सुत हौं दसग्रथ को होय आया ।
भावार्थ—जब ब्रह्मादि देवों ने अति दीन हो क्षीर सिंधु के
 तट पर विनय की थी तब आपने कहा था कि हे देवगण तुम
 सब जाकर पृथ्वी पर अवतार लो, मैं भी आकर राजा दश-
 रथका पुत्र हूँगा ।

मूल—हम तबत मन आनन्द मानि । मग चितवत यन आग-
 मन जानि । ह्यो रहिये करिये देव काहु । मम फूलि फन्धो
 तपवृक्ष आहु ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—मग चितवत=वाट जोह रहे हैं ।

भावार्थ—हम तभी से आनंदित मन हो कर आपके बनागमन
 की वाट जोह रहे हैं । भले आये, अब वहाँ रहिये और
 देवताओं का काम कीजिये, आज तो मेरा तपवृक्ष फूल कर
 सफल होगया (तपस्या सफल हुई) ।

अलंकार—रूपक ।

मूल—(राम)—पृथ्वी छंद-

अगस्त ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनो ।

.....

.....

.....

शब्दार्थ—अगस्त=अच्छा । सुदेश=समतल, वरावर । जीमें
 सुनो=सोच कर हमको बतलाओ । सनीर=जलयुक्त । तब-
 संड मंडित=वृक्ष समूह से सुशोभित । समृद्ध शोभा धरे=
 खूब बढ़ी शोभा को धारण किये हों, खूब सुहावने हों ।

वार्थ—हे अगस्त जी, मेरी एक विनती सुनिये । सोच कर हमें एक ऐसा अच्छा सुन्दर स्थान बतलाइये जहाँ जल का सुपास हो और सुहावने वृक्ष कुंज हों, तो वहाँ हम अपने होने के लिये पत्तों की कुटी बना लें ।

ल—(अगस्त) पद्मावतीछंद—

अद्यपि जग करता, पालक हरता, परिपूरण वेदन गाये ।
नति तदपि कृपाकरि, मानुष वपुधरि, थल पूछन हमसों आये ।
मुनि सुरचर नायक, राक्षस घायक, रक्षहु मुनि जन जस लीजै ।
उभ गोदावरि तट, विशद पञ्चवट, पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै ।

वार्थ—वपु=शरीर । विशद=खूब लम्बा चौड़ा । पञ्चवट= पञ्चवट नामक वन जहाँ पर कि. पञ्चवट संज्ञक वृक्ष बहुतायत से थे ।

चना—पञ्चवट=वट, पीपल, आमला, अशोक, और बेल ।
वार्थ—(अगस्तजी कहते हैं) यद्यपि आप जगत के कर्ता, पालक और संहारक हैं, और वेदों ने तुम्हें परिपूर्ण (सर्वज्ञ) बतलाया है, तथापि बड़ी कृपा करके आप मनुष्य शरीर धारण करके (मानवभावसे) हमसे स्थान पूछने आये हैं । अतः हे सुरों के श्रेष्ठ नायक ! हे राक्षसों के संहारक ! मुनियों की रक्षा करके सुयश लीजिये, सुंदर गोदावरी नदी के तट पर खूब लंबा चौड़ा पञ्चवट नामक वन है, उसी वन में आप अपनी पर्णशाला बनाइये ।

मूल—दोहा—केशव कहें अगस्त के, पंचवटी के तीर ।
 पर्णकुटी पावन करी, रामचन्द्र रणधर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—पंचवटी के तीर=उस वन के एक तट पर (उस वन के मध्य में नहीं) ।

(पंचवटी वन-वर्णन)

मूल—विभंगोच्छ्र—

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल कुल कल ख्व, बोलें ।
 अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, यन वन प्रति नाचति डोलें ॥
 सारी शुक पंडित, गुन गन मंडित, भावनमय अरथ्य बखानें ।
 देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानें ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—कल ख्व=धीमी आवाज जो कानों को कर्कश न जान पड़े जैसे पंडुक की होती है । सारी=शारिका, मैना । भावनि मय=प्रेमभावमय । सहायक=लक्ष्मण जी । मधु=वसंती ।

भावार्थ—(उस उजाड़ दंडकारण्य के पंचवट भाग को राम जी के जाते ही यह अवस्था प्राप्त हुई) वहाँ के सुन्दर सुन्दर वृक्ष फल फूलों से परिपूर्ण होगये, कोकिल समूह मन्द मधुर शब्द से गाने लगा, मोरिनियों दाम्पत्तिस से पूर्ण हो कर वनों में नाचते फिरने लगीं, शारिका और सुग्गे बटे गुणी पंडित की भाँति (कोकिलके गान और मयूरिनियों के नाच का) भावनय अर्थ बताने लग-उनकी प्रशंसा करने लगे । उस वन के वनवासी जीवों ने श्रीराम जी को, सीता और लक्ष्मण समेत देखकर,

ते और वसंत के साथ काम देव समझा ।

उंकार—उत्प्रेक्षा ।

ॐ—(लक्ष्मण)—सवैया—

व जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी ।
 १ घटी रचि भीखु घटी हू घटी जग जीव जतीन की लूटी तूटी ।
 च ओव की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
 हुँओरन नाचति मुक्ति नटी, गुन धूरजटी वन पंचवटी ॥१८॥

वार्थ—दुपटी=चादर । घटी=घड़ी । निघटी=निश्चय
 ट गई । रचि=इच्छा । घटी हू घटी=प्रति घड़ी । तटी=
 यानस्थिति, समाधिस्थिति । निकटी=इसके निकट आते ही ।
 १ गुरु ज्ञान गटी=भारी ज्ञान की गठरी । गुन=(गुण) समान
 गुणवाला । धूरजटी=महादेव ।

वार्थ=(लक्ष्मण जी कहते हैं कि) यह पंचवटी नामक
 मन तो शिव के से गुणवाला है, (जैसे शिव के दर्शनों से
 दुःख नहीं रहता वैसे ही) यहाँ दुःख की चादर फट जा-
 ती है, और कपटी पुरुष यहाँ एक घड़ी भी नहीं रह सकता—
 यहाँ एक घड़ी मात्र रहने से कपटी पापी मनुष्य का भाव
 बदलकर धर्म की ओर झुकेगा । यहाँ के निवासी जीवों की
 तो प्रतिघड़ी मृत्यु की इच्छा घटती है (यहाँ का शान्तिमय
 सुख भागने की इच्छा से, यहाँ के निवासी मरकर मुक्ति भी
 नहीं लेना चाहते, अर्थात् मुक्ति के आनन्द से यहाँ का
 आनन्द बढ़कर है) । यहाँ के यती लोगों (तपस्वीगण) की

समाधि-अवस्था छूट जाती है (-समाधि-अवस्था में जो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, उससे भी बढ़कर यहाँ का आनन्द है) । पाप की विकट बेड़ी यहाँ फट जाती है और तुरंत ही भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है (इसके निकट आतेही पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है) और यहाँ तो मुक्ति चारों ओर नदी के समान नाच रही है, अतः यह पंचवटी वन शिव के से गुणों से युक्त है (शिव के दर्शन वा समागम से जैसी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं वैसी ही इस वन के समागम से भी होती हैं) ।

अलंकार—अनुप्रास, यमक, और ललितोपमा ।

सूचना—'हृदयराम' कवि ने भी हनुमत्नाटक में, पंचवटी के वर्णन में ऐसे ही दो तीन सवैया लिखे हैं ।

(दंडकवन-वर्णन)

मूल—हाकलिका छंद—

शोभत दंडक की रुचि यनी । मांतिन मांतिन सुन्दर घनी ॥
स्रेष बड़े नृप की अनु लसे । श्रीफल भूरि भूयो जहाँ बसे ॥१५

शब्दार्थ—दंडक—एक वनका नाम (दंडक नाम का एक राजा था । शुक्राचार्य उसके गुरु थे । गुरुपुत्री पर कुदृष्टि डालने के अपराध में शुक्र के शाप से उसके देशपर सात रात-दिन तक

• इस छंद का लक्षण—भगन तीन धरिये सुपग, पुनि लघु गुरु द्वि मिकाड ।

हाकलिका शुभ छंद, राधे केशव हरि, गुण गाव ।

बराबर गर्म बालू बरसी। देश उजड़ गया। वही देश दंडक वन कहलाता था। पंचवटी नामक वन उसी दंडक वन का एक भाग था। श्रीराम जी के चरणों के प्रताप से वह वन पुनः हरा भरा हो उठा था। रुचि=शोभा। सेव=सेवा। श्रीफल= (१)बेलकावृक्ष(२)भोग विलासप्रद वैभव।

भावार्थ—दंडक वन की शोभा पुनः वन ठन कर शोभित हुई, अनेक प्रकार की घनी सुन्दरता आ गई। वह शोभा ऐसी मालूम होती थी मानो किसी बड़े राजा की सेवा (चाकरी) हो, क्यों कि जैसे राजा की सेवा में श्रीफल (लक्ष्मीका-वैभव) भूरिभाव से बसता है वैसेही उस वन में भी श्रीफल (बेल-फलों) की अधिकता थी।

अलंकार—रूप से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—वेर भयानक सी अति लगे। अर्क समूह जहाँ जग मगे। नैनन को बहु रूपन प्रसे। श्रीहरि की जनु मूरति लसे ॥२०॥

शब्दार्थ—अति भयानक वेर=प्रलयकाल (अत्यन्त भयानक वेला)। अर्क=(१)सूर्य(२)मंदार का वृक्ष ॥२०॥ १६

भावार्थ—वह दंडक की शोभा प्रलयकालकी सी बेल जान पड़ती है, क्योंकि (जैसे प्रलयकाल में अनेक सूर्य प्रचंड तेज से जगमगायेंगे, त्योही यहाँ भी) मंदारवृक्ष समूह जगमगा रहे हैं (मंदार वृक्ष खूब फूले हुए हैं)। दंडक वन की शोभा अनेक रूप से नेत्रों को पकड़ लेती है (नेत्रों की

टकटकी लग जाती है) मानो श्री हरि की मूर्ति ही है—अर्थात् जैसे श्रीहरि की मूर्ति का सौन्दर्य देखते आँसू रुस नहीं होती वैसे ही इस वन की शोभा देख देख नेत्रों को संतुष्ट नहीं होता, जी चाहता है कि देखा ही करे ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

मूल—(राम) दोषक छंद—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो, अर्जुन भीम महामति देखो ।
हे सुभगा सम दीपति पूरी । सिंदूर औ तिलकाचलि रूरी ॥२१॥

शब्दार्थ—पांडव=पंडु राजा के पुत्र (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) प्रतिमा=मूर्ति । अर्जुन=(१) तृतीय पांडव (२) अर्जुन नामक वृक्ष जिसे ककुभ भी कहते हैं । भीम=(१) द्वितीय पांडव (२) अम्लवेत नामक वृक्ष । महामति=बुद्धिमान (लक्ष्मण प्रति संबोधन है) । सुभगा=सौभाग्यवती स्त्री । दीपति=(दीप्ति) काति, शोभा । सिंदूर=(१) सिंदूर (२) सिंदूर नामक एक वृक्ष । तिलक=(१) मकरीपत्र रचना (प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपने मुखपर चमकी वा सितारों तथा सिंदूर से अनेक चित्रयुक्त रचनाएँ करती थीं । अब केवल रामलीला में वा रामलीला में मूर्तियों का वैसा सिंगार होवा है । साधारण स्त्रियाँ केवल सिंदूर से मांग भरती हैं) (२) तिलक नामक वृक्ष । रूरी=अच्छी, शोभापद ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी की उत्प्रेक्षाएँ सुनकर श्रीराम जी

कहते हैं) हे बुद्धिमान लक्ष्मण ! देखो यह वन पांडवों की मूर्ति सा है, क्योंकि यहाँ भी अर्जुन (ककुभ.) और भीम (अन्लवेतस.) मौजूद हैं। और इस वन की शोभा किसी सौभाग्यवती स्त्री की सी भी है, क्योंकि (जैसे सौभाग्यवती स्त्री सिंदूर और चित्रित तिलकों से सजी रहती हैं, वैसेही) यहाँ भी सिंदूर और तिलक वृक्षों की अवली शोभा दे रही है।
संस्कार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

वृचना—इस छन्द में राम जी के मुख से पांडवों का वर्णन कराना उचित न था। रामके समय तक तो पांडव पैदा ही न हुए थे। इसे काव्य के दोषों में से अर्थ-दोषान्तर्गत काल-विरुद्ध दोष कहना होगा।

श्लोक—(सीता) दोगधक छंद—
 राजति है यह ज्यों कुलकन्या । धाई चिराजति है सँग धन्या ।
 केलिथली जनु श्री गिरिजा की । शोभ धरे सितकंठ प्रभाकी ॥२२॥
शब्दार्थ—कुलकन्या=किसी अच्छे कुलीन घर की कन्या ।
 धाई=(१) बच्चों का प्रालनपोषण करने वाली स्त्री, दाई;
 (२) धवई नामक झाड़ । धन्या=पूज्या, समादरणीया । केलि-
 थली=केलिका स्थान । गिरिजा=पार्वती । सितकंठ=(१)मयूर(२)
 महादेव ।

भावार्थ—(सीताजी कहती हैं) इस वन की शोभा एक कुलकन्या के समान है । जैसे कुलकन्याओं के सँग सदैव

श्रीरामचन्द्रिका

उपमातास्वना (दूध पिलानेवाली) दाई रहती है, वैसे ही यहाँ भी समादरणीय धायवृक्ष (धवा) विराजते हैं। और इस वन की शोभा मानो पार्वती जी की केलिस्यली है क्योंकि जैसे उनकी केलिस्यली में महादेवजी (शिवकंठ) रहते हैं वैसे ही यहाँ भी (शिवकंठ) मयूर रहते हैं।

अलंकार—सुप से पुष्ट उपमा और उत्प्रेक्षा।

सूचना—केशव की प्रतिभा की उचित योजना यहाँ उचित मात्रा में दिखलाई पड़ती है। इस दंडकवन वर्णन में लक्ष्मण जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे लक्ष्मण का वीरत्व और धैर्य प्रकट होता है और राम जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे शृंगार की आभा झलकती है। सीता से त्रि-योचित उत्प्रेक्षा कराई है। कारण यह है कि लक्ष्मणजी यहाँ पर अपलोक तथा राम जी सपत्नीक हैं। लक्ष्मण के चित्त में निर्मयता, धैर्य और वीरत्व होना चाहिये और राम जी के हृदय में जानकी जी के मनोरंजनार्थ शृंगार का कुछ न कुछ आभा होनी ही चाहिये नहीं तो आगे विरह वर्णन शोभा न देगा। सीता की उक्ति भी पवित्रता तथा शृंगार सूचक है क्योंकि पति का मनोरंजन करना है।

(गोदावरीवर्णन)

शूल—(राम) मनहरन

• यह केशव का निरुक्त।

जि.स.स.स.स.स.

पाप-

संहारिणी । चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी ॥ अलि कमल
ल सौगंध लीला मनोहारिणी । बहु नयन देवेश-शोभा मनो
धारिणी ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—चल=चंचल । तुंग=ऊँची । सौगंध=सुगंध ।
देवेश=इन्द्र ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हमारी पूर्ण कुटी के अति
निकट ही पाप-नाशिनी गोदावरी नदी भी है, जो चंचल और
ऊँची तरंगों की सुन्दर पंक्तियों सहित सदा बहती रहती है
तथा भौरों सहित सुगंधित कमलों की लीला से मन को हरती
है । ऐसा जान पड़ता है मानो यह गोदावरी बहुलोचन इन्द्र
की शोभा धारण किये हुए है (जैसे इन्द्र के शरीर में बहुत
से नेत्र हैं वैसे ही इस गोदावरी में भ्रमरयुक्त असंख्य कमल हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोधकलद—

रीति मनो अविवेक की थापी । साधुन की गति पावत पापी ।
कंजज की मति सी बड़भागी । श्री हरिमंदिर सौ अनुरागी ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—कंजज=ब्रह्मा । हरि-मंदिर=(१) बैकुंठ (२) समुद्र
(क्षीर समुद्र) ।

भावार्थ—इस गोदावरी ने अविवेक की सी रीति चलाई है
कि पापी भी साधुओं की गति पाता है (जो पापी स्नान
करता है वह बैकुंठ को जाता है) । यह गोदावरी बड़भागी
ब्रह्मा की मति के समान श्रीहरि-मंदिर (बैकुंठ वा समुद्र)

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

उपमातास्तना (दूध पिलानेवाली) दाई रहती है, वैसे ही यहाँ भी समादरणीय धायवृक्ष (धवा) विराजते हैं । और इस वन की शोभा मानो पार्वती जी की केलिस्यली है क्योंकि जैसे उनकी केलिस्यली में महादेवजी (शितकंठ) रहते हैं वैसे हाँ यहाँ भी (शितकंठ) नयूर रहते हैं ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा और उत्प्रेक्षा ।

सूचना—केशव की प्रतिभा की उचित योजना यहाँ उचित मात्रा में दिखलाई पड़ती है । इस दंडकवन वर्णन में लक्ष्मण जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे लक्ष्मण का वीरत्व और धैर्य प्रकट होता है और राम जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे शृंगार की आभा झलकती है । सीता से स्त्रियोचित उत्प्रेक्षा कराई है । कारण यह है कि लक्ष्मणजी यहाँ पर अपलोक तथा राम जी सपलोक हैं । लक्ष्मण के चित्त में निर्भयता, धैर्य और वीरत्व होना चाहिये और राम जी के हृदय में जानकी जी के मनोरंजनार्थ शृंगार की कुछ न कुछ आभा होनी ही चाहिये नहीं तो आगे विरह वर्णन शोभा न देगा । सीता की उक्ति भी पवित्रता तथा सिंगार सूचक है क्योंकि पति का मनोरंजन करना है ।

(गोदावरीवर्णन)

ॐ मूल—(राम) मनहरन छंद—अति निकट गोदावरी पाप

• यह केशव का निकलता हुआ छंद है ।

नारायण कृष्ण विद्या भण्डारण १९५५

संहारिणी । चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी ॥ अलि कमल
ल सौगन्ध लीला मनोहारिणी । बहु नयन देवेश-शोभा मनो
धारिणी ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—चल=चंचल । तुंग=ऊँची । सौगन्ध=सुगन्ध ।
देवेश=इन्द्र ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हमारी पण कुटी के अति
निकट ही पाप-नाशिनी गोदावरी नदी भी है, जो चंचल और
ऊँची तरंगों की सुन्दर पंक्तियों सहित सदा बहती रहती है
तथा भौरों सहित सुगन्धित कमलों की लीला से मन को हरती
है । ऐसा जान पड़ता है मानो यह गोदावरी बहुलोचन इन्द्र
की शोभा धारण किये हुए है (जैसे इन्द्र के शरीर में बहुत
से नेत्र हैं वैसे ही इस गोदावरी में भ्रमरयुक्त असंख्य कमल हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोधकलद—

रीति मनो अविवेक की थापी । साधुन की गति पावत पापी ।
कंजज की मति सी बडभागी । श्री हरिमंदिर सा अनुरागी ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—कंजज=जज्ञा । हरि-मंदिर=(१) वैकुण्ठ (२) समुद्र
(क्षीर-समुद्र) ।

भावार्थ—इस गोदावरी ने अविवेक की सी रीति चलाई है
कि पापी भी साधुओं की गति पाता है (जो पापी स्नान
करता है वह वैकुण्ठ को जाता है) । यह गोदावरी बडभागी
ब्रह्मा की मति के समान श्रीहरि-मंदिर (वैकुण्ठ वा समुद्र)

अनिपत्ये लिले नदी ॥ २४ ॥

३६०

से अनुराग रखती है—अर्थात् जैसे ब्रह्मा की मति सदैव परमः धाम वैकुण्ठ की ओर लगी रहती है वैसे ही यह गोदावरी भी सदैव समुद्रकी ओर बहा करती है वा सब को वैकुण्ठ भेजा करती है ।

अलंकार—व्याजस्तुति, उद्देशा, उपमा का संकर ।

मूल—अमृतगति छंद—

निपट पतिव्रत धरणी । मग जन को सुख करणी ॥

निगति सदां गति सुनिये । अगति महा पति गुनिये ॥२५॥

शब्दार्थ—मगजन=पंथी (जो रास्ता चलते कहीं भी गोदावरी में स्नान करते हैं वा उसका जल पीते हैं) । निगति=जिसकी गति नहीं हो सकती अर्थात् पापी । अगति=गतिरहित अर्थात् अचल जो नदी की तरह बहता नहीं ।

भावार्थ—यह गोदावरी अत्यन्त पतिव्रता है (क्योंकि सदैव निजपति समुद्र की सेवा में निरत रहती है—सदैव समुद्राभिमुख रहती है) तो भी रास्ता चलते लोगों को सुखदेवी है (पतिव्रता स्त्री यदि राहगीरों को सुखदे तो वह पतिव्रता कैसे रहेगी—यह विरोध है) । पापियों को सदा गति (सुगति, वैकुण्ठ) देती है, पर निजपति समुद्रको महा अगति में ही रखती है—(समुद्र सदैव समभाव से स्थिर ही रहता है, गतिमान नहीं होता) ।

अलंकार—विरोधामास ।



कशक-कौमुदी



जब जब धरि वीणा प्रकट पवोना बहु गुणलीना मुख गीता ।
 पिय त्रिपदि रिझावै दुखनि भजावै विविध वजावै गुन गीता ॥
 तनि मति सकारो विपिन-विशरी मुट - दुखकारी चिरि छावै ।
 तव तव जग-भरण रिपु-बुद्ध-दुपण सबको भूषण पहिणवै ॥२७॥

मूल—दोहा—विपमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति । ॐ
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—विप=जल । अमृत=अमर, देवता । जीवनहार=पानी-हरन करनेवाला, पानी पीनेवाला । अशेष=समस्त, सब ।
भावार्थ—यह सजला गोदावरी (स्नान, पान करने से) देवताओं के पाने योग्य फल (सुगति, मुक्ति) देती है । केशव कहते हैं कि यह गोदावरी अपने जीवन को हरण करने वाले का (पानी पीनेवाले का) सब दुःख हर लेती है ।

लंकार—श्लेष से पुष्ट विरोधाभास ।

(सीताजी के गान-वाद्य का प्रभाव वर्णन)

ल—त्रिमंगी छंद—

जब धरि बीना प्रकट प्रवीणा बहु गुनलीना सुख सीता ।
प्रजियहि रिझावे दुखनि भजावे विविधि वजावे गुन गीता ॥
जे मति संसारी विपिनविहारी सुख दुख कारी धरि आवैं ।
तव जगभूषण रिपुकुलदूषण सब को भूषण पहिरावैं ॥२७॥
भावार्थ—बहुगुन लीना=बहुत गुणयुक्त । सुख=सुखपूर्वक, ज भाव से । वजावे गुनगीता=राम के गुणवर्णन के गीत । के साथ गाती हैं । मति संसारी=संसारी मति (भेद वा) । विपिनविहारी=वन जंतु । दुखकारी=सिंह, व्याघ्रादि ।
त्रिकारी=मोर, कोकिलादि । जगभूषण=श्रीरामजी । रिपु-
षण=शत्रुहता । भूषण=गढ़ने ।

ध्र—जब जब बीणा लेकर प्रत्यक्ष प्रवीणा और बहुगु-

णवती सीता सुखपूर्वक बैठकर, रामजी को प्रसन्न करती हैं दुस्र को भगाती हैं और नाना प्रकार के राग बजाकर रामगुण-गान करती हैं, और जब भले बुरे सभी वनजंतु आकर उनको घेर लेते हैं, तब शत्रु संहारक श्रीरामजी उन सब जंतुओं को आमूषण पहिनाते हैं (फूलोंके अथवा जानकी जी ही के) ।

अलंकार—अनुप्रास ।

मूल—तोटक छंद—

कवरी कुसुमालि सिखान दर । गज कुंभनि हारनि शोभ भर ।
मुकुता मुक सारिक नाक रचे फाटि केहरि किङ्किणि शोभ सुभ ॥
दुलरी कल कोकिल कंठ धनी । मृग खंजन अंजन शोभ धनी ।
नृपहंसनि नूपुर शोभ भिरी । कलहंसनि कंठनि कंठसिरी ॥२४॥

शब्दार्थ—(२८) कवरी=चोटी । सिखी=भोर । केहरि=सिंह । सचे=संचित की । (२९) नृपहंस=राजहंस (यह हंस बहुत बड़ा होता है) । कलहंस=मधुर स्वरसे बोलने वाले हंस (यह मँझोले डील के होते हैं और बालहंस बहुत छोटे कद के होते हैं) । कंठसिरी=(कंठभी) कंठी ।

शब्दार्थ—फूलों की चोटी मोरों को दी, गज-कुंभों पर हारकी शोभा हुई, शुक और शारिकाकी नाकमें मोती पहनाये, सिंह की कमर पर किङ्किणी की शोभा संचित हुई (सिंह को किङ्किणी पहिनाई) ॥ २८ ॥ सुंदर दुलरी कोकिल के कंठ में पहनादी, मृग और खंजन की आँसों में अंजन की अति

सुंदर शोभा हुई, राजहंसों के पैरों से नूपुर की शोभा भिड़ गई (उनको नूपुर पहिनाये) और कलहंसों को कंठी पहना दी।

मूल—तोटक छंद—

मुख-वासनि वासित कीन तवै । तृण गुल्म लता तरु सैल सवै ॥
जलह थल ह्य यहि रीति रमै । वन जीव जहाँ तहँ संग भ्रमै ॥३०॥

शब्दार्थ—तृण=कुश, काशादि । गुल्म=छोटे पौदे ।

भावार्थ—सीता और रामजी ने अपने सुखोंकी सुगंध से तृण, पौदे, लता, वृक्ष और सब पर्वतों को सुगंध से भर दिया है । जल के निकट वा स्थल में जहाँ जहाँ वे धूमते हैं तहाँ तहाँ उनके रूप पर मोहित वनजंतु साथ साथ फिरा करते हैं (यह उनके रूप की प्रशंसा है) ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

(सर्पणखा-राम संवाद)

मूल—दोहा—सहज सुगंध शरीर की दिसि बिदिसनि अवगाहि
दृती ज्यो आई लिये केशव सर्पणखाहि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—अवगाहि=ढूँढ़कर ।

भावार्थ—रामजीके शरीरकी सहज सुगन्ध दृती की तरह सब ओर ढूँढ़ कर सर्पणखाको लिये हुए रामके निकट आई (रामकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर सर्पणखी रामके पास आई) ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—मरुटा छंद—

एक दिन रघुनायक, सीय सहायक, रतिनायक अनुहारि ।
सुम गोदावरि तट, विमल पंचवट, धेडे हुते सुरारि ॥ नाम ॥
छवि देखत ही मन, मदन मथ्यां तन, सर्पनखा तेहि काल ।
अति सुन्दर तनु फारि, कलु धीरज धरि, बोली बचन रसाल ॥२२

शब्दार्थ—सीय सहायक=सीता सहित । रति नायक=काम ।

अनुहारि=समान रूपवाले । हुते=थे । रसाल=रसीले ।

भावार्थ—एक दिन काम समान सुन्दर शरीरवाले सुरारि
रामचंद्र सीता सहित गोदावरी तट पर पंचवट नामक स्थान
बैठे हुए थे । उन की छवि देख उस समय सर्पनखा के तन
में काम की पीड़ा उत्पन्न हुई । तब वह सुन्दर रूप बना
कर, कुछ धैर्यपूर्वक उनके निकट आकर रसीले बचन बोली ।

नोट—यहां पर 'सुरारि' कहने का तात्पर्य केवल वृष्णवी
बल-वैभव सूचित करने का है । 'कलु धीरजधरि' का तात्पर्य यह
है कि स्त्रियाँ काम पीड़ित होने पर भी कुछ धैर्य रखकर
पुरुष से बात करके उसके मन में काम वासना उत्पन्न करके
तब अपना दुष्ट अभिप्राय प्रकट करती हैं । स्त्री—प्रकृति को
कितनी सूक्ष्मता से केशव ने निरीक्षण किया था, यह बात
यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देती है ।

मूल—(सर्पनखा) खबैया—

किन्नर हो गर रूप विचरुन, जळु कि स्वळु सरीरन सोही ।

चित्त चकोर के चंद्र किधौ मृगलोचन चारु विमानन रोहौ ॥
अंग धरे कि अंग हौ केशव अंगी अनेकन के मन मोहौ ।
वीर जटान धरे धनु वान लिये बनिता वन में तुम को हौ ॥३३॥

शब्दार्थ—विचच्छन=प्रवीण । जच्छ=यक्ष । मृगलोचनचारु
विमानन रोहौ=लोगों के सुन्दर नेत्ररूपी विमानों पर सवार
हौ (जो तुम्हें देखता है उसके नेत्रों में बस जाते हौ) ।
रोहौ=आरोहण करते हौ, सवार हौ जाते हौ । अनङ्ग=काम ।
अंगी=शरीरधारी ।

भावार्थ—सरल ही है ।

गोटे—प्रशंसा करके ही किसी का मनोभाव आकर्षित किया
जा सकता है । जैसा अभिप्राय हो प्रशंसा भी उसी के
अनुकूल होनी चाहिये । यहाँ सूर्यणखा का कामभाव है, अतः
रूप की प्रशंसा ही उचित थी । स्त्रियाँ सुन्दर और वीर पुरुष
को अधिक पसंद करती हैं । केशव ने नारी-हृदय के भावों
को कितनी गहराई तक देखा है, यही बात दृष्टव्य है ।

अलंकार—संदेह ।

श्रुल—(राम) मनोरमा छंद*—हम हैं दसदश महीपति के
सुत । सुभ राम सु लच्छन नामन संजुत ॥ यह सासन है
पठये नृप कानन । भुनि पा लहु घालहु राछस के गन ॥ ३४ ॥

*यह छंद प्राप्त केशवका निकला हुआ जान पड़ता है । अन्य विंगको के मनोरमा
छंद में इसका रूप नहीं मिलता । इसका लय गे ३ ४ सगय और ३ लघु अर्थात् (सं,
सं, सं, सं, लं, लं) ।

शब्दार्थ—लच्छन=लक्षण । नामन=संजुत=नामधारी ।
सासन=शासन, आज्ञा ।

नोट—शास्त्रज्ञा है कि अपनी जवान से अपना नाम न लेना चाहिये । यदि आवश्यकता ही आपड़े तो वंश परिचय तथा किसी विशेषण के साथ अपना नाम बतलावे । इसी से 'शुभ' शब्द का प्रयोग रामजी ने किया है ।

मूल—(सूर्पणखा)—नृपरावण की भगिनी गति मोकई ।
जिहकी ठकुराइत तीनहु लोकहँ ॥ सुनिजै दुखमोचन पंक-
ज लोचन । अब मोहि करौ पतिनी मनरोचन ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—ठकुराइत=राज्य, आतंक । सुनिजै=सुनिये । पति-
नी=स्त्री । मनरोचन=मनको रुचनेवाले ।

नोट—रामजी ने अपने को राजपुत्र बतलाया, वो सूर्पणखा अपने को राज-भगिनी बतलाकर विवाह को उपयुक्त ठहराती है । पंकजलोचन, मनरोचन तथा दुखमोचन इन तीन विशेषणों द्वारा वह प्रकट करती है कि तुम मुझे अति सुंदर जेंचते हो, इसलिए मेरा मन तुमपर आसक्त हो गया है और तुम्हीं को अपनी काम-पीड़ा निवारण करने के योग्य समझती हूँ, अतः पत्नीवत् स्वीकार करके मेरा दुःख निवारण करो ।

मूल—वामरछंद—

तव यौ कछी हँसि राम । अब मोहि जानि संग्राम ॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि । सम रूप यौवन लेखि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—सवाम=विवाहित (सखीक, खीसहित)।

भावार्थ—तब राम जी ने हँसकर कहा कि हे सुन्दरी मेरा तो विवाह हो चुका है—मैं सखीक हूँ, अतः तुम जाकर हमारे लघु भ्राता लक्ष्मण से मिलो, वह तुम्हारे ही समान रूप तथा यौवनवाला है (शायद वह तुम्हें विवाह ले)।

मूल—(सूर्पणखा) दोषकण्ड—

राम सहोदर मोतन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो ॥ ७
राज कुमार रमौ सँग मेरे। होहिं सबै मुख संपति तेरे ॥ ३७ ॥

मूल—(लक्ष्मण)दोषकण्ड—

वै प्रभु हौं, जन जानि सदाई। दासि भये महँ कौनि बड़ाई ॥ ७
जो भजिये प्रभु तो प्रभुताई। दासि भये उपहास सदाई ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—वै=श्रीराम जी। हौं=मैं। जन=सेवक। भजिये=सेइये। प्रभुताई=बड़पन, रानीपन। उपहास=हँसी, निन्दा (राजा की भगिनी के लिये दासी होना निन्दा की बात है)।

मूल—मल्लिकाण्ड—हास के विलास जानि। दीह मान खंड माजि ॥
सखि के चित्त चाहि। सामुहें भई सियाहि ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—विलास=खेल। मान=सम्मान, इज्जत। खंड=खंडित। सामुहें=सम्मुख।

भावार्थ—जब सूर्पणखा ने देखा कि ये दोनों भाई मेरे साथ हँसी का खेल कर रहे हैं (मजाक कर रहे हैं) तो उसने अपने सम्मान को खंडित हुआ समझकर—अपना अपमान

हुआ जान कर—भक्षण कर डालने की इच्छा से, सीता के सम्मुख हुई (सीता की ओर दौड़ी) ।

मूल—तोमरछंद—तव रामचंद्र प्रवीन । हँसि बंधु त्यों दृगदीन ।
शुनि दुष्टता सहलीन । श्रुति नासिका विनु कीन ॥४०॥

शब्दार्थ—त्यों=तरफ, ओर । दृग दीन=आँसों से कुछ संकेत किया । सहलीन=उद्यत, निगमन । श्रुति=कान ।

भावार्थ—तब चतुर रामचन्द्र ने हँस कर लक्ष्मण की ओर देख कुछ संकेत किया । लक्ष्मण ने उसे दुष्टता पर उद्यत जान कर उसके नाक-कान काट लिये ।

मूल—दोहा—शोन छिछि छूटत बदन भीम भर वेहि काल ।
मानो कृत्या कुटिल युन पावक ज्वाल कराल ॥४१॥

शब्दार्थ—शोन=श्रोनिठ, रक्त । छिछि=छाँछ । भीम=भयंकर । कृत्या=तंत्र के अनुसार पैदा की हुई भयंकर राक्षसी जो तांत्रिक के शत्रु को विनष्ट करती है ।

भावार्थ—नाक-कान काटे जाने पर उसके चेहरे पर से रक्त की छाँछें सी छूटी । इन रक्त-छाँछोंयुक्त सूर्पणखा उस समय ऐसी भयंकरी दिसलाई दी मानो कुटिल कृत्या (राक्षसी) कठिन अग्नि ज्वालाओं युक्त होकर आई हो (सूर्पणखा कृत्या सम और खून की छाँछें अग्निज्वाला सम) ।

अलंकार—व्यपदेश ।

गवारहवाँ प्रकाश समाप्त ।

बारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या द्वादशे प्रकाश खर दूषण त्रिशिरा नाश ।

सीता हरण बिलाप सु, ग्रीव मिलन हरि त्रास ॥

नोट—इस दोहे में यतिभंग दोष बहुत खटकता है ।

मूल—तोटक छंद—

गद्य सपनखा खरदूषण पै । सजि ल्याई तिन्हें जगभूषण पै । ॐ
सर एक अनेक ते दूर किये । रवि के कर ज्यों तमपुंज पिये ॥१॥

शब्दार्थ—जगभूषण=श्रीराम जी । कर=किरणें ।

भावार्थ—(तदनन्तर) सपनखा खरदूषण के पास गई और
उन्हें रणहेतु सजाकर श्रीराम के पास लिवा लाई । राम जी-
ने उन सबों को उसी प्रकार एक ही वाण से मार डाला जैसे
सूर्य की किरणें अंधकार समूह को पीजाती हैं ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—मनोरमा छंद—वृष के खरदूषण ज्यों खर दूषण । खर
दूर किये रविके कुल भूषण ॥ गदशत्रु त्रिदोष ज्यों दूर करे
घर । त्रिशिरा तिर त्यों रघुनंदन के सर ॥ २ ॥

शब्दार्थ—वृषके=वृषराशि के । खरदूषण=तृणों को नष्ट करने-
वाले (सूर्य) । रविके कुल भूषण=सूर्यकुल के मंडन (श्रीराम
जी) । गदशत्रु=वैद्य । त्रिदोष=सन्निपात ।

अन्वय—ज्यों वृष के खरदूषण खर दूर किये त्यों रविकुल

मूषण खरदूषण दूर किये ।

भावार्थ—जैसे वृषराशि के (जेठ मास के प्रखर किरण सूर्य) सूर्य तृण समूह को जला डालते हैं वैसे ही राम जी ने खर और दूषण को नाश कर दिया । जैसे वैद्यवर त्रिदोषत्र सन्निपात रोग को निज विद्याबल से दूर करता है, वैसेही राम जी के वाणों ने त्रिशिरा के सिरों को दूर कर दिया ।

अलंकार—देहरी दीपक से पुष्ट उपमा ('दूर किये' शब्द 'देहरी दीपक है) ।

मूल—दोहा—खर दूषण सों युद्ध यद्द भयो अनंत अपार ।
सहस चतुर्दश राछसन मारत लगी न धार ॥ ३ ॥

मूल—दोहा—गरि अंध दसकंध पै खर दूषणहिं जुषाय ।
सूषणया लखि मन सिया वेप मुनायो जाय ॥ ४ ॥

भावार्थ—खर दूषण को जुझाकर सूषणस्ता अज्ञानी रावण के पास गई और उसे फामी समझ कर सीता का सौन्दर्य मुनायो—(इस विचार से कि यह सौन्दर्य मुनकर उसको हर लवेगा जिससे मुझे संतोष होगा) ।

मूल—दंडक—मय की सुता धों को है, मोहनी है मोहै मर,
आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये । देह दुति दामिनी
हू, नेह काम कामिनी हू, परु लोम ऊपर पुलोमजा दिवारिये
भाग पर कमला मुहाग पर विमला हू, बानी पर बानी कंसो
दास मुखकारिये । सात दीप साठ लोक सातहु रसाक
की, तीयन के गोत सबै सीता पर धारिये ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—मय की सुता=मन्दोदरी। पुलोमजा=शची, इन्द्राणी।
विमला=ब्रह्मणी (ब्रह्मा की स्त्री)। वानी=मधुर भाषण।
वानी=(वाणी) सरस्वती।

भावार्थ—(सीता के रूप की प्रशंसा)—उसके रूप के सामने मयनन्दिनी मन्दोदरी क्या वस्तु है—अर्थात् तुच्छ है। वह मोहनी होकर मन को मोह लेती है, आज तक ऐसी रूपवती स्त्री सुनी भी न होगी, उसे प्रत्यक्ष जाकर देखो। उसकी देह-द्युति के सामने विजली और प्रेम करने में रति कुछ भी नहीं हैं। उसके एक रोम पर शची निछावर है। भागपर लक्ष्मी, सौभाग्य पर ब्रह्मणी और मधुर भाषण पर सुखप्रद सरस्वती भी निछावर हैं। कहाँ तक कहूँ सातो द्वीप, सातो लोक और सातो रसावलों की स्त्रियों के समूह उस सीता पर निछावर करने योग्य हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

नोट—छंद नं० ४ और ५ हमें उँदेलखंडसे प्राप्त हस्त-लिखित प्रति में मिले हैं। अन्य प्रतियों में नहीं हैं।

भूल—मनोरमा छंद—भृञ्जि सुपनखा गई रावन पै जव। त्रि-
शिरा खर दूपन नाश कहे सब ॥ तव सुपनखा मुख बात स-
वे सुनि। उठि रावन गो जहँ मारिच हो सुनि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—हो=था। जहँ मारिच हो सुनि=जहाँ मारिच सुनि
रूप से रहता था।

मूल—दोषक छंद—

रावण यात कहीं सिगरी ल्यों । सुपनखाहि विरूप करी ज्यों ।
एकहि राम अनेक सँहारे । दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे ॥७॥

शब्दार्थ—विरूप=धदसूरत (नाक कान फाट कर) । स्यों=सहित ।

अलंकार—विभावना (दूसरी) ।

मूल—दोषक छंद—

तू अब होहि सहायक मेरो । हौं बहुतै गुण मानिहौं तेरो ॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहैं । वै भूमि सोकन ही मरि जैहैं ॥

शब्दार्थ—गुण मानिहौं=कृतज्ञ हूँगा, पहसान मानूँगा । वै=राम । भूमि=धूमते धूमते ।

मूल—(मारीच) दोषक छंद—

रामहि मानुष कै जनि जानौ । पूरन चौदह लोक बसानौ ॥
जाहु जहाँ सिय लै सु न देखौ । हौं हरि को जल नू घल लेखौ ॥

शब्दार्थ—मानुषकै=मनुष्यकरके, मनुष्यही । सु=सो । हौं=मैं ।

भावार्थ—(मारीच रावण को समझाता है) हे रावण । राम को मनुष्य मत समझो, वरन उनको समस्त चौदहो नुबनों में व्यापक समझो, मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता जहाँ तुम सीता को ले जाकर छिपा रखोगे, मैं तो राम को जल कल में व्यापक मानता हूँ ।

मूल—(रावण) सुन्दरी छंद—

तू अब मोहि सिखायत है सठ । मैं बस लोक

धेगि चलै अब देहि न ऊतरु । देव सबै जन एक नहीं हरु ॥

शब्दार्थ—ऊतरु=उत्तर, जवाब । जन=दास, सेवक । हरु=
(हर) महादेव ।

भावार्थ—(रावण मारीच को डाँटता है) हे शठ ! तू मुझे सिखाता है (चलने में बहाना करता है) ? मैंने अपनी हठसे सब लोगों को वश में कर लिया है । बस उत्तर मत दे, जल्दी चल । एक शिव को छोड़ कर और सब देवता तो मेरे दास हैं (वे भेरा क्या कर सकते हैं) ।

मूल—दोहा—जानि चलयो मारीच मन, मरन दुहँ विधि आसु ।
रावन के कर नरक है, हरि कर हरिपुर बासु ॥११॥

भावार्थ—मारीच, यह जानकर कि अब शीघ्र ही मुझे दोनों तरह से मरना ही है (वहाँ जाने से राम मारेंगे, न चलने से रावण मारेगा) अतः राम के हाथ से मरना ही अच्छा है, क्योंकि रावण के हाथ से मरने में नरकगामी हूँगा और राम के हाथ से मारे जाने से वैकुण्ठ प्राप्त होगा । इस प्रकार विचार कर रावण के साथ चल दिया ।

मूल—(राम)सुन्दरी छंद—

राजसुता इक मंत्र सुनो अब । चाहत ही भुव भार हन्यो सब ॥
पावक में निज देहहि राखहु । छाये शरीर मूर्गे अभिलापहु ॥

शब्दार्थ—छायशरीर=छाया शरीर से । मूर्गे अभिलापहु=मृग

पाने के लिये मृग से अपनी इच्छा प्रकट करे ।

मूल—चामर छंद—भार्यो कुंग, एक चारु हेम हीर को ।
जानकी समेत चित्त मोहि राम बीर को ॥ राजपुत्रिका समीप
साधु बंधु राखिके । हाथ चाप धाण लै गये गिरीश जाखिके ॥

शब्दार्थ—कुंग=मृग । हेम=सोना । हीर=हीरा । साधु=
इंद्रीजित, ब्रह्मचारी । गिरीश=बड़ा पर्वत । नाखिके=छाप-
कर, उस ओर ।

मूल—दोहा—रघुनाथक अबही हन्यो, सायक सठ मारीच ।
'हा लछिमन' यह कहि गिरो, श्रीपति के स्वर नीच ॥

भावार्थ—रघुनाथ जीके बाण मारते ही दुष्ट मारीच श्रीपति
(श्रीरामजी) के स्वर से 'हा लक्ष्मण' शब्द उच्चारणकर
गिर कर शरीर त्याग दिया ।

मूल—निशिपालिकाछंद—राज तनया तथहि बोल सुनि यो
कह्यौ । जाहु चलि देवर न जात हम पै रह्यौ ॥ हेम मृग होहि
नहि रैनचर जानियो । दीन स्वर राम कहि भांति मुख
आनियो ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—राजतनया=सीता (का छायाशरीर) । बोल=राम
के स्वर में उच्चारित 'हा लक्ष्मण' शब्द । रैनचर=निश्वर ।
मुख आनियो=उच्चारण किया ।

भावार्थ—तब वह 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर सीता ने कहा,
हे देवर ! तुम जल्दी जाओ । श्री राम तुम्हे सहायता
देते हैं—उनका दीन वचन सुनकर मुझसे रहा नहीं जात ।
जान-पड़ता है कि वह मृग नहीं है, कोई राक्षस है—ऐसा

न होता तो रामजी ऐसे दीन स्वर से न टेरते । जान पड़ता है कि राम पर कोई संकट आ पड़ा है ।

मूल—(लक्ष्मण)—निशिपालिकाछन्द—शोच अति पोच उर मोच दुखदानिये । मातु यह बात अवदात मम मानिये ॥ ऐ निचर छत्र वडु भांति अभिलापहीं । दीन स्वर राम कवहू न मुख भापहीं ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अवदात=शुद्ध, सत्य । छत्र=कपट ।

भावार्थ—हे माता जानकी ! यह अति तुच्छ और दुखदायी दुःख मन से निकाल दो और मेरी इस बात को सत्य जानो कि निश्चय चाहे लाख कपट करें पर श्री राम जी मुख से कभी दीन वचन उच्चारण न करेंगे ।

मूल—चंचलाछन्द—पच्छिराज जच्छराज प्रतराज जातुघान । देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥ पर्वतारि अर्व खर्व सर्व संवथा पखानि । कोटि कोटि सूर चन्द्र रामचन्द्र दास मानि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—पच्छिराज=गरुड़ । जच्छराज=कुवेर । प्रतराज=यम । अदेवता=दैत्य । नृदेवता=राजा । पर्वतारि=इन्द्र । अर्व=एक अरव (संख्या) । खर्व=एक खरव (संख्या) । सर्व=शिव ।

भावार्थ—गरुड़, कुवेर, यम, राक्षस, देवता, दैत्य और राजा इस संसार में जितने हैं; और अरवों इन्द्र वा खरवों शिव तथा करोड़ों सूर्य और चन्द्र, इन सब को श्री राम जी का सदा

हेम हीर शी
राजपुत्रिका कर्ण
गिरास का
श्री-श्रीरा । म
। नासि के-
सद माता
के स्वर दे
माता के
शब्द उच्चार
बोल छि
॥ हेम सुपर
कोटि भाति
। शोच-
नचिचर-
सीता में के
पुन्हे सदा
तही उ
राक्षस हैं-

ही समझो (कोई भी राम जी को कष्ट नहीं पहुँचा सकता) ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—चामरछन्द—राजपुत्रिका कहौ सु और को कहै सुनै ।

कान मूँदि थार थार सीस धीसधा धुनै ॥

चापकीय रेख खाँचि देव साखि दै चले ।

नाखि ई ते भस्म होंहि जीव जे भले बुरे ॥१८४॥

शब्दार्थ—और को कहै सुनै=अकृत्य और अश्रवणोय है, कहने सुनने लायक नहीं (अर्थात् अत्यन्त कटु और कठोर हैं) । धीसधा=अनेक प्रकार से । चापकीय=धनुष से, धनुष द्वारा । देव साखि दै=अपनी निर्दोषताका साक्षी बनाकर ।

भावार्थ—तब सीता जी ने लक्ष्मण को अत्यन्त कटु और कठोर वचन कहे जो कहने सुनने योग्य नहीं । और लक्ष्मण की बातें न सुनाई पड़ें इसलिये कान मूँद कर बार बार अनेक प्रकार से अपना सिर पीटने लगी (अबला स्त्रियों का ऐसा ही स्वभाव होता है । हठी होती हैं, सिर फोड़ लेती हैं) । जब लक्ष्मण जी ने देखा कि ये मानेगी नहीं, तब धनुष से पर्णकुटी के चारो ओर रेखा खींच कर और अपनी निर्दोषता के हेतु देवताओं को साक्षी बनाकर-देवताओं की कसम दिखाकर-और यह कह कर कि जो कोई इस रेखा को लौंघेगा, चाहे वह भला हो चाहे बुरा हो, वह भस्म हो जायगा, राम की ओर चल दिये ।

अलंकार—तुल्ययोगिता (चौथी) ।

नोट—सीता ने उस धनुरेखा को लांघा था । उसके फल स्वरूप लङ्का विजय होनेपर सीता को यह रूप जलाना पड़ा । लक्ष्मण का वचन सत्य हुआ ।

मूल—चामर छंद—छिद्र ताकि छुद्रवुद्धि लंकनाथ आइयो ।
मिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो ॥ सोच पोच
मोचि के सकोच भीम भेषको । अंतरिच्छ ही हरी, ज्यों राहु
चंद्ररेख को ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—छिद्र=मौका (जानकी को अकेली जानकर) ।
मोचिकै सकोच भीम भेषको=अपने बड़े भयंकर भेषको जो
छोटा बनाकर आयाथा, उस संकोचन को छोड़ कर अर्थात्
पुनः बड़ा और भयंकर रूप (अपना असली रूप) धर
कर । अंतरिच्छ=आकाश । चंद्ररेख=(चंद्ररेखा) द्वितीया
का चंद्रमा । ज्यों=मानो ।

भावार्थ—मौका ताक कर छुद्रवुद्धि रावण जानकी की पर्ण
कुटी के निकट आया । (चूंकि वह सन्यासी का भेष धारण
क्रिये था अतः) उसे भिक्षुक समझ कर जानकी जी ने
भीख देने के लिये निकट बुलाया । ऐसा मौका पाकर उस
पोच ने सब विचार छोड़ कर पुनः अपना असली भयंकर
रूप धरकर सीता को पकड़ इस प्रकार आकाश मार्ग से
उड़ा जैसे राहु ने द्वितीया के चंद्रमा को पकड़ा हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (यहाँ 'ज्यों' शब्द 'मानो' के अर्थ में है अतः इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार मानना मुझे अधिक उचित जँचता है) ।

मूल—दंडक-धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की शिखा, के धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की । चित्र की सी पुत्रिका के रूरे बगरूरे माहिं, शंवर उड़ाइ लई कामिनी के काम की ॥ पाखंडी की सिद्धि, के मठस बस एकादसी, लीनी के स्वपचराज साखा सुद्ध साम की । केशव अदृष्ट साथ जीव जाति जैसी तैसी, लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥२०॥

शब्दार्थ—धूमकेतु=अग्नि । धूमियोनि=बादल । सुधाधाम=चन्द्रमा । रूरे=बड़े । बगरूरा=बवंडर । शंवर=शंवर और प्रद्युम्न की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के ५५ वें अध्याय में देखो । मठेश=मठपति, किसी मठका । पुजारी (केशवकृत विज्ञानगीता में इस की कथा देखो) । स्वपचराज=चाण्डाल । अदृष्ट=भाग्य, प्रारब्ध । जाया=पत्नी । छाया जाया राम की=राम की छायामय (मायामय, असली नहीं) पत्नी सतिता ।

भावार्थ—(सीता रावण के वश पड़ी हैं—कैसे) धूम से मूँह में अग्निशिखा है, या बादल में चन्द्रकला है, या बड़े बवंडर में कोई सुन्दर चित्र है, या शंवरसागर ने रति को हरण किया है, या पाखंडी की सिद्धि है (पाखंडी में असली सिद्धि होती ही नहीं—वैसेही, ये असली सीता नहीं) । या

मठाधीश के वशमें जवरदस्ती एकादशी पड़ गई है, या चांडाल ने अनाधिकार ही शुद्ध सामवेद की शाखा ग्रहण की है। केशव कहते हैं कि जैसे प्रारब्ध के फंदे में जीव की ज्योति (अविनाशी सच्चिदानन्द ईश्वरका अंश) पड़ी हुई है, वैसे ही रावण के हाथ में रामपत्नी का केवल मायामय रूप पड़ा है—तात्पर्य यह कि जैसे उपर्युक्त वस्तुएँ विवश होकर अवास्तविकरूप से इन जनों के वश में केवल देखने मात्र को होती हैं, वैसे ही, मायामय रूप से सीता भी रावण के हाथ पड़ी है।

अलंकार—संदेह से पुष्ट उपमा।

मूल—(सीता) वसन्ततिलका छंद—हा राम ! हा रमन !
हा रघुनाथ धीर ! लंकाधिनाथ वश जानहु मोहि बीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण ! छुड़ावहु वेगि मोहीं । मारतडवंश यश की
सब लाज ताहीं ॥ २१ ॥

मूल—वसन्ततिलका छंद—पक्षी जटायु यह बात सुनत धाय।
रोक्यो तुरंत बल रावण दुष्ट जाय । कीन्हो प्रचंडरण छत्र
ध्वजा बिहीन । छोड्यो विपक्ष तब भो जव पक्षहीन ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सुनंत=सुनकर । बल=बलपूर्वक । विपक्ष=शत्रु ।
पक्ष=पंख ।

मूल—संयुक्ता छंद—

दशकठ सीतहि ले चल्यो । अति वृद्ध गीय हियो दल्यो ।
चित्त जानकी अब को कियो । हरि तीनद्वै अवलोकियो ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—गीष हियो दह्यो=गृद्ध (जटायु) के हृदय में बड़ा दुःखहुआ (शरीर के कष्ट का कुछ भी ध्यान नहीं) । हृदय इस हेतु दुखी है कि इतना शारीरिक कष्ट सहने पर भी सीता का उपकार न कर सका । अध को=नीचे को । हरि=बंदर । तीनद्वै=(३+२) पाँच (देखो छंद नं० ५१, ५६ तथा प्रकाश १३ वें का छंद नं० ३६) ।

भावार्थ—तदनन्तर रावण सीता को लेकर लंका को चला । अत्यंत बुरे जटायु को अत्यंत हार्दिक दुःख हुआ । आगे बढ़ने पर जानकी ने नीचे की ओर (भूमि की ओर) देखा तो एक पर्वत पर पाँच बंदरों को बैठे देखा ।

मूल—पद् पद्म की शुभ घूँघरी । मणि नील हाटक सो जरी ।
जुत उत्तरीय विचारि कै । भुव डारि दी पग टारि कै ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—घूँघरी=नूपुर । हाटक=सोना । उत्तरीय=ओढ़नी । पग टारिकै=पैरसे उतार कर ।

भावार्थ—सीताजी ने अपने चरण कमलों के घुँघुरू जो सुवर्ण के थे और जिनमें नीलम जड़े हुए थे, पैर से उतारकर और अपनी ओढ़नी में बांधकर जमीनपर फेंक दिये (ताकि वे बंदर उसे पावें और खोज करते हुए राम जी को खोज दें) ।

मूल—दोहा-सीता के पद्मपद्म के नूपुर पट जनि जानु ।
मनहु कय्यौ सुग्रीव घर राजश्री प्रस्थानु ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—राजश्री=राज्यवैभव, राज्यलक्ष्मी । प्रस्थानु=आगमन

चिह्न ।

भावार्थ—(कवि कहता है) उनको सीता के चरण के नूपुर और कपड़ा ही न समझो वे तो मुझे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सुग्रीव के घर राजलक्ष्मी का प्रस्थान रक्खा गया है (थोड़े दिनों में सुग्रीव को राज्य मिलने वाला है, उसी के आगम चिह्न है) ।

अलंकार—अपह्नुति और उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—यद्यपि श्री रघुनाथ जू, सम सर्वग सर्वज्ञ ।
नर कैसी लीला करत, जेहि मोहत सब अज्ञ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—सम=सदा एक रस (जो किसी भी मनोभाव से प्रभावित न हो) । सर्वग=सर्वत्र व्याप्त । सर्वज्ञ=सब बातों को जानने वाले । अज्ञ=मूढ़ ।

मूल—(राम) सवेया—निज देखो नहीं शुभ गतिहि सीत-
हि कारण कौन, कहौ अबहीं । अति मोहित कै बन माझ
गई सुरमारग में मृग मान्यो जहीं ॥ कटु बात कछु तुम सौ
कहि आई किधौ तेहि जास दुराय रहीं । अब है यह पर्ण-
कुटी किधौ और किधौ वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—सुरमारग=मारीच ने जो मरते समय 'हा लक्ष्मण'
शब्द कहा था, उसी शब्द-मार्ग पर, जिस ओर से शब्द-
ध्वनि आई थी उसी रास्ते पर ।

भावार्थ—(पर्णकुटी पर आकर और सीता को वहाँ न

पाकर श्री राम जी लक्ष्मण से कहते हैं) मैं अपनी सुन्दर सीता को यहाँ नहीं देखता इसका क्या कारण है, तुरन्त बतलाओ । क्या मुझपर अति प्रेम करके वे उस शब्दमार्ग से उस वन को चली गईं जहाँ मैं ने मृग को मारा है ? या तुमको कुछ कटु वचन कहे हैं और अब मेरे आने पर लजित होकर वा भय से कहीं छिप रही हैं । यह हमारी ही पर्णकुटी है या कोई दूसरी है ? तुम वही मेरे सहोदर, लक्ष्मण हो कि नहीं (कपट वपुधारी कोई दूसरे व्यक्ति तो नहीं हो ?)

अलंकार—संदेह ।

मूल—दोधक छन्द—

धारज सो अपनो मनरोष्यो । गीध जटायु पन्यो अवलोक्यो
 छत्र ध्वजा रथ देखिके बूझ्यो । गीध कही रण कौन सो बूझ्यो
 (जटायु)—रावण लेगयो राघव सीताहा रघुनाथ रते शुभगता
 मैं विनु छत्र ध्वजा रथ कीनो । है गयो हों बल पक्ष विहीनो ।
 मैं जग में सब ते बड़भागी । देहदशा तब कारण लागी ।
 जो यहु भौतिन वेदन गायो । रूप सो मैं अवलोकन पायो ।
 शब्दार्थ—देह दशा लागी—यह गीध देह और यह बृद्धावस्था
 (जो किसी काम की न थी) तुम्हारे उपकार में लगी ।

मूल—(राम)—दोधक छन्द—

साधु जटायु सदा बड़ भागी । तो मन मो वपु सो अनुरागी ।
 छूटो शरीर सुनी यह बानी । रामहि में तब जोति समागी ।

भावार्थ—(श्रीरामजी जटायु से कहते हैं) हे जटायु ! साधु-
वाद (धन्य धन्य) । तुम बड़े भाग्यमान हो जो तुम्हारा मन
मेरे रूप से अनुराग रखता है । राम की यह वाणी सुनते
ही जटायुने प्राण त्याग दिये और उसकी जीवज्योति राम ही
में लीन होगई (सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुआ) ।

मूल—तोटकछंद—

दिस दच्छिन को करि दाह चले । सरिता गिरि देखत वृक्ष भले ॥
वन अंध कबंध विलोकतहीं । दोउ सोदर खैचिलिये तवहीं ॥

शब्दार्थ—अंध=नेत्रहीन । कबंध=सिरहीन एक राक्षस (आगे
के छंदों में उसने स्वयं अपनी कथा कही है । इन्द्रके वज्र
मारने से इसका सिर पेट में घुस गया था, पर यह मरा नहीं ।
इन्द्र ने इसकी भुजायें दो दो फोस की कर दी थीं । सिर पेट
में घुस गया था, इस कारण इसे देख नहीं पड़ता था । लंबी
भुजाओं से हूँट टटोल कर अपना आहार पकड़ लेता था ।
अतः 'विलोकत ही' का अर्थ यहाँ होगा 'टटोलतेही'
भुजाओं से स्पर्श होते ही) ।

भावार्थ—जटायु की दाह-क्रिया करके रामजी दक्षिण की
ओर को आगे बढ़े और नदी, पहाड़, और सुन्दर वृक्ष देखते
(और उनसे जानकी का पता पूछते) चले जा रहे थे कि
रास्ते में अंधा कबंध मिला और इनकी जाहट पाकर टटोल
कर दोनों भाइयों को अपनी लंबी भुजाओं से अपने निकट

सूच लिया ।

मूल—तोटक छंद—

जब वैबहि को जिय बुद्धि गुनी । दुहुँ घाननि छे दोउ बाहु हनी ॥
वह छाँदि के देह चल्यो जवही । यह व्योम में बात कही तवही ॥

शब्दार्थ—बुद्धिगुनी=विचार किया । दुहुँ=दोनों ने (राम
और लक्ष्मण ने) । बाहु हनी=भुजाएँ काट डालीं । व्योम=
आकाश ।

भावार्थ—जब उसने राम और लक्ष्मण को भक्षण कर डारने
का विचार किया तब दोनों भाइयों ने उसकी दोनों भुजाएँ बाणों
से काट डालीं । जब वह शापित गन्धर्व अपनी इस राक्षसी
देह को छोड़ कर पुनः सुरपुर को चला, तब आकाश में उसने
यह बात कही:—

मूल—(कवंध—गंधर्वरूपसे) तोटकछंद—

पीछे मघवा मोहि शाप दई । गंधर्व ते राक्षस देह भई ॥
फिरि के मघवा सह युद्ध भयो । उन कोव के सीस पै बज हयो ॥

शब्दार्थ—पीछे=गतकाल में । मघवा=इन्द्र । सह=के साथ,
से । हयो=मार ।

नोट—इसी 'सह' वा 'सँग' से 'सन' 'सो' 'से', इत्यादि विभ-
क्तियाँ बनीहुई जान पड़ती हैं ।

भावार्थ—गतकाल में इन्द्र ने मुझे शाप दिया था, जिससे
मैं गंधर्व से राक्षस हो गया । तदनंतर इन्द्र से मेरा युद्ध

हुआ, तब उन्होंने क्रोध से मेरे सिर पर वज्र मारा ।

मूल—दोहा—गयो सीस गड़ि पेट में पन्थों धरणि पर आय ।

कहु करुणा जिय मौ भई दान्ही वाहु वढ़ाय ॥३५॥

वाहु दई द्वै कोस की "आचै तेहि गहि खाउ ।

रामरूप सीता-हरण उधरहु गहन उपाउ" ॥ ३६ ॥

भावार्थ—दोहा नं० ३५ का अर्थ सरल ही है। दोहा नं० ३६ में वह गंधर्व कहता है कि जब इन्द्रने कृपाकर के मेरी भुजाएँ दो दो कोस की करदीं उसी समय यह भी कहा था कि जो कोई तेरे निकट आचै उसे पकड़ कर खा लिया कर (इस प्रकार तू जीवित रहेगा), रामावतार के समय जब सीता-हरण होजाने पर श्रीराम इस वन में आवें तब उनको पकड़ लेना तब तेरा उद्धार हो जायगा (राक्षस देह छोड़ कर गंधर्व शरीर पावेगा) ।

मूल—(गंधर्व) दोहा—

सुरसुरि ते आगे चले मिलिहैं कपि सुग्रीव ।

देहैं सीता की खबर वादे सुख अति जीव ॥ ३७ ॥

भावार्थ—(वही गंधर्व आकाश से कहता है कि) जब इस गोदावरी से आगे बढ़ोगे तो तुम्हें सुग्रीव नामक एक वृन्दर मिलेगा । वह सीता की ठीक खबर देगा (सीता की कुछ सहिदानी देगा) जिसके मिलने से आपको बड़ा आनंद होगा । (इस वार्ता को सुन कर श्रीरामजी आगे को चले) ।

(विरह में राम की उन्मत्त दशा)

मूल—तोटक छंद—

सारिता इक केशव सोभ रई । अबलोके तहाँ चक्रवा चकई ॥
उरमें सिय प्रीति समाय रही । तिनसौं रघुनायक वात कही ॥

शब्दार्थ—सोभ रई=शोभांजित, अति सुन्दर ।

मूल—तोटक छंद—

अबलोकत हों जयहीं जवहीं । दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं ॥
वइ वैर न चित्त कछु धरिये । सिय देहु बताय कृपा करिये ॥

शब्दार्थ—दे=थे । दुख होत=साहित्य में खी के कुच-युग्म की उपमा चक्रवाक के जोड़े से दी जाती है । अतः सीता के कुचयुग्म से तुम लज्जित होकर विरोध मानते थे । वैर=विरोध भाव ।

भावार्थ—(रामजी चक्रवाक के जोड़े से कहते हैं) जब जब सीता को तुम देखते थे, तब तब तुम्हें दुःख होता था (कि हम ऐसे सुन्दर नहीं हैं) अतः उस विरोध को मुलाकर सीता को इधर जाते देखा हो तो कृपा करके कुछ पता तो बतलाओ ।

मूल—तोटक छंद—

शशि को अबलोकन दूर किये । जिनके मुख की छवि देखि जिये ।
कृति चित्त चक्रोर कछु धरो । सिय देहु बताय सहाय करो ॥

शब्दार्थ—कृति=एहसान, थरई, कृतज्ञता ।

भावार्थ—हे चकोरगण ! चंद्रमा का देखना छोड़ कर जिस सीता की मुखछवि देखकर तुम जीते थे, उस एहसान की कुछ सुध करो, और सीता का पता बतलाकर मेरी सहायता करो ।

नोट—भाव यह है कि चंद्रमा के अभाव में मेरी स्त्री की मुख-छवि देखकर तुम जीते थे । मैं चाहता तो तुम को अपनी स्त्री का मुख न देखने देता । पर तुमको दुःखित जान कर मैं ऐसा न करता था । अब मैं उसके विरह से दुखी हूँ, अतः अब तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये—मैं तुम्हें जीवित रहने में सहायता देता था तुम मेरे जीवित रहने में सहायता करो, नहीं तो कृतघ्न कहलाओगे । 'कृति' शब्द पर विचार करने से यही भाव स्पष्ट निकलता है ।

अलंकार—अन्योन्य ।

मूल—दुर्मिल सधैया—

काह केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भय हरिके ।
लखि केतक केतकि जाति गुलावते तीक्ष्ण जानि तजे हरिके ।
सुनि साधु तुम्हें हम बृक्षन् आये रहे मन मौन कहा धरिके ।
सिय को कहु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा ! करुणा करिके ॥

शब्दार्थ—केतक=केवड़ा । केतकि=केतकी । जाति=जाय-फल का पेड़ । तीक्ष्ण=काँटेदार । साधु=सज्जन । सोधु=पता । करुणा=करना नामक पुष्प-वृक्ष । करुणामय=आवाहन ।

भावार्थ—(श्रीरामजी करुणा नामक वृक्ष से कहते हैं) हे करुणामय (दयालु) करुणा ! कृपा करके हमें सीता का कुछ पता बतलाओ, तुम साधु प्रकृति हो इसी से तुम से पूछते हैं। तुम क्यों मौन हो रहे हो (साधुजन परदुःख को मर्त्री भाँति अनुभव कर सकते हैं) । यदि कहो कि अन्य वृक्षों से क्यों नहीं पूछते, तो उसका कारण सुनो, चंपक से इस कारण नहीं पूछा कि वह याचक का शत्रु है (भकरंद के याचक और को वह पात तक नहीं फटकने देता—प्रसिद्ध बात है कि भौरा जंगल पर नहीं बैठता) अतः वह हमारा दुःख क्या समझेगा। अशोक तो अपना सब शोक दूर करके 'अशोक' कहलाता है (जो स्वयं अशोक है वह दूसरे के शोक का क्या अनुभव करेगा) इस कारण उससे भी नहीं पूछा। केवड़ा, केतकी, जायफल, और गुलाब को तीक्ष्ण काँटेदार जानकर छोड़ दिया है, क्योंकि जो तीक्ष्ण प्रकृति के होते हैं वे भयंकर होते हैं। अतः आपको ही सज्जन जानकर पूछते हैं (सज्जन साधु ही हमारी पीड़ा का अनुभव कर सकता है)।

अलंकार—स्वभावोक्ति से पुष्ट निरुक्ति।

मूल—(राम) नराच छंद—

शब्दार्थ—हिमाशु=चन्द्रमा । वात=वायु । विलेप=शीतल-
कारक विशेष लेपनादि (चन्दन कर्पूरादि) । कालरात्रि=
मृत्यु की रात्रि । कराल=भयंकर । लोकहार=जनसंहारक ।

भावार्थ—(राम जी लक्ष्मण-प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण !
हमें सीता के वियोग में चन्द्रमा सूर्य के समान संतप्त लगता
है, मलय पर्वन वज्र सी चलती है, समस्त दिशायें आगसी
जलती हैं, चन्दन कर्पूरादि का लेप (जो तुम मेरे तन पर
लगाते हो) अंग को जलता है, रात्रि तो मुझे कालरात्रि से
भी अधिक भयानक जान पड़ती है । यह सीता का वियोग
नहीं है, इस संसार-संहारक काल ही जानो ।

अलंकार—शुद्धापहनुति ।

मूल—पद्मटिका छंद—

यहि भाँति धिलोके सकल डोर । गये सवरी पै दुज देवमौर ॥ ४
लियो पादोदक तेइ पद पखारि । पुनि अर्घादिक दीन्हें सुधारि ॥

शब्दार्थ—पादोदक=चर्णाभृत । अर्घादिक=जल, फूल,
मूलादि कुछ हलके पदार्थ जो अतिथि के आने पर उसे जलपान
को दिये जाते हैं ।

भावार्थ—इस प्रकार सब जगह सीता को खोजते हुए वे दोनों
देवशिरोमणि (राम लक्ष्मण) शवरी के स्थान में पहुँचे ।
उसने चरण धोकर चर्णाभृत लिया और अतिथि जानकर
उनको उचित जलपान दिया ।

मूल—पद्घटिका छंद—

हर देत मंत्र जिनका विशाल । सुभ काशी में पुनि मरण काल ॥
ते आये मेरे धाम आज । सब सफल करन अप तप समाज ॥४४

भावार्थ—(शवरी अपने मन में सोचती है) जिनके नाम का महा शुभंकर मंत्र काशी में महादेव जी सब जीवों को मरण काल में सुनाते हैं, वे ही श्रीराम आज मेरा अप तप सफल करने के लिये मेरे स्थान में आये हैं (अतः आज मैं अत्यन्त बड़भागीनी हुई) ।

मूल—पद्घटिका छंद—

फल भोजन का तेहि धरे आनि । भये यज्ञपुरुष अतिप्रीति मानि ॥
तिन रामचंद्र लक्ष्मण स्वरूप । तथ धरे वित्त जगज्योति रूप ॥४५॥

भावार्थ—तदनंतर शवरी ने भोजनार्थ फल लाकर दिये । उसके फलों को यज्ञपुरुष (नारायणरूप) राम जी ने बड़ी रचि से प्रीति पूर्वक खाया । तदनंतर शवरी ने राम लक्ष्मण को जगत् के प्रकाशक विष्णु भगवान समझ कर अपने वित्त में धारण कर लिया (अपने हृदय ही में राम का रूप देखने लगी, उसका हृदय ब्रह्मज्योति से प्रकाशित होगया) ।

मूल—दोहा—शवरी पावकपंथ तब, हरपि गई हरि लोक ।

धनन विलोकत हरि गये, पंपातीर सशोक ॥ ४६ ॥

वार्थ—पावकपंथ=योगाभि से अपना शरीर जलाकर ।

हरिलोक=परम धाम, बैकुण्ठ ।

मृगमित्र विलोकित चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को।
प्रतिकूल शुकादिक होहि सवे जिय जानै नहीं इनकी गतिको।
दुख देत तड़ाग तुम्हें न बनै कमलाकर है कमलापति को॥५०॥

शब्दार्थ—चक्रिन=सर्प । चंदनवात=मलय-पवन । न्यायन
ही=न्याययुक्त, ठीकही । मृगमित्र=चंद्रमा । (पशुका मित्र है
अतः जड़बुद्धि है) । निशाचर-पद्धति=निश्चरों की रीति ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी पंपासर से कहते हैं)—हे कमला-
कर (कमलों की खानि) पंपासर ! कमलापति (श्रीरामजी)
को जो तुम दुःख देते हो (विरह को उद्दास करते हो) यह
वात तुम्हारे योग्य नहीं (क्योंकि तुम कमलाकर हो और ये
कमलापति हैं—यह तुम्हारे दामाद हैं)—यदि कहो कि मलय-
पवन भी तो इन्हें दुःख देता है, तो वह तो उचित ही कार्य
करता है क्योंकि चंदन स्वयं जड़ है और सर्पयुक्त है अतः
विषैला है (विषका स्वभाविक गुण विमोहन है) विष से
संबंध रखनेवाले जड़वृक्ष की वायु यदि रास को विमोहित करे
तो आश्चर्य नहीं । चंद्रमा को देख कर जो इनका चित्त
दग्ध होता है (सो भी उचित ही है क्योंकि) चंद्रमा निश्च-
रोंकी रीति लिये हुए है (रात्रिचर है) । शुकपिकादि पक्षि-
यों की काकली जो इनको दुखद लगती है वह भी उचित ही
है क्योंकि वे जड़बुद्धि हैं इनकी विरह-दशा को नहीं जानते,
पर तुमतो कमलाकर हो (पर्याय से यहाँ इसका अर्थ “क-

मूल—सधैया—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दृष्टि की है।

रुचि रोहि ॥

।

केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—करहाटक=कमलका बीजकोष, शिफाकंद, कमल-

पुष्प के मध्य की छतरी जो पहले पीली होती है पुनः बड़ने

पर हरी हो जाती है । हाटक=सोना (पीले रंग का) ।

मनरोचन=मन को रुचनेवाला, सुन्दर । लोक विलोचन

की रुचि रोहि=लोगों (दर्शकों) की रुचि पर सवार होजाता

है (देखने में भला-मालूम होता है) । केशवराय=विष्णु ।

कमलासन=ब्रह्मा ।

भावार्थ—सुन्दर सफेद कमल में पीली छतरी है । उस पर

सुन्दर भौरा बैठा है जो सब दर्शकों को अत्यन्त भला जान

पड़ता है । इसको देखकर जलदेवियों ने ऐसी ऊपमा दी

जिसे सुनकर बड़े बड़े देवताओं के मन भी मोहित होगये

(भली मालूम हुई) । केशव कहते हैं कि (उन्होंने यह कहा

।क) इस पीली छतरी पर काला भौरा ऐसा जान पड़ता है

मानो ब्रह्मा के सिर पर विष्णु विराजमान हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—(लक्ष्मण) सधैया—

मिलि चक्रिन चंदन बात वई अति मोहत न्यायन ही मति को

मृगमित्र विलोकित चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को।
प्रतिकूल शुक्रादिक होहि सब जिय जानै नहीं इनकी गतिको।
दुख देत तडाग तुम्है न बने कमलाकर है कमलापति को॥५०॥

शब्दार्थ—चक्रिन=सर्प । चंदनवात=मलय-पवन । न्यायन
ही=न्याययुक्त, ठीकही । मृगमित्र=चंद्रमा (पशुका मित्र है
अतः जड़बुद्धि है) । निशाचर-पद्धति=निश्वरों की रीति ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी पंपासर से कहते हैं)—हे कमला-
कर (कमलों की खानि) पंपासर ! कमलापति (श्रीरामजी)
को जो तुम दुःख देते हो (विरह को उद्दीप्त करते हो) यह
बात तुम्हारे योग्य नहीं (क्योंकि तुम कमलाकर हो और ये
कमलापति हैं—यह तुम्हारे दासाद हैं)—यदि कहो कि मलय-
पवन भी तो इन्हें दुःख देता है, तो वह तो उचित ही कार्य
करता है क्योंकि चंदन स्वयं जड़ है और सर्पयुक्त है अतः
विषैला है (विषका स्वाभाविक गुण विमोहन है) विष से
संबंध रखनेवाले जड़वृक्ष की वायु यदि राम को विमोहित करे
तो आश्चर्य नहीं । चंद्रमा को देख कर जो इनका चित्त
दग्ध होता है (सो भी उचित ही है क्योंकि) चंद्रमा निश्व-
रोंकी रीति लिये हुए है (रात्रिचर है) । शुक्रपिकादि पाक्षि-
यों की काकली जो इनको दुखद लंगती है वह भी उचित ही
है क्योंकि वे जड़बुद्धि हैं इनकी विरह-दशा को नहीं जानते,
पर तुम तो कमलाकर हो (पर्याय से यहाँ इसका अर्थ "क-

मला को पैदा करनेवाले" लेना चाहिये)-और ये कमलापति हैं, अतः तुम्हारा इनका समुर दामाद का रिश्ता है। समुर होकर दामाद को दुःख न देना चाहिये। यह बात तुमसे नहीं बनती।

अलंकार—वकीर्त्ति ('कमलाकर' का दूसरा अर्थ लिया गया है)।

भारण्य कांड की कथा समाप्त

(क्विटिकन्धाकांड)

मूल—दोहा—ऋष्यशुक पर्वत गंगे केशव धी रघुनाथ ।

देखे वानर पंच विभु मानो दक्षिण हाथ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—वानरपंच=पांच वानर—सुग्रीव, हनुमान, नल, नील और मुखेन । विभु=प्रवापी, तेजस्वी । दक्षिण हाथ=दक्षिण दिशा के रक्षक अथवा (श्रीरामने) उन्हें-दक्षिण हाथ की तरह अपना सच्चा सहायक समझकर मित्ररूप देता, अर्थात् देखते ही राम को यह भावना हुई कि सीता की खोज में इनसे सहायता मिलेगी ।

—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद—

जब कपिराजा रघुपति देखे । मन नरनारायण
द्विजवपु कै धी हनुमत आये। बहु विधि दै आशिष मन भाये ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जब सुग्रीव ने राम जी को देखा (तब) अपने

मन में दोनों भाइयों को (श्रीराम और लक्ष्मणको) नर और नारायण ही समझा । ब्राह्मण भेष से श्री हनुमान जी राम जी के निकट आये और अनेक प्रकार से मनमाये आशीर्वाद दिये ।

मूल—(हनुमान) कुसुमविचित्रा छंद—

सब विधि रूरे वन महँ को हौ । तन मन सरे मनमथ मोहौ ॥
सिरपर जटा बाकल वपुधारी । हरि हर मानो विपिन विहारी ॥

भावार्थ—(हनुमान जी पूछते हैं) हे महागज ! आप लोग अति सुन्दर रूपवाले हो अतः कौन हो ? वन में किस कार्य से आये हो ? आप तन मन से शूरवीर मालूम होते हो, सुन्दर इतने हो कि काम को भी मोहते हो, सिरपर जटा और शरीर पर बल्कलवस्त्र धारण किये हो, ऐसा जान पड़ता है मानो आप विष्णु और शिव हो, जंगल में सैर करने को आये हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद—परम वियोगी सम रसभीने । तन मन एकै युग तन कीने । अब तुम को कालगि वन आये । केहि कुल हौ कौनहि पुनि जाये ॥ ५४ ॥

भावार्थ—तुम ऐसे रस निमग्न जान पड़ते हो जैसे किसी के वियोग में हो—वियोगी के समान विरह-रस में भीगे हो । तुम तन मन से एक ही हो, पर दो तन धरे हो (इतना तो मैं तुम्हारे रूप से ही जान गया) । पर अब तुम वताओ

कि तुम कौन हो और किस काम से वन में आये हो ?
किस कुल के हो और किस के पुत्र हो ?

मूल—(राम)—चंचरीछन्द—

पुत्र थी दशरथ के वन राज सासन आइयो ।

सीय सुंदरि संग हो बिछुरी सु सोधु न पाइयो ॥

राम लक्ष्मण नाम संयुत सूर वंश यखानिये ।

रावरे वन कौन हो केहि काज क्यों पहिचानिये ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—सासन=आज्ञा । संग ही=साथ में थी । सोधु=पता,
खोज । सूर=सूर्य । रावरे=आप । क्यों पहिचानिये=आप को
हम किस परिचय से जाने (आप का नाम धाम वंश इत्यादि
क्या समझें सो कहिये) ।

भावार्थ—(श्रीरामजी अपना परिचय देते हैं) हम श्रीदशरथ
जी के पुत्र हैं, राजा की आज्ञा से वन को आये हैं । हमारे
साथ में सीता नाम्नी एक स्त्री थी, वह इस वन में खो गई
है, उसका कुल पता नहीं चलता । हम दोनों के नाम राम
और लक्ष्मण हैं, हम सूर्यवंश के हैं । आप कहिये, आप कौन
हैं, इस वन में क्यों आये हैं, आप का परिचय क्या है (अर्थात्
आप अपना नाम, धाम, काम और वंश का परिचय दीजिये) ।

मूल—(हनुमान) दोहा—

वा गिरि पर सुग्रीव नृप, ता संग मंत्री चारि ।

यानर लई छंड़ाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—(जब हनुमान जाने सुना कि ये भी स्त्री वियोगी

है—ठीक सुग्रीव की सी दशा इनकी भी है, एक दशावालों में शीघ्र मित्रता हो सकती है। तब अपना परिचय देना छोड़ कर तुरंत सुग्रीव का हाल कहने लगे—इस से हनुमानजी की चतुराई प्रकट है) इस पर्वत पर राजा सुग्रीव रहते हैं। उनके साथ उनके चार मंत्री हैं (उन्हीं में एक मुझे भी जानो)। बालि नामक वानर ने उनकी स्त्री छीन ली है और उन्हें घर से निकाल दिया है।

मूल—दोधकछंद—

वा कहँ जो अपना करि जानौ। मारहु बालि विनै यह मानौ ॥
राज जु देखे दै वाकि तिया को। तो हम देहिबताय सिया को ॥

भावार्थ—उस सुग्रीव को यदि आप अपना सगा करके जाने (क्योंकि आप सूर्यवंश के हैं और वह भी सूर्य का पुत्र है) तो मेरी विनती मान कर आप बालि को मारिये। उसकी स्त्री और राज्यश्री यदि आप उसको दिलवा दें तो हम आपको सीता का पता बता दें। अथवा “सिया को बताय देहि” अर्थात् सीता का पता भी बतावें और ल भी दें।

अलंकार—संभावना।

मूल—(लक्ष्मण) दोधक छंद—

आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन को प्रभु पारौ ॥
धावर जंगम जीव जु कोऊ। समुख होत कृतार्थ सोऊ ॥५९॥

भावार्थ—(लक्ष्मण जी हनुमान जी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं)—हे प्रभु दुःखी जन की विपत्ति टारिये, दीन अनाथ

का प्रतिपालन कीजिये, क्योंकि आपका पन है कि चर अचर कोई हो, सम्मुख होते ही वह कृतार्थ होगा (उसके मनोर्ष की सिद्धि होगी) ।

मूल—दोधकछंद—

बानर है हनुमान सिधारयो । सूरज को सुत पायनि पाख्यो ॥
राम कहयो उठि बानर राई । राज सिरी सख स्यो तिय पारि ५९

भावार्थ—तब हनुमान (ब्राह्मण का भेष छोड़कर) बानर रूप (अपने असली भेष) में आकर राम-जी के पास से सुग्रीव के पास गये और सुग्रीव को अपने साथ लाकर रामजी के चरणों पर डाला (शरणागत किया) । श्री राम ने सुग्रीव को चरणों पर पड़ा हुआ देखकर कहा—हे बानर राज ! उठो । हे सखा ! तुमने अब राज्यश्री को खी समेत पाखिया (पाओगे) ।

अलंकार—भाविक (भावी बात; वर्तमान क्रिया में वर्णित है) ।

मूल—दाहा—उठ राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पार ।
सीता जू के पट सहित, नूपुर दीन्हे लाइ ॥ ६० ॥

मूल—नारकछंद—

रघुनाथ जबे पट नूपुर देखे । कहि केशव प्राण समानहि देखे ।
अवलोकन लक्ष्मण के कर दीन्हे । उन आदर सो सिर छार के लीन्हे ।

शब्दार्थ—सवलोकन=देखने को, पहिचानने के लिये ।

मूल—दडक—पंजर कै, खंजरीट नैनन का, केशोदास कैधौ
मीन मानस को जलु है कि जारु है । अंगको कि अंगराग
गेंडुवा कि गलसुई किधौ कोट जीव ही को, उरको कि हार
है ॥ बंधन हमारो कामकेलि को, कि ताडिवे को ताजनों विचार
को, कै व्यजन विचार है । मान की जमनिका कै कंजमुख
मूँदिवे को सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—पंजर=पिंजड़ा । खंजरीट=खंजन । जारु=जाल ।
गेंडुवा=(खास बुँदेलखंडी शब्द है) तकिया । गलसुई=गाल
के नीचे लगाने की छोटी गोल और मुलायम तकिया । कोट
जीव को=प्राणों की रक्षा करने का कोट । ताजनों=(फा०
ताजियाना) कोड़ा, कशा, उत्तेजक । विचार=रतिकेलि का
विशेष आचरण-प्रेम प्रीति का विशेष आचार । व्यजन=पंखा ।
विचारु=भावना । जमनिका=पर्दे की दीवार, टट्टी, कनात ।
उत्तरीय=ओढ़नी, ओढ़ने का वस्त्र ।

भावार्थ—(श्री राम जी सीता की ओढ़नी देखकर विचार क-
रते हैं) यह मेरे नेत्ररूपी खंजनों के लिये पिंजड़ा है, या मन
रूपी मीन के लिये प्राणाधार जल है, या फँसाने के लिये जाल
है, या मेरे अंग को आनंद प्रदायक शीतल और सुगंधित
लेप वा तकिया और गलसुई है, या मेरे जीव का रक्षा-कारक
कोट है, या मेरे हृदय के लिये शोभाप्रद हार है । या कामकेलि
के समय का मेरे हाथों का बंधन है, या रति-केलि आदि
को उत्तेजित करने के लिये कोड़ा है, या प्रेम प्रीति की भावना

रूपी अग्निको भड़काने के लिये पंखा है, या मान-समय में कमलमुख मृदने के लिये पर्दा है, या सर्व सुखकी मूळ श्री सीतानू की ओढ़नी है ।

अलंकार—संदेह ।

सूचना—ऐसाही वर्णन हनुमत्चाटक में भी है । शायद उसी को पढ़कर केशव को यह उक्ति सूझी हो । वह वर्णन यों है—

घूने पणः प्रणयकोलिपु कंडपाशः ।
 झाड़ा परिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते ॥
 शय्यानिशाथसमये जनकात्मजाया ।
 प्रसं मया विधिवशादिह चोत्तरीयम् ॥

मूल—स्वागता छंद—

शब्दार्थ—वानरेन्द्र=सुग्रीव । भीति=भेद=भय का सब मर्म ।
 बाहें धरी=सदैव रक्षा करने की प्रतिज्ञा की (सखाभाव स्थापित किया) ।

मूल—स्वागता छंद—

सूरपुत्र तव जीवन् जान्यो । यालि जोर बहु भाँति श्रवान्यो ॥
 नारि छीनि जेहि भाँति लईजू । सो अशेष विनती विनई जू ॥६४॥

शब्दार्थ—सूरपुत्र=सुग्रीव । जोर=बल । अशेष=सब । विनती
 विनई=निवेदन किया ।

मूल—स्वागताछंद—

एक बार शर एक हनो जा । सात ताल बलवत गनों तो ॥ ४
रामचन्द्र हंसि वाण चढायो । ताल वेधि फिरि कै कर आयो ॥

शब्दार्थ—ताल=ताड़ वृक्ष । ताल वेधि=सातों ताड़ों को छेदकर ।

मूल—(सुग्रीव) तारकछंद—

यह अद्भुत कर्म न और पै होई । सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई ४
निकरी मनते सिगरी दुचित्ताई । तुमसों प्रभु पाये सदा सुखदाई ॥

शब्दार्थ—प्रसिद्ध=नामी । दुचित्ताई=संदेह, दुविधा ।

मूल—मत्तगयन्द सवैया—

वावन को पद लोकन भापि ज्यों वावन के धपु माहि समायो ।
केशव सुरसुता जल सिंधुहि पूरि कै, सुरहि को पद पायो ॥
काम के वाण त्वचा सव वेधिके काम पै आवत ज्यों जग गायो ।
राम को सायक सातहु तालन वेधि कै रामहि के कर आयो ६७

शब्दार्थ—सुरसुता=जमुना । सुरहि को पद पायो=फिर सूर्य
ही में जा समाता है ।

अलंकार—मालोपमा ।

मूल—सोरठा—जिनके नामविलास, अखिल लोक वेद्युत पतित । ४
तिन को केशवदास, सात ताल वेधन कहा ॥६८॥

शब्दार्थ—नाम विलास=नाम लेने से ।

मूल—(राम)—तारकछंद—

आत संगति बानर की लघुताई । अपराध बिना वध कौनि बडाई ४
हेति बालिहि देउं तुम्हें रुप शिक्षा।अन है कहु सो मन येसिय इच्छा

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) यद्यपि चंचल स्वभाव धानरों की संगति करना मेरे लिये लघुता की बात है और बिना अपराध किसी को मारना कोई प्रशंसा की बात नहीं है, तथापि अब बालि को मार तुम्हें राजनीति की शिक्षा दूँगा (राजनीति यह है कि अपने उद्देश्य-साधन के हेतु यदि कुछ अनुचित कार्य भी करना पड़े तो करना चाहिये) इस समय मेरी ऐसी ही इच्छा है ।

धारद्वय प्रकाश समाप्त



तेरहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या तेरहें प्रकाश में वालि बध्यो कपिराज ।

वर्णन बर्षा शरद को उदधि उलंघन साज ॥

मूल—पद्मटिका छंद—

रविपुत्र वालि सों होत युद्ध । रघुनाथ भये मन माहँ कुद्ध । ॐ
सर एक हन्यो उर मित्र काम । तव भूमि गिन्यो कहि राम राम ॥
कछु चेत भये तेहि बलनिधान । रघुनाथ विलोके हाथ वान ।
सुभ चीर जटा सिर स्याम गात । बनमाल हिये उर विप्रलातार

शब्दार्थ—रविपुत्र=सुग्रीव । मित्रकाम=मित्र के हित की
कामना से । बलनिधान=(वह वालि इतना बली था कि राम
के बाण से तुरंत मरा नहीं, वरन् थोड़ी देर बाद सँभलकर
उठ बैठा) । विप्रलात=भृगुचरण चिन्ह ।

मूल—(घालि)—पद्मटिकाछंद—

जग आदि मध्य अवसान एक । जग मोहत हौ वपुधरि अनेक । ॐ
तुम सदा शुद्ध सब को समान । केहि हेतु हत्यो करुणानिधान ॥

शब्दार्थ—जग आदि=संसार के उत्पादक । जग मध्य=
संसार के पालक । जग अवसान=संसार के संहारक । जग....
एक=संसार के कर्ता, भर्ता और हर्ता आप ही एक हैं; अर्थात्
मैं (तुम्हारे भृगुचरण चिह्न से) पहचान गया कि विष्णु के
अवतार हों । समान=समदर्शी ।

मूल—(राम)—

सुनि वासवसुत बल बुधि निधान । भे शरणागत हित हते प्रान ।
यह साँटो ले कृष्णावतार । तब हैही तुम संसार पार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वासवसुत=बालि । साँटो=बदला । संसारपार=मुक्त ।

विशेष—कृष्णावतार में बालिने ही जरा नामक व्याधका अवतार
लेकर श्रीकृष्णको बध्न मारा था ।

मूल—रघुवीर रंक ते राघ कीन । युवराज विरद अंगदहि दान ।
तब किष्किथा तारा समेत । सुप्रीव गये अपने निकेत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—युवराज विरद=युवराज पद । निकेत=घर ।

मूल—दोहा—कियो नृपति, सुप्रीव हुनि बालि बली रणवीर ।
गये प्रवर्षण अद्रि को लक्ष्मण स्वो रघुवीर ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अद्रि=पर्वत । स्वो=सहित ।

मूल—त्रिभंगी छंद—

देख्यो सुभ गिरिवर, सकल सोमवर, फूल वरन बहु फरनि फरे ।
संग सरम, अक्ष जन, केसरि के गन, मत्तह चरने सुप्रीव परे ॥

शब्दार्थ—सोम=शोभा । सरम=(१) पशु (२) वानरों की
एक जाति विशेष । ऋध्व=(१) रीछ (२) जामवंत । केसरी=
(१) सिंह (२) वानरों की एकजाति विशेष—(जिसमें
हनुमान जी के पिता मुख्य थे) । सिवा=(१) शृगाली (२)
पार्वती । गजमुख=(१) गणेश (२) मुख्य २ जाति के हाथी ।

परभृत=(१)कोयल (२) बड़े बड़े सेवक अर्थात् नंदी, भृंगी इत्यादि। चंद्रक=(१) जल (२) चंद्रमा। दिगम्बर=(१)बहुत बड़ा (२) नंगा, वस्त्र-रहित। अहिराज=(१) बड़े सर्प(२) शेष वा वासुकी।

भावार्थ—श्रीरामजी ने उस पवित्र पहाड़ को देखा कि सब प्रकार की शोभा से युक्त है (जो जो वस्तुएँ पर्वत में होनी चाहियें वे सब वहाँ हैं)। अनेक रंग के फूल फूले हैं और बहुत प्रकार के फल भी फले हुए हैं (सब ऋतुओं के फल फूल वहाँ हैं)। अनेक वनपशु, रीछ और सिंहों के गणों से युक्त वह पहाड़ है, सो ऐसा जान पड़ता है मानो शरभजाति के वानर, जामवंत तथा केशरी नामक वानर को साथ लिये हुए सुग्रीव सदा श्रीराम के चरणों के नीचे पड़े रहते हैं। (अंतिम दो चरणों में शिव और पर्वत की समता श्लेष से दिखलाई गई है) यह पर्वत मानो शिव है=(कारण यह कि)=शिव के संगमें शिवा (पार्वती) विराजती हैं तो यहाँ भी शिवा हैं (शुगाली हैं), शिवके संग गजमुख (गणेश) गलंगजें उड़ते हैं तो यहाँ भी मुख्य मुख्य (बड़े बड़े) हाथी गरजते हैं, शिव के साथ परभृत (बड़े बड़े सेवक, नंदी भृंगी इत्यादि) स्तुति गान कर उनको प्रसन्नकरते हैं तो यहाँ भी परभृत (कोयल) बोलकर चित्त हरती है, शिव जी सिरपर चंद्रक (चंद्रमा) धारण किये हुए हैं तो यह पर्वत भी निज तन पर

चंद्रक (जलग्रय-सरोवरदि) धारण क्रिये है, शिवजी परन दिगम्बर हैं, तो यह पर्वत भी परन दिगम्बर (अत्रि विस्तृत) है, शिवजी अहिरात्र को धारण करते हैं, तो यह पर्वत भी बड़े बड़े सर्पों को धारण क्रिये हुए है (बड़े बड़े सर्प पर्वत में हैं) अतः इन समवाओं के कारण यह पर्वत शिवरूप है ।
अलंकार—छेप से पुष्ट उल्लेख ।

सूचना—यह छंद केशव के पांडित्य का नमूना है । ऐसे छंद इस ग्रंथ में अनेक हैं—(दिसो प्रकाश २ में छंद नं १०) ।

जोकर छंद—शिशु सो लुल्ले संग धाय । वनमाल ज्यो सुराय ॥ अहिरात्र सो यहि काल । यहु सोस सोननि माल ॥

शब्दार्थ—धाय=(१) दूध पिलानेवाली दाई (२) धवाई नामक वृक्ष । वनमाल=(१) विष्णु की प्रसिद्ध माला (२) वनों का समूह, अनेक प्रकार के वृक्षों के पृथक पृथक वन । सुराय=विष्णु । सोस=(१) सिर (२) गिरिशृंग ।

भावार्थ—यह पर्वत शिशु समान शोभित है, क्योंकि जैसे शिशु के संग धाई रहती है वैसेही इसमें भी धाई वृक्ष हैं । यह पर्वत विष्णु के समान है क्योंकि वे भी वनमाल धारण करते हैं और इसमें भी वनों के समूह (वन-माल) हैं । यह पर्वत इस समय (वर्षा में) छेपनाग सम है, क्योंकि जैसे उनके बहुत से सुन्दर (मण्डिपुच्छ) सिर हैं, वैसे ही इस पर्वत के भी अनेक सुशोभित शृंग (सिर) हैं ।

अलंकार—उपमा और श्लेष से पुष्ट उल्लेख ।

(वर्षा-काल वर्णन)

मूल—(राम)—स्वागता छंद—

चंद्र मंद द्युति वासुर देखौ । भूमिहीन भुवपाल विशेषौ ॥
मित्र देखिये सोभत है यौ । राजसाज विनु सीतहि हौं ज्यौं ॥९॥

भावार्थ—रात्रि में (शुक्लपक्ष में भी) चंद्रमा मंद द्युति रहता है, दिन भी सुप्रकाशवान नहीं होता । ये दोनों ठीक वैसे ही तेजहीन है जैसे राज्यहीन राजा । सूर्य भी ऐसा मंद द्युति देख पड़ता है जैसा राज्यहीन और विना सीता के मैं हूँ ।

अलंकार—पूर्वाद्ध में दृष्टान्त, उत्तराद्ध में उपमा ।

मूल—दोहा—पतिनी पति विनु दान अति, पति पतिनी विनु मंद ।
चंद्रविना ज्यौं जामिनी ज्यौं विनु जामिनि चंद्र ॥१०॥

शब्दार्थ—मंद=हीनप्रमा । जामिनी=रात्रि ।

अलंकार—अन्योन्य ।

(वर्षा वर्णन)

मूल—स्वागता छंद—

देखिराम वरपा कतु भाई । रोम रोम बहुधा दुख दाई ॥
आस पास तम की छवि छाई । राति घौस कहु जानि न जाई ॥११॥

शब्दार्थ—आस पास=चारों ओर । तम की छवि छाई=घोर अंधकार है । घौस=(दिवस) दिन ।

अलंकार—उद्गुण ।

मूल—मंद मंद धुनि सों घन गाजें । तूर तार जनु आवइ गाजें ।
ठौर ठौर चपला चपकें यों । इन्द्रलोक-तिय नाचति हैं ज्यों ॥ १२॥

शब्दार्थ—तूर=तुरही । तार=(ताड) मँजीरा । आवइ
=वाशा ।

भावार्थ—मंद मंद धुनि से बादल गरजते हैं । उनका शब्द
ऐसा मालूम होता है मानों तुरही, मँजीरा और तासे बजते
हों, और जगह जगह पर विजली चमकती है, वह ऐसी
मालूम होती है मानो इन्द्रपुरी की स्त्रियाँ (अप्सरारें)
नाचती हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा । प्रतिवस्तूपमा ।

मूल—मोहनक छंद—

सोई घन स्यामल घोर घने । मोई तिनमें बक पाँति मुने ॥
संखावलि पी बहुधा जल स्यो । मानो तिनको उगिले बलस्यो

शब्दार्थ—स्यो=साहित ।

भावार्थ—घोर कालि बादल सोहते हैं, उनमें उड़ती हुई बक-
पंक्तियों मनो को मोहती हैं । यह घटना ऐसी जँचती है
मानो बादल समुद्र से जल पीते समय जलके साथ बहुतसे
शंख भी पीगये थे और अब वे ही शंख बल पूर्वक उमड़
रहे हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—शोभा अति शक्र शरासन में नाना वृत्ति दीसति है धनमें
रत्नावलि सी दिविद्वार भूयो। वर्षागम वांछिय देव मनो॥१५॥

शब्दार्थ—शक्र-शरासन=इन्द्र धनुष । रत्नावलि=रत्नों की
वनी झालर, वंदनवार । दिविद्वार=देवलोक के दरवाजे पर ।

भावार्थ—इन्द्र धनुष अति शोभा दे रहा है, बादलों में नाना
प्रकार के रंग देख पड़ रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है मानो
वर्षा के स्वागत में देवताओं ने सुरपुर के द्वार पर रत्नों की
झालर (वंदनवार) बांधी हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छंद —

धन घोर घने दसह दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये ॥
अपराध विना छिति के तन ताया। तिन पीड़न पीड़ित है उठि धाये

शब्दार्थ—मघवा=इन्द्र । छिति=पृथ्वी ।

भावार्थ—सब ओर घने बादल छाये हुए हैं, मानो इन्द्र ने
सूर्य पर चढ़ाई की है, (चढ़ाई का कारण यह है कि) सूर्य
ने विना अपराध ही पृथ्वी को संतप्त किया है (ग्रीष्म में
सताया है) । अतः पृथ्वी के दुःख से दुःखित होकर सूर्य को
दण्ड देने के लिए इन्द्रदेव उठ दौड़े हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छंद—

अति गाजत वाजत दुंदुभि मानो। निरघात सबे पविपात वखानो
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं। सरजाल वहे जलधार वृथाहीं ॥१६॥

शब्दार्थ—निरघात=(निघात) बिजली की कड़क । पवि-
पात=वज्रपात । गौर मदाइन=(बुंदेलखंडी) इन्द्रधनुष ।
बहै=चलती है ।

भावार्थ—बादल अति जोर से गरज रहे हैं वही मानो रण-
नगारे बज रहे हैं, और बिजली की कड़क के शब्द को वज्र
फेंकने का शब्द जानो । यह इन्द्रधनुष नहीं हैं, वरन इसे
सुसति का चाँप समझो और जो बूंदे पड़ती हैं यह वाणवर्षा
है, इसे जलधार कहना व्यर्थ है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति ।

मूल—तारक छन्द

भट,चातकदादुर मोर न थोलै।चपला चमकै न, फिरे आंग खोले
दुतिवंतन को विपदा बहु कौन्ही।धरनी कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही

शब्दार्थ—खँग=(खड्ग)तलवार । दुतिवंत=चन्द्र, शुक्रदि
चमकीले ग्रह । चन्द्रवधू=वीरवहूटी नामक लालरंग का सुकुमार
कीड़ा ।

भावार्थ—ये पपीहा, मेढ़क और मोर नहीं बोलते, वरन् इन्द्र
के भट सूर्य को ललकार रहे हैं, यह बिजली नहीं चमक रही
है, वरन् इन्द्र महाराज तलवार खोले घूम रहे हैं, और (सूर्य
पर क्रुद्ध होने के कारण) समस्त युतिमान चमकीले ग्रहों पर
विपत्ति डाल दी है, यहाँ तक कि चन्द्रवधुओं को पकड़कर पृथ्वी
के हवाले कर दिया है (कि इन्हें मनमाना दंड देकर अपना

बदला लो) ।

अलंकार—अपह्नुति । प्रत्यनीक (सूर्य पर क्रुद्ध होकर समस्त धुनिवत ग्रहों को दंड देना) ।

मूल—तरुनी यह अग्नि ऋषीश्वर की सी । उर में हम चन्द्र प्रभा सम दीसी ॥ वरपा न सुनौ किलकै कल काली । सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—तरुनी=सी (अनुसूया) । चन्द्र=(१) चन्द्रमा (२) सोम नामक अनुसूया का एक पुत्र । किलकै=हँसती है । कल=सुन्दर । अहिमाली=(१) महादेव, (२) सर्प समूह । वर्षा=वर्षा काल के शब्द (दादुर मोरादि वा विजली की फड़क) ।

भावार्थ—(श्री राम जी लक्ष्मण जी से कहते हैं) यह वर्षा अग्नि-पत्नी अनुसूया सी है, क्योंकि जैसे अनुसूया के गर्भ में सोम की प्रभा थी वैसे ही इस वर्षा में भी बादलों में चंद्रप्रभा छिपी है (जैसे सोम नामक पुत्र के अनुसूया के गर्भ में आने से अनुसूया के तन में मंद प्रभा प्रकाशित हुई थी वैसे ही वर्षा में बादलों से ढँका चन्द्रमा मंद प्रकाश देता है) (पुनः कहते हैं) यह वर्षा काल के शब्द नहीं हैं, वरन् काली सुन्दर शब्द से हँस रही हैं । जैसे काली की समस्त महिमा महादेव ही जानते हैं वैसे ही वर्षा शब्द की समस्त महिमा सर्प समूह ही जानता है (वर्षा में सर्पों को दादुर खिला

इत्यादि जंतु अधिकता से खाने को मिलते हैं अतः वर्षा की महिमा सर्प ही भली भाँति जानते हैं ।

अलंकार—उपमा, अपह्नुति, श्लेष ।

(वर्षा-कालिकारूपक)

मूल—घनाक्षरी छंद—मौँहें सुरचापचाक प्रमुदित पयोधर,
मूखन जराय जोति तदित रलाई है । दूरि करी सुख मुख
सुखमा सती की नैन अमल कमलदल दलित निकारि है ॥
केशोदास प्रवल करेनुका गमनहर, मुकुत सुहंसक सबद
सुखदाई है । अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जूकी कालिका
के वरपा हरपि हिय आई है ॥ १९ ॥

सूचना—इस छंद के दो अर्थ स्पष्ट हैं । एक कालिकापक्ष का, दूसरा वर्षा पक्ष का । संग पद श्लेष अलंकार होने के कारण दोनों पक्ष के हेतु शब्दार्थ भी भिन्न भिन्न होंगे ।

शब्दार्थ—(कालिका पक्ष में)—सुरचाप=इन्द्र-धनुष । प्रमुदित=प्रमोदप्रद (उन्नत, पान) । पयोधर=कुम्भ । मूखन=जेवर । तदित=विजली । रलाई है=मिली हुई है । सुख=सहज ही । सुखमा=शोभा । निकारि=शोभा । प्रवल=मठ । करेनुका=हथिनी । गमनहर=चालको छीन लेनेवाली । मुकुत=(मुक्त) स्वच्छन्द । हंसक-सबद=बिलुवाओं का शब्द अंबर=छपड़ा । बलित=युक्त । नीलकंठ=महादेव ।

भावार्थ—(कालिका-पक्ष का) इन्द्रधनुष ही जिसकी सुंदर मौँहें हैं, घने और बड़े बादल (पयोधर) ही जिसके उन्नत

कुच हैं, विष्णुछटाही जिसके जड़ाऊ ज्वरों की चमक है, जिसने अपने मुखसे सहज ही में चन्द्रमा के मुख की शोभा दूर कर दी है (वर्षा में चन्द्रमा मंज्योति रहता ही है), जिसके निर्मल नेत्रों से कमल की पंखाड़ियाँ शोभा-दलित हो गई हैं (वर्षा में कमलदल शोभाहीन हो जाते हैं)—केशवदास कहते हैं कि जिसने (कालिका ने) मतवाली हथिनियों की चाल छीन ली है (वर्षा में हाथियों की यात्रा भी बंद रहती है), जिसके विलुआओं का स्वच्छंद शब्द (शिल्ली आदि का शब्द), सुखदायी है, नीलाम्बर से युक्त हो कर (कालिका ने नीलाम्बर पहन लिया है और वर्षा में मेघाच्छन्न आकाश भी अति नील रहता है) जो नीलकंठ महादेव (वर्षा के मयूर गण) की मति को मोहित करता है वही कालिका देवी (पार्वती) हैं (या यह वर्षा है) ।

शब्दार्थ—(वर्षा पक्ष में) भौ=भय, डर । सुरचाप=इन्द्र-धनुष । प्रसुदित पर्योधर=उनसे हुए वादल (घनघोर घटा) । भू=पृथ्वी । ख=आकाश । नजराय=देख पड़ती है । तड़ि=विजली । तरलाई=चंचलता । सुख=सहज ही । मुख सुखमा ससी की=चंद्रमा की प्रभा । ने न अमल=नदियाँ निर्मल नहीं हैं । कमलदल दलित=कमलों के दल दलित हो गये हैं । निकाई=काई रहित हैं (सिवार काई इत्यादि नष्ट हो गये हैं) । क=जल । प्रवल क=जलकी प्रवक्त धारा । रेनुकाहर=धूल

को बहा ले जाने वाली । गमनहर=आवागमन बंद करने वाली । सु हंसक-सयद मुकुत=हंसों के शब्द से रहित (वर्षा में हंस बोलते नहीं, कहीं चले जाते हैं) । अंबर=आकाश । बलित=बादलों से युक्त । नीलकंठ=मयूर ।

भावार्थ—(वर्षा पक्ष का) हरित होकर ऐसी वर्षा श्रुतु आई है जिसमें अनेक भय हैं (अर्थात् सर्प विच्छू आदि के भय वा घर गिरने वा वज्रपात के भय), इन्द्रधनुष है, उन्हीं हुई घन-घोर बादलों की घटा है, और भूमि तथा आकाश में चंचल बिजली की चमक देख पड़ती है, चंद्रमा की सुन्दर प्रभा सङ्घ हो दूर हो गई है, नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं, कमलदल दलित हो गए हैं, जलाशय कई रहित हैं, (केशव कहते हैं कि) जलकी प्रसर धारा ने घूल को बहा दिया है और आने जाने वालों का गमनागमन रोक दिया है (इसी से हम भी सीता की खोज में कहीं जा नहीं सकते), सारा देश सुखप्रद हंस शब्द से रहित है (हंस कहीं चले गये हैं), आकाश बादलों से युक्त है, जिसे देख देख कर मोरों की मति मोहित होती है (वे मस्त हो हो कर नाचते हैं) । यह कालिका है या वर्षा आई है ।

अलंकार—संदेह से पुष्ट सभंगपद श्लेष ।

मूल—तारक छंद—

अभिसारिनि सी समझौ परनारी।सते मारग मेदन की अधिकारी
मति छोम महामद मोह छरै है।दिजराज सुमित्र प्रदोषमई है।२०।

शब्दार्थ—अभिसारिनि=अभिसारिका नायिका । परनारी=(१) परकीया स्त्री (२)वड़ी बड़ी नालियाँ । सत मारग=(१) धर्ममार्ग (२) अच्छे रास्ते । द्विजराज=(१)चंद्रमा (२)ब्राह्मण । सुमित्र=(१) अच्छे मित्र (२) सूर्य । प्रदोष = (१) बड़ादोष (२) अंधकार

भावार्थ—इस वर्षा से बनी हुई वड़ी बड़ी नालियाँ परकीयाभिसारिका सी हैं । जैसे वे (परकीया स्त्रियाँ) स्वधर्ममार्ग को भेटती हैं, वैसेही इस वर्षा में बड़ी बड़ी नालियों ने अच्छे मार्गों के मिटाने का (काट कर खराब कर देने का) अधिकार पाया है (वर्षा के जलप्रवाह से रास्ते बिगड़ गये हैं) । अथवा यह वर्षा किसी पापी मनुष्य की लोभ-मद-मोह इत्यादि से युक्त बुद्धि है, क्योंकि जैसे पापी की लोभमोहादि प्रसित बुद्धि ब्राह्मण और अच्छे मित्रों का बड़ा दोष करती है, वैसेही यह वर्षा चंद्रमा और चमकाले सूर्य को अंधकार में छिपाये रहती है ।

अलंकार—उपमा और श्लेष से पुष्ट उल्लेख ।

मूल—दोहा-वरनत केशव सकल कवि विपुस गाढ़ तम-दृष्टि ।
कुपुबुप सेवा ज्यों भई संतत मिथ्या दृष्टि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—विपुसगाढ़=अति सघन । तम=अंधकार । संतत=सर्वदा । दृष्टि=(१) नजर (२) आशा, उम्मेद ।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि वर्षा में ऐसे सघन अंधकार की उत्पत्ति होती है कि सर्वदा (रातोदिन) दृष्टि मिथ्या

प्रमाणित होती है (कुछ दिखाई नहीं पड़ता) जैसे घुरे मनुष्य की सेवा से कोई आशा फलीभूत नहीं होती ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—(राम) दुमिल सवैया—

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कलू दिन केशव देखि जिये ।
गति जानन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल ते शोधि सवै हठि के चरपा मिस दूर किये ।
अवधौ बिनु प्राण प्रिया रहिई कहि कौन हित् अवलंबि हिये २२

शब्दार्थ—कलहंस=छोटे और सुन्दर मधुर शब्द बोलनेवाले हंस । कलानिधि=चन्द्रमा । अनुरूपक=समानवाले, समताके । शोधि=खोज खोज कर । हित् = हितैषी ।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) सीता के वियोग में कलहंस, चन्द्रमा, खंजन और कमलों को देख देख कर कुछ दिन तक तो मैं जीवित रह सका, क्योंकि इन वस्तुओं को मैंने मन से सीता की गति, मुख, नेत्र और पैरों के समान वाले पदार्थ मान लिया था । पर कराल काल से यह भी न देखा गया (सीता को तो दूर ही कर दिया था) अब वर्षों के वहाने इन (दिखाने वाले) पदार्थों को भी खोज खोज कर हठ पूर्वक दूर कर दिया । अब बिना प्रिया के मेरे प्राण किसका अवलंबन करके रहेंगे ।

अलंकार—क्रम ।

(शरद-वर्णन)

मूल—दोहा—वीते वरपा काल यौ आई सरद सुजाति ।
गये अंध्यारी होति ज्यो चारु चाँदनी राति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—सुजाति=अच्छे कुल की सुन्दरी स्त्री ।

भावार्थ—वर्षा काल वीतने पर सुन्दरी शरद इस प्रकार आगई जैसे अंधेरी रात वीत जाने पर सुन्दर चाँदनी रात आ जाती है (तो आनन्द होता है) ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—मोटनकछंद—

दंतावलि कुंद समान गनो । चंद्रानन कुंतल भौर घनो ॥
भौहँ धनु खंजन नैन मनो । राजीवनि ज्यो पद पानि भनो ॥ २४ ॥
हारावलि नीरज हीय रमै । हँ लीन पयोधर अंबर में ॥
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे । हंसी गति केशव चित्त हरो ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—(छंद २४)—समान = (मानयुक्त) गर्विले, ।
कुंतल=वाल । धनु=धनुष—(वर्षा काल में वीर लोग अपने धनुष उतार कर रख देते हैं । शरद काल में उन्हें पुनः दुरुस्त करके पूजते हैं और काम में लाते हैं तथा नवीन धनुष भी बनाये जाते हैं) । राजीव=लाल कमल ।

(छंद २५)—नीरज=कुमुद वा अन्य सफेद पुष्प जो जल में पैदा होते हैं । अथवा मोती (ये भी शरद ऋतु में ही पैदा होते हैं) । पयोधर=(१)बादल (२) कुच । अंबर=(१)आकाश

(२) कपड़ा । पाटीर=चन्दन । हंसी गति=(१)हंसों की चाल
(२) हंसों की चालवाली ।

भाषार्थ--(पहले शरद को 'सुजाति' सुन्दरी कहा, अतः उसका रूपक छन्द २४, २५ में कहते हैं) छन्द २४--वह शरद सुन्दरी कैसी है । गर्वाल्ले कुन्द पुष्प ही--उसके दांत समझो, चन्द्रमा को ही मुख और भ्रमर समूह को केश मानो । वीरों के दुरुस्त कियेदृष्ट वा नवीन बने हुए धनुषों को भौहें समझो और लाल कमलों को हाथ पोंव कहो ।

छन्द २५--कुमुद पुष्प वा मोतियों को हृदय पर पड़े हुए हार समझो, और (चूकि 'सुजाति'--सुकुलजाता है अतः लज्जा से) कुचों को कपड़ों में छिपाये है (शरद में बादल आकाश में लीन हो जाते हैं--होटे ही नहीं अथवा बहुत कम होते हैं), चाँदनी ही का चन्दन तन पर लगाये हुए है, और हंसों की चाल रूपी हंसगति (मंदगति) से चलती हुई चित्त को हरती है ।

अलंकार--रूपक--(श्लेष से पुष्ट रूपक) ।

--मोटनक छन्द--

श्री नारद की दरसै मति सी । लोप, तम ताप अकीरति सी ॥
मानौ पतिदेवन की रति सी । सन्माराण की समझौ गति सी ॥२१॥
शब्दार्थ--तम=(१)अंधकार(२)अज्ञान । ताप=(१)त्रिविधि ताप(२)ताप, गर्मी । अकीरति=(१)अपयश(२)अकर्तव्यता ।

पतिदेवा=पतिव्रता स्त्री । रति=प्रेम । सन्मार्ग=(१)धर्ममार्ग
(२)अच्छे रास्ते । गति=(१)सुगति (२)चाल, यात्रा ।

भावार्थ—यह शरद ऋतु श्री नारदमुनि की मति सी दिख-
लाई पड़ती है, क्योंकि जैसे नारद जी की मतिसे (सलाह
वा उपदेशसे) अज्ञानांधकार, त्रिताप और अपयश का लोप
होता है, वैसे ही इस शरद से भी वर्षा का अंधकार, सिंह
के सूर्य की गर्मी तथा अकर्तव्यता (राजकाज दिम्बिजयादि,
ब्यापार, यात्रा आदि बंद रहते हैं) का लोप होता है। अथवा
इस शरद को पतिव्रता स्त्रियों के सच्चे प्रेम के समान मानो,
क्योंकि जैसे उनके प्रेम से स्वस्वामि-भक्ति रूपी सन्मार्ग की
चाल से औरों को सन्मार्ग पर चलने की चाल सूझ पड़ती
है, वैसेही इस शरद के आने से सब रास्ते सूझ पड़ने लगे
(सब मार्ग चलने योग्य हो गये)—अब हमे भी सीता के

खोज में आगे बढ़ना चाहिये ।

मूल—दोहा—लक्ष्मण दासी वृद्धसी आई सरद सुजाति ।
मनहु जगावन को हमार्ई धीते घरपा राति ॥ २७ ॥

भावार्थ—हे लक्ष्मण । यह शरद ऋतु उत्तम कुलजाता वृद्धी
दासी के समान आगई । मानो वर्षा रूपी रात्रि के धीतने
पर हमें जगाने आई है—(इस से स्पष्ट जान पड़ता है कि
राजकुमारों को जगाने के लिये वृद्धी दासियाँ रहती थीं)—
तात्पर्य यह कि अब सीता के खोज में सज्ज होना चाहिये ।

१) हंसों को च
कहा, का
छत्र २४-य
ही उनके त
को वेच न
हुए पतु
कहो।
पर परे
है क
में क
अथवा क
लगाने इ
से चलती

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

मूल—कुंडलिया—ताते नृप सुप्रीव पै जैसे सत्वर त
 कहियो वचन युझाय कै कुशल न चाह्यो ॥११॥
 कुशल न चाहो गात चहत ही बालिहि देख्यो ।
 करहु न सीता सोध काम बश राम न लेख्यो ।
 राम न लेख्यो चित लही सुख-सम्पति जाते ।
 मित्र कह्यो गहि बांह कानि कीजत है ताते ॥१२॥

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र । कुशल न चाहौ गात=क्या अपने
 शरीर की कुशल नहीं चाहते ! बालिहि देख्यो चाहत हो=
 बालि के निकट जाना चाहते हो (मरना चाहते हो) । सोध=
 सोज । राम न लेख्यो=राम को कुछ नहीं समझते । कानि=
 कजा ।

मूल—दोहा—लक्ष्मण किष्किधा गये वचन कहे करि क्रोध ।
 तारा तब समझारयो कान्हों बहुत प्रबोध ॥१२॥

मूल—दोषक छंद—

बोलि लये हनुमान तबे जू । ल्यावहु यानर बोलि सबे जू ॥
 धार लगे न कहूँ विरमाहीं । एक न कोउ रहै घर माहीं ॥१३॥

मूल—त्रिभंगीछंद—

सुप्रीव सँघाती, मुखदुति राती, केशव साधहि मूर नये ।

शब्दार्थ—सँघाती=साथी (जातिवाले) । राती=लाल । साधहि

=लक्ष्मण के साथ ही। सूर नये=नवयुवक उत्साही सूर वीर।
आकासबिलासी=आकाश में छलांग मार कर चलने वाले।
सूर प्रकासी=सूर्य के समान तेज वाले। आय गये=
रामजी के पास आगये। अवगाहन=खोजकरने। चाहन=
देखने। यूथप यूथ=दलपति सहित दलके दल। ऋक्षपति=
जामवंत।

मूल—दोहा—बुधि विक्रम व्यवसाय युत साधु समुक्षि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के मुंदरी दीर्घा हाथ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—बुधि=तात्पर्य यह कि ये बुद्धिमान हैं अतः भेद-
नीति से काम लेंगे। विक्रम=बली होने के कारण दंड भी
दे सकते हैं। व्यवसाय=तात्पर्य यह कि ये व्यवसाय-कुशल
हैं अतः दाम नीति (लेन देन) से भी कार्य साधन कर स-
कते हैं। साधु=शान्त स्वभाव होने से साम नीति से कार्य
साधन करेंगे। बल=सेना। अनंत=असंख्य।

भावार्थ—श्री राम जी ने हनुमान जी को चारो नीतियों में
कुशल समझ कर असंख्य सेना के साथ करके अपनी मुद्रि-
का दे कर दक्षिण की ओर विदा किया।

मूल—हीरक छंद*—

चंडचरन, छंडि धरनि, मंडि गगन धावहीं।

तत्क्षण हुर दक्षिण दिसि लक्ष्यहि नहि पावहीं ॥

*हीरक छंद दो मकार का है। एक २१ मात्रा का होता है। दूसरा धार्जिक जो
१८ अक्षर का होता है। यह धार्जिक हीरक है। इसका रूप है (म, घ, न, ज, न, र)

वात।
चाहे पात।
देखो।
न देखो।
है ताते।
करे
चाहे ही
हो। के
। करे
करि के।
प्रयोग
सके न
पर माहि
आए गये
विना

घोरधरन वीरवरन सिंधुतट सुभावहीं ।
नाम परम, धाम धरम, राम करम गावहीं ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—चंडचरण=चरणों के बली अर्थात् चलने वा कूदने में अति प्रबल (अघक) । छंडि धरनि=पृथ्वी को छोड़कर, उछाल मार कर । मंडि गगन=आकाशमार्ग में शोभित होते हुए । तत्क्षण=उसी समय, तुरंत (ज्योंही श्रीराम ने आज्ञा दी) । हुइ दक्षिण दिसि=दक्षिण की ओर मुस्त करके । उक्ष्यहिं=सीता को । धीर धरन=धैर्यवान् । वीर वरन=श्रेष्ठ वीर । सुभावहीं=स्वभाव से ही अर्थात् किसी भय वा निराशा से नहीं । नाम परम=परम पुनीत नाम । धामधरम=धर्म का मूल । रामकरम=राम जी के कृत्य (वालि-वध मुग्धाव-भैत्री इत्यादि) ।

भावार्थ—जिस समय श्री राम जी ने आज्ञा दी उसी समय तुरंत दक्षिण दिसा की ओर वे लोग कूदते फाँदते आकाश मार्ग से उड़ते जाने लगे । खोज करते हैं पर सीता को नहीं पाते । तब वे धैर्यवान् वीरश्रेष्ठ समुद्र के तट पर बैठ कर सहज स्वभाव से श्री राम जी के कार्यों को (लीलाओं को) बताने लगे (कहने लगे, चर्चा करने लगे) ।

मूल—(अंगद) अनुकूला, उद—

शब्दार्थ—अवाधि विनासी=अवाधि के दिन बीत गये (३०)

दिन का समय दिया गया था) । सकुच=लज्जा । जनक-
निहंता=पिता का वध करानेवाला (सुग्रीव) ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) सीता न मिली, और जितना
समय दिया गया था वह बीत गया । जो लौट कर घर जाते
हैं तो बड़ी लज्जा की बात है, मुझे तो सुग्रीव छोड़ेंगे नहीं
(अर्थात् प्राण दंड देंगे) अतः यही उचित है कि अब हम
सब यहीं समुद्र तटपर घर बनाकर बस रहें ।

मूल—(हनुमान) अचुकूलाछंद—

अंगद रक्षा रघुपति कीन्हों । सोध न सीता जल, थल कीन्हों ।
आलस छोड़ो कृत उर आनो । होहु कृतघ्नी जनि, सिख मानो ।

शब्दार्थ—सोध=खोज । कृत=एहसान, थराई । कृतघ्नी=
एहसान फरामोश, नमकहराम ।

भावार्थ—(अंगद ही इस यूथ के प्रधान थे । उनको हताश
देखकर हनुमानजी कहते हैं) हे अंगद ! राम जी ने तुम्हारी
रक्षा की है (यद्यपि पिता को मारा है, पर तब भी तुम्हें
युवराज्य पद दिया है) उस के बदले तुमने अभी पूर्ण कृतघ्नता
नहीं दर्शाई । तुमने सीता की खोज स्थल में तो की है पर
अभी जल में नहीं की (अतः तुम्हें समुद्रस्थ द्वीपों में खोजना
चाहिये) अतः राम जी का एहसान स्मरण करके तुम्हें
भालस्य छोड़ कर उद्योग करना चाहिये । कृतघ्नी मत बनो,
मेरी शिक्षा मानो ।

मूल—(अंगद) दंडकछंद (रूप घनाक्षरी)—

जीरण जटायुमीध घन्य एक जिन रौंकि, राषण विरथ कीन्हों
 निज प्राण हानि । हुते हनुमंत यलघंत तहां पांच जन,
 भूपन कछुक नररूप जानि ॥ आरत पुकारत ही
 राम राम बार बार, लीन्हों न छंडाय तुम सीता अनि भीति
 मानि । गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै भोगवै नरक
 घोर चोर को अभयदानि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—जीरण=बुद्धा । एक=अकेला । विरथ=रथहीन ।

हुते=थे । पांचजन=सुभाव, हनुमान, नल, नील और सुखेन ।

ही=थी । भीति=डर । न पुकार लागै=बचाने को न दौड़े ।

भोगवै=भोगता है । अभयदानि=दंड न देनेवाला ।

अलंकार—(अंगद जी हनुमान जी को उत्तर देते हैं)

बुद्धा जटायु घन्य है, जिसने अकेला ही होने पर रावण को
 रोका था और अपने प्राण देकर रावण को रथहीन कर
 दिया था । हे हनुमान ! तुम तो बली पाँच जन थे और
 कुछ कुछ नररूप धारी जानकर सीताने, तुम्हें कुछ मूषण भी
 दिये थे (जटायु को तो कुछ दिया भी न था) : तथा
 दुखित होकर बार बार राम राम कहकर पुकारती थी, तब
 ही तुमने सीता को क्यों नहीं छीन लिया, तब तो तुम
 अत्यंत डर गये थे (अब बड़ी बड़ी बातें मारते हो और
 मुझे कृतघ्न बतलाते हो) । सुनो ! नीति यह कहती है कि
 गाय, ब्राह्मण, राजा, और स्त्री को (विपत्ति में देखकर)

जो बचाने को न दौड़े और जो चोर को दंड न दे वह घोर नरक भोगता है—(कैसा सुहृत्तोड़ जवाब है)।

मूल—दोहा—सुनि संपाति सपक्ष है राम चरित सुख पाय ।
सीता लंका माँझ है खगपति दई बताय ॥३७॥

भावार्थ—संपाति=जटायु का भाई । सपक्ष है=पुनः नवीन पंखयुक्त होकर । खगपति=संपाति (आदर से खगपति शब्द कहा गया है) ।

मूल—दंडक—हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीकसी लिखत नभ पाहनके अंकको । तेज को निधान राम
मुद्रिका विमान कैथी, लच्छन को बाण छूठ्यो रावण निशंक
को ॥ गिरिगज गंड ते उड़ान्यो सुवरन अलि, सीता पद पंकज
सदा कलंक रंक को । हवाई सी छूटी केशोदास आसमान
में कमान कैसो गोला हनुमान चलयो लंकको ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—हरि कैसो वाहन=गरुड़ के समान (अतिवैग से) । हेमहंस=सुवर्ण के रंग का हंस । लीक=रेखा । पाहन =कसौटी । लच्छन=लक्ष्मण । गंड=गाल । सुवरन अलि=पीला भौंरा । कलंकरंक=कलंकरहित (जिसमें कलंक न हो) । हवाई=(बुँदेलखंडी शब्द) आतशवाजी का बाण । कमान=तोप ।

भावार्थ—(हनुमान जी की छलांग का वर्णन । सुन्दर नामक पर्वत पर से उछल कर उसपार सुवेल नामक पर्वत पर जा गिरे—उसीकी उपमायें हैं) विष्णु भगवान

के बाहन (गरुड़) के समान, या ब्रह्मा के पति हंस के समान, आकाशरूपी नीली कसौटी पर सने कीसी रेखा खींचे हुए (शांभतापूर्वक) उड़गये या वैज-निधान हनुमान रामचंद्र की मुद्रिका को विमान बनाकर उड़गये, या निशंक रावण के मारने को लक्ष्मण का बाण छूटा, या (सुन्दर नामक) पर्वत रूपी हाथी के गाल पर से पीला भौंरा उड़कर सीता जी के निष्कलंक पदकमल की ओर उड़गया, या आकाश में आतशबाजी का बाण छूट गया, या तोप के गोला के समान हनुमान जी लंका को चले ।

—उपमा और रूपक से परिपुष्ट संदेह ।

किष्किया कांड की कथा समाप्त ।

(सुन्दर कांड)

मूल—बोहा—उदधि नाकपतिशत्रु को उदित जानि बलवत ।
अंतरिच्छ ही लच्छि पद अच्छ सुयो हनुमंतशत्रु

शब्दार्थ—उदधि=समुद्र । नाकपतिशत्रु=मैनाक । उदित=उठता हुआ । अंतरिच्छ ही=आकाशही से । लच्छि=देखकर । पद अच्छ=(अक्षपद) नजरके चरणों से (केवल दृष्टि मात्र से) ।

भाषार्थ—बलवान हनुमान जी ने समुद्र में (विराम देने के हेतु) मैनाक को उठता हुआ देख कर आकाश ही से केवल दृष्टि के पैर से सुवा (वहाँ उतर कर विश्राम नहीं किया) ।

सूचना—'पदअक्ष' शब्द में विसंधि और यतिभंग दूषण पड़ता है।

मूल—दोहा—बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत वेहि, कदे उदर कहँ फारि०

शब्दार्थ—बीच=आधे मार्ग में। सुरसा=सर्पों की माता।
सिंहिका=राहुभी माता, छायाग्राहिणी। कदे=निकले।

मूल—तारक छंद—कछुप्राति गये करि दंश दसासी। पुसमाँझ
चले बनराजि-विलासी। जग ही हनुमंत चले तजि शका।
मग रोकि रही तिय है तव लंका ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—करि दंश दसा सी=(मसक समान रूप कपि
धरी-तुलसी)। दंश=डँस, मसा। बनराजिविलासी=वनो
में विचरनेवाले हनुमान जी। तिय है=स्त्रीरूप धर कर।

मूल—(लंका) तारक छंद—कहि मोहि उलंघि चले तुम
को हो। अति सुक्ष्म रूप धर मन मोहो ॥ पठये केहि, कारण
कौन चले हो। सुर हो किधौ कोउ सुरश मले हो ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—मोहि उलंघि=मेरी अवहेलना करके।

भावार्थ—(लंका नाम्नी राक्षसी हनुमान जी से पूछती है)
वतलाओ तुम कौन हो, जो मेरी अवहेलना करके नगर के
भीतर जा रहे हो, तुम अति छोटा रूप धारण करके मन को
धोखा देते हो (अर्थात् छोटा जंतु जानकर कोई तुम्हारी
परवाह न करेगा ऐसा समझकर तुमने धोखा देने की ठान ली

है) । किस कारण और किसके भेजे हुए तुम लंका को चले हो, तुम कोई सुर हो, वा भलेमानस इन्द्र हो ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—(हनुमान)—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये ।

तिनकी तरुणी अवलोकन आये ॥

(लंका)—हति मोहि महामति भीतर जैसे ।

(हनुमान) तरुणीहि हते कयलीं मुख पेये ॥ ४३ ॥

—(हनुमान जी कहते हैं) हम राम जी के भेजे हुए बानर हैं, उनकी स्त्री को खोजने आये हैं । (लंका कहती है) हे महामति ! मुझको मारकर तब नगर के भीतर जाइये (जीते जी मैं भीतर न जाने दूंगी) । (तब हनुमान जी कहते हैं) स्त्री को मार कर कब तक मुख पावोगे (अर्थात् स्त्री को मारना महापाप है—कैसे मारें) ।

मूल—तारक छंद—(लंका) तुम मोरहि पै पुर पैठन पैही ।

हठ कोटि करै घरही फिरि जैही । हनुमंत बली तेहि थापर मारी । तजि देह मई तबही घर नारी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—थापर=धप्पड़ ।

विशेष—आगे के छंद में लंका अपना हाल स्वयं कहती है ।

मूल—(लंका) चौपारं छंद—

धनदपुरी हैं रावन लीनी । बहुविधि पापन के रस मांजी ।
चतुरानन चित्त चितन कोन्होकर करुणा करि मांऊई शंकी ॥

जब दसकंठ सिया हरि लैहैं । हरि हनुमंत विलोकन पेहैं ॥
जब वह तोहि हतै तजि संका । तब प्रभु होय विभीषन लंका ४६
चलन लगो जब ही तव कीजौ । मृतक सरीरहि पावक दीजौ ॥
यह कहि जात भई वह नारी । सब नगरी हनुमंत निहारी ४७ ॥
शब्दार्थ—(४६) घनद=कुवेर । भीनी=भीमी हुई । वर=
वरदान । (४६) हरि=वानर ।

मूल—चौपाई—तव हरि रावन सोचत देख्यो । मानिमय पलिका ४
की छवि लेख्यो ॥ तहँ तरुणा बहु भाँतिन गावैं । बिच बिच
आवझ वीण बजावैं ॥ ४८ ॥

भावार्थ—तव वानर (हनुमान) ने रावण को माषि जटित
सुवर्ण के पलंग पर सेते देखा । वहाँ बहुत स्त्रियाँ गाना गाती
थीं, और बीच बीच में ताशे और वीणा भी बजाती थीं ।

मूल—चौपाई छंद—मृतक चिता पर मानहु सोहे । चहुँ दिख
प्रेतवधु मन मोहैं ॥ जहँ जहँ जाय तहाँ दुख बूनो । सिय बिन
हे सिंगरो पुर सूनो ॥ ४९ ॥

भावार्थ—(रावण पलंग पर सोता है, वह कैसा जानपड़ता
है) मानो चिता पर मुर्दा पड़ा है, और इर्द गिर्द गाती
बजाती हुई स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो प्रेतनियाँ हैं ।
(तदनन्तर अन्यान्य घरों को देखा, पर) जहाँ जहाँ हनुमान
जी जाते हैं तहाँ तहाँ (सीता को न पाकर) उन्हें बड़ा दुख
होता है । सारा नगर (प्रति घर ढूँढ़ डाला) सीता बिना
शून्य देखा ।

मूल—मुजंगप्रयात छंद—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं ।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं ॥ कहूँ यक्षिणी पक्षिणी छै
पढ़ावैं । नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—किन्नरी=किन्नरों की कन्यायें । किन्नरी=सारंगी ।
सुरी= देव कन्यायें । आसुरी=असुर कन्यायें । यक्षिणी=
यक्षकन्यायें । पक्षिणी=शारिका, मैना आदि पक्षी । नगी-
कन्यका=पार्वत्य प्रदेश की कन्यायें (कश्मीर वा तिब्बत देश
की) । पन्नगी=नागकन्यायें ।

भावार्थ—कहीं किन्नर कन्यायें सारंगी लिये बजा रही हैं,
कहीं देव कन्यायें तथा असुर कन्यायें बाँसुरी में गीत गा रही
हैं । कहीं यक्षकन्यायें शारिका इत्यादि को पढ़ा रही हैं, कहीं
पार्वत्य प्रदेशी कन्यायें नागकन्याओं को नचा रही हैं
(अनेक प्रकार के वैभवसूचक राग-रंग हो रहे हैं) ।

मूल—मुजंग प्रयात छंद—पिये एक हाला गुहै एक माठा ।
बनी एक वाला नचै चित्रशाला ॥ कहूँ कोकिला कोक की
कारिका को ॥ पढ़ावैं सुवा लै सुकी सारिका को ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—हाला=शरब । चित्रशाला=रंगशाला, नाचपर ।
कोक की कारिका=कोकशास्त्र के श्लोक । कोकिला=कोकिलवंती
स्त्रियों । सुकी=सुनी । सारिका=साये, मैना (पक्षी) ।

भावार्थ—कहीं कोई स्त्री मदिरा पीती है, कोई माला गूँथती
है, कोई बनी ठनी युवती नाचपर में नाच रही है, कहीं कोई

कोकिलकंठी स्त्री सुवा को सुग्री और मैना के साथ लेकर (पिजरो में एकत्र करके) कोकशास्त्र के मंत्र (अलिगान चुंवनादि की परिभाषायें) पढ़ा रही है।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—फिख्यो देखि कै राजशाला सभा का। रह्यो रीझि कै, वाटिका की प्रभा को ॥ फिख्यो ओर चौहूँ चितै शुद्धगीता। बिलोकी भली सिंसिपामूल सीता ॥५२॥

शब्दार्थ—राजशाला=राजभवन (रावण का महल)। प्रभा=सुन्दर शोभा। ओर चौहूँ=चारों ओर। शुद्धगीता=सर्व प्रशंसित (सीता का विशेषण है)। सिंसिपा=(शिशिपा) शीशमवृक्ष। सिंसिपामूल=शीशम के नीचे।

भावार्थ—राजमहल को देखकर, हनुमान राजसभा की ओर गये और उसका सौन्दर्य और वैभव देखकर रीझ रहे। (जब सीता को कहीं नहीं देखा तब) वाटिका की ओर गये और चारों ओर घूम कर देखा तो एक शीशम के पेड़ के नीचे सर्व प्रशंसित सीता को बैठे देखा।

(सीता की विधोगिनी मूर्ति)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—धरे एक बेणी मिली मूल सारी। मृणाली मनो पंक तें काहि डरि ॥ सदा राम नामै रूँ दीन चानी। चहूँ ओर हैं राफसी दुःखदानी ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—धरे एक बेणी=सब बाल उलझ कर एकत्र होकर एक लंबी जटा सी बन गई है। मृणाली=कमलदंड, सुरार।

पंक=कीचड़ । ररै=रटती है । राकसी=राक्षसी ।

भावार्थ—(हनुमान जी ने सीता जी को किस रूप में देखा कि) सब बाळ उलझ कर सिर पर एक जटा सी बन गई है और साड़ी मैली हो रही है । ऐसी जान पड़ती है जैसे कीचड़ से निकाली हुई मृगर हो । सदा वीन बाणी से राम शब्द रटती हैं, और चारों ओर दुःखदायिनी राक्षसियाँ घेरे हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंग प्रयात छन्द—प्रसी बुद्धि सी चित्त चितानि मानो । किधौ जीभ इंतावली में बखानों ॥ किधौ घेरि के राहु नारीन लीनी । कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मानो चित्त की चिंताओं से बुद्धि प्रसी हो, या दोंतों के बीच में जीभ ही कही, या राहुकी सियों ने सुन्दर अमृतयुक्त चंद्रकला को घेर लिया हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—भुजंग प्रयात छन्द—किधौ जीव की जोति मायाव लीनी । अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥ मनो संवर लीन में कामवामा । हनुमान ऐसी लखी राम रामा ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—जीव की जोति=सच्चिदानन्द की अंश स्वरूपा जी-यात्मा । माया=अज्ञान कृत्य । अविद्या=सांसारिक विषयों में लीन बुद्धि । विद्या=पारमार्थिक बुद्धि । प्रवीनी=निपुण । संवरलीन=शंवर नामक असुर की सियों । कामवामा=रवि ।

राम रामा=रामपत्नी सीता ।

भावार्थ—या माया में लीन साचिदानंद की अंश स्वरूपा जीवात्मा है, या निपुण पारमार्थिक बुद्धि सांसारिक विषय संबन्धी बुद्धियों में फँसी है, या मानो शंकरासुर की स्त्रियों के बीच में रति है, श्रीहनुमान जी ने सीता जी को ऐसी दशा में देखा ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

(रावण का आना और सीता प्रति वार्ता)

श्रुल—भुजंगप्रयातछंद—तहाँ देव द्वेपी दसग्रीव आयो ।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो ॥ सवै अंगलै अंग ही में
दुरायो । अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—देवद्वेपी=देवताओं का शत्रु । दसग्रीव=रावण ।
सवै....दुरायो=अति लज्जा से सब अंगों को सिकोड़कर बैठी ।
अधोदृष्टिकै=नीचेको दृष्टि करके ।

भावार्थ—वहाँ उसी समय देवशत्रु रावण आगया । उस का आगमन सुनकर देवी सीता अत्यंत दुखी हुई और लज्जासे सिकुड़ कर बैठ गई और नीचे को दृष्टि करके रोने लगी (जिससे आँसुओं की धारा बह चली) ।

श्रुल—(रावण) भुजंगप्रयातछंद—सुनौ देवि मोपै कइ दृष्टि
दीजे । इतो सोच तो राम काजे न कीजे ॥ वसै दंडकारण्य
देखै न कोऊ । तु देखै महा वावरो होय सोऊ ॥ ५७ ॥

भावार्थ—(रावण सीतापति कहने लगा) हे देवि ! मुझ पर कुछ तो कृपादृष्टि करो, राम के लिये इतना सोच मत करो । वे राम तो वनवासी हैं, कोई उन्हें देखता भी नहीं (कोई जरा भी सम्मान नहीं करता—मैं राजा हूँ, सम्मानित हूँ) वे राम ऐसे भेष से हैं कि जो कोई उन्हें देखे वह भी बावला हो जाय (तपस्वी भेषसे हैं अतः शृंगार मय सुन्दर रूप नहीं है) ।

५ रावण के वचनों का साधारण अर्थ तो विरोधी पक्ष में निन्दामय जान पड़ता है, पर रामभक्त टीकाकार सरस्वती उक्तार्थ के बलपर एक दूसरा अर्थ भी करते हैं ।

सरस्वती उक्तार्थ—हे देवि ! अब मुझ पर कृपादृष्टि करो मैं शीघ्र इस निश्चर शरीरसे मुक्ति पाऊँ । (यदि कहो कि रामभजन करके मुक्तिकी इच्छा कर, तो उसका उत्तर यह है कि) मैं राम भजन की इतनी चिन्ता नहीं करता—जितनी चिन्ता तुम्हारे भजन की है, क्योंकि राम का भजन ऐसा कठिन है कि दंडकारण्य में रहनेवाले तपस्वियों में से भी कोई उन राम को नहीं देख सकता (और आप तो प्रत्यक्ष मेरे सामने मौजूद हैं) और जो कोई उनको देख पाता है वह महा बावला ही होता है अर्थात् शंकर सरस्वती परमहंस-स्वरूप लोगही उनके दर्शन पा सकते हैं—(मैं तामसी प्रकृति के कारण उस उच्च परमहंसपद तक पहुँच नहीं सकता, अतः

का भजन तो मुझ से न हो सकेगा, आपकी ही शरणलेता
(, आपही कृपादृष्टि से मुझे मुक्ति दीजिये)।

लंकार—व्याजस्तुति।

ल—भुजंगप्रयातछंद—कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहे।
हेतु नम्र मुंडानहीं को सदा है ॥ अनाथ सुन्यो में अनाथानु-
गारी। वसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥ ५८ ॥

॥वार्थ—(रावणपक्षका) तेरा पति राम कृतघ्नी है
(क्योंकि तू तो सहानुभूति से उनके साथ वन में आई और
उन्होंने तुझे अकेली वन में छोड़ शिकार में मन लगाया,
तेरी कुछ परवाह न की) कृपण भी है (तुझे अच्छे अच्छे
वस्त्राभूषण देकर तेरा सम्मान नहीं करता, मैं तुझे अच्छे अच्छे
वस्त्राभूषण दूँगा) वह कुकन्याओं को चाहता है (पर स्त्रियों
का प्रेमी है—शवरी इत्यादि को चाहता है) सदा नगे और
मुड़िया साधु वैरागियों का हितुवा है अर्थात् राजसी ठाट
वाट कुछ भी नहीं है । स्वयं अनाथ (निराश्रय) है और
अनाथों ही का आश्रयी है (राजपाट कुछ भी नहीं और न
राजों से मेल ही है) उसके चित्त में सदा जटाधारी दंडी
मुंडी (तपस्वी ही) बसा करते हैं अर्थात् वह तुझ जैसी
सुन्दरी स्त्री की कदर नहीं जानता, अतः तुझे समुचित प्यार
नहीं करता ।

नोट—नीति—कुशल रावण पति के दोष दिखलाकर सती

सीता को निजवश में करना चाहता है ।

सरस्वतीउक्तार्थ—राम कृतात्री हैं अर्थात् भक्तों के समस्त अच्छे बुरे कर्मों को नाश करने वाले हैं, कुदाता हैं अर्थात् (कु=पृथ्वी) पृथ्वी देनेवाले हैं (दासों को राजपाट सब कुछ देते हैं) और कु-कन्या (पृथ्वी की पुत्री) सीता को चाहते हैं, नंगे दंडी मुंडी (साधु परमहंसादि) इत्यादि के परम हित हैं, स्वयम् अनाथ हैं (जिसका कोई भी नाथ न हो—जिसके ऊपर कोई न हो स्वयम् परम स्वतंत्र हो) और अन्य अनाथलोग (आश्रयहीन जन) उनके पीछे चलते हैं (उनका आश्रयलेते हैं) और दंडी (सन्यासी लोग) और जटा तथा मुंडमालधारी शिवजी के चित्त में बसते हैं ।

अलंकार—छेप और व्याजस्तुति ।

मूल—भुजंगप्रयात—तुम्हें देवि दूषण, हित, ताहि मानै । उदासीन तोसो सदा ताहि जानै ॥ महा निर्गुणी नाम ताको न लीजे । सदा दास मोपै छपा क्यों न कीजे ॥ ५९ ॥

भावार्थ—(रावणपक्षका) हे देवि ! तुम्हारा पति राम वसी को अपना हित समझता है जो तुम्हें दूषण देता है (तुम्हारी निंदा करता है) अतः उसको तुम्हें अपनी ओर से सदा उदासीन समझो (उसे तुम्हारी कुछ परवाह नहीं है) । वह महा निर्गुण है (उस में कोई गुण नहीं है) उसका नाम मत लो । और मैं तो आपका सदा दासवत् पूजन करूँगा ।

मेरे अपर कृपादृष्टि क्यों नहीं की जाती।

दूसरा अर्थ—(भक्तपक्षका)—हे देवि ! श्री राम जी
उन्हीं को हित् समझते हैं जो तुम्हारे देवीरूप (लक्ष्मी)
को दोषपूर्ण समझकर धन सम्पत्ति की इच्छा नहीं करते और
जिसे सदा ही तुम्हारी ओर भे उदासीन जानते हैं । वे महा
निर्गुण हैं (सत्-रज-तम से परे अर्थात् त्रिगुणातीत हैं)
उनका कुछ नाम ही नहीं है इसी से उनका नाम ही नहीं
जपा जा सकता—वे पूर्ण निर्गुण ब्रह्म हैं, उनकी उपासना
मुझसे न हो सकेगी । आपतो प्रत्यक्ष मूर्तिमान सगुण रूपा
मेरे सामने मौजूद हैं । आप मुझे अपना सदैव का दास
समझ कर कृपा क्यों नहीं करती (कृपादृष्टि से मुक्ति प्रदान
क्यों नहीं करती) ।

अलंकार—रूप, व्याजस्तुति

मूल—भुजंगप्रयात—अदेवी नृदेवीन की होहु रानी । करे खेव
वानी मधौनी मृडानी ॥ लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावें ।
सुकेसी नचें उर्वसी मान पावें ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—अदेवी=राक्षसियाँ । नृदेवी=रानियाँ । वानी=
सरस्वती । मधौनी=(मधवानी) इन्द्रकी स्त्री शची । मृडानी=
भवानी, पार्वती । किन्नरी=(१) किन्नरों की स्त्रियाँ (२)
सारंगी । सुकेसी=अप्सरा विशेष । उर्वसी=अप्सरा विशेष ।

भावार्थ—(रावणपक्षका) पत्नी रूपसे मेरे सहलों में चल

कर रहो और मेरे घर जो राक्षसियाँ चा नरकन्यायें मेरी पत्नी हैं उन सब की रानी (पूज्य) बनो । (ऐसा करने से) सरस्वती शची और पार्वती भी तुम्हारी सेवा करेंगी । किन्नर कन्याएँ सारंगी लिये तुम्हें गीत सुनावेंगी, और सुकेशी उर्वसी इत्यादि अप्सराएँ तुम्हारे सामने नाच कर अपने को सम्मानित समझेंगी—अर्थात् तुम्हें सब रानियों में सर्वश्रेष्ठ पद दूँगी और सब प्रकार के भोग विलास करोगी ।

दूसरा अर्थ—(भक्तपथ का) हे सीता ! दैत्यकन्याओं और राजपानियों की भी रानी हो, तुम्हारी सेवा सरस्वती, शची और भवानी भी करती हैं, सारंगी लिये किन्नरकन्यायें तुम्हारे सामने गीत गाती हैं और सुकेशी तथा उर्वसी इत्यादि अप्सराएँ तुम्हारे सामने नाचकर सम्मान पाती हैं (तुम समस्त शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ शक्ति हो) ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—मालिनीछन्द—तुन विव देर बोली साय गभीर यानी ।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी ॥ दूसरघसुत द्वेपी
वद्र प्रह्ला न भासै । निसिचर घपुरा तू क्यों न स्यो मूढ
नासै ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—गभीर=निर्भयता से । भासै=शोभित नहीं होते ।
स्यो=सहित ।

भावार्थ—सीता जी ने एक तिनका बीच में करके रावण को निर्भयतायुक्त उचर दिया कि हे शठ रावण ! तू क्या और

तेरी राजधानी क्या ? जब राम से वैर करके रुद्र और ब्रह्मा भी शोभा नहीं पा सकते तो तू बेचारा निश्चर (ऐसा करने से) क्यों न समूल नष्ट हो जायगा।

मूल—मालिनीछन्द—अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी । खल सर खर धारा क्यों सहै तिक्ष ताकी ॥ विडकन घन घूरे भाक्षि क्यों वाज जीवै । सिसिर ससिथ्रीको राहु कैसे सु छीवै ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—तनु=वारीक । तिक्ष=तीक्षण । विडकन=गलीज के कण । घन=बहुत । ससिथ्री=चंद्रमा की शोभा । छीवै=(बुंदेलखंडी) छुवै ।

भावार्थ—हे रावण ! जिन की खींची हुई पतली धनुरेखा तुझ से जरा भी लौधी नहीं गई, उन के तेज वाणों की तीक्षण धारा तू कैसे सह सकता है । घूरे में पड़े हुए बहुत से विष्टाकणों को खाकर वाज पक्षी कैसे जीवित रहैगा— (तेरा राज वैभव मैं विष्टावत् समझती हूँ)—और तू मुझे उसी तरह नहीं छू सकता जैसे शिवजीके सिर पर के चंद्रमा को राहु नहीं छू सकता ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति से पुष्ट दृष्टान्तः ।

मूल—मालिनीछन्द—उठि उठि शठ ह्यौ ते भाग्य तौलों अभागे । मम बचन विसर्पी सर्प जौलों न लागे ॥ विकल सकुल देखौ आसुही नास तेरो । निपट शृतक तौकों रोप मारै न मेरो ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—विसर्पी=तेज चलनेवाले । आसु=अति शीघ्र ।

भावार्थ—हे अभागे रावण । उठ और यहाँ से तब तक भंग कर अपने प्राण बचाले जब तक मेरे शीघ्र गामी वचन-सर्प तुझे नहीं डसते । मैं शीघ्र ही कुलसहित तेरा नाश देख रही हूँ, तुझको निपट मृतक जानकर मेरा रोप तुझे नहीं मारता ।

मूल—दाहा—अवधि दई द्वै मासकी कही राक्षसिन बोलि ।
ज्यो समुझे समुझायो युक्तिछुरि सों छोलि ॥६४॥

शब्दार्थ—युक्ति छुरी सों छोलि=इसका भाव यह है कि यदि कुछ कष्ट पहुँचाने की जरूरत पड़े तो कष्ट भी पहुँचाना ।

अलंकार—व्याजोक्ति ।

(सीता-हनुमान संवाद)

मूल—चामरछन्द—देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कयो ।
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि है रथी ॥
ठौर पाइ पैतपुत्र डारि मुद्रिका दई ।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥६५॥

शब्दार्थ—जु अंग आगि है रथी=तू सर्वांग अभिवत् हो रहा है (अर्थात् लाल पल्लवयुक्त हो रहा है और मुझे विरहाग्नि से संतप्त करता है) । ठौर=भौका, सुअवसर । उठाय हाथ कै लई=(बुँदिलखंडी मुहावरा है) हाथ से उठा ली, उठा कर हाथ में ले ली ।

भावार्थ—अशोक वृक्ष को नवपल्लव युक्त देख कर सीता जी ने कहा, हे अशोक ! तू जो सर्वांग अभिमय हो रहा है, मुझ पर कृपा कर और थोड़ी अग्नि मुझे भी दे (जिससे मैं जल मरूँ) । ऐसा अच्छा मौका पाकर हनुमान जी ने ऊपर से श्रीराम जी की अँगूठी गिरादी (और उसे अभिक्रमण जान कर) सीता जी ने इधर उधर देख कर—कि कोई है तो नहीं—अपने हाथ से उठाली ।

अलंकार—भ्रम ।

मूल—तेमरछंद—जब लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥
 यह कहौ लखि तब ताहि । मनि जटित सुंदरी आहि ॥ ६६ ॥
 जब वाँचि देख्यो नाँउ । मन पर्यो सभ्रम भाउ ॥
 आवाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥ ६७ ॥
 विहुरी सु कौन उपाउ । केहि आनियो यहि ठाँउ ॥
 सुधि लहौ कौन प्रभाउ । अब काँहि वृश्न जाउ ॥ ६८ ॥
 चहुँ ओर चितै सत्रास । अवलोकियो आकास ॥
 तहँ साख वैठो नीटि । तब पर्यो वानर दीटि ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—(६६) सियरी=ठंडी । (६७) सभ्रम=भारी भ्रम ।
 आवाल ते=वचन से । (६८) सुधि=ठीक हाल । कौन प्रभाउ=किस भाँति । (६९) सत्रास=दर से (दर यह कि रावण कोई राक्षसी माया तो नहीं रच रहा है) । अवलोकियो=देखा । नीटि=सुशकिलसे, कठिनता से ।

मूल—तोमरछंद-तब कह्यो को तू आहि । सुर असुर मोतन चाहि
के पक्ष पक्ष-विरूप । दसकंठ वानर रूप ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—मोतन चाहि=मेरी तरफ देख । पक्ष=मेरे पक्ष
वाला (राम पक्ष का कोई दूत वा सहायक) । पक्ष-विरूप=
शत्रु पक्ष का (रावण की ओर का कोई मायावी हितैषी) ।

भावार्थ—तब सीताजी ने पूछा तू कौन है ? तू सुर है वा
असुर ? मेरी ओर तो देख । तू मेरे पक्ष का है वा शत्रुपक्ष
का, अथवा तू रावण ही है वानर रूप धर कर मेरे साथ
माया रचता है ?

अलंकार—संदेह ।

मूल—कहि आपनो तू भेद । ननु चित्त उपजत खेद ॥
कहि येनि वानर पाप । ननु तोहिँ दैहीं शाप ॥ ७१ ॥
उरि वृक्ष साधा श्रुमि । कपि उतरि आयो भूमि ॥
सदेस चित महुँ चाहि । तब कही बात बनाइ ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—(७१) खेद=डर । पाप=छल कपट । (७२)
सदेस चित महुँ चाहि=सीता के चित्त में राम का सदेसा पाने
की चाह समझ कर ।

मूल—पद्मटिकाछंद—

कर जोरि कह्यो हौँ पौनपूत । जिय जननि जानि रघुनाथ हूँ
रघुनाथ कौन दशरथनंद । दशरथ कौन अज तनय चंद्र ॥ ७३ ॥
कहि कारण पड्ये यहि निकेत । निज देन लेन सदेस हेत ।
गुण रूप सील सोभा सुभाउ । कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ ॥

शब्दार्थ—(७३) चंद=इस शब्द का अन्वय 'अज' के साथ है अर्थात् 'अजचंद' । (७४)—निज देन लेन संदेस हेत=निज संदेसा पहुँचाने के लिये और आपका संदेसा लेजाने के लिये । 'हित' शब्द का अन्वय लेन तथा देन के साथ है—अर्थात् देन हेत, लेन हेत ।

भावार्थ—(छंद ७३) बहुत सरल है । (छंद ७४) सीता जीने पूछा कि राम ने तुझे यहाँ क्यों भेजा है, हनुमान ने कहा 'अपना संदेसा तुम्हें सुनाने के लिये और तुम्हारा संदेसा उनके पास लेजाने के लिये । (तब पुनः सीताने कहा) राम जी के कुछ लक्षण बताओ—उनमें कौन सा विशेष गुण है, उनका कैसा रूप है, कैसा शील है और स्वभाव कैसा है—(ये सब बातें हनुमान की सत्यता जाँचने के लिये पूछी गई हैं) ।

मूल—(हनुमान)—पद्मटिका छंद—

अति जदपि सुमित्रानंद भक्त । अति सेवक हैं, अति सुर सक ।
अरु जदपि अनुज तीनों समाने । पै तदपि भरत भावत निदान ७५

भावार्थ—हनुमानजी श्रीराम का विशेष गुण बतलाते हैं कि यद्यपि लक्ष्मणजी उनके बड़े भक्त हैं, उनकी बड़ी सावधानी से सेवा करते हैं, बड़े शूर और शक्तिमान हैं, और यद्यपि तीनों ही भाई ऐसे हैं, तथापि भरत ही पर राम का अधिक प्रेम रहता है ।

मूल-पद्मटिकाछन्द-

ज्यों नारायण उर श्रीवसन्ति । त्यों रघुपति उर कहु दुति लसन्ति ।
जग जितने हैं सब भूमि भूप । सुर असुर न पूर्व रामरूप ॥ ७६ ॥

भावार्थ—(राम के रूप की विशेषता) जैसे नारायण भगवान के हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न है, त्योंही श्रीरामजी के हृदय में भी युविमान चिह्न है । इस जगत में जितने रावे हैं, वे और सुर अथवा असुर कोई भी राम के सौन्दर्य की बराबरी नहीं कर सकता ।

मूल—(सीता)—निशिपालिकाछन्द—मोहि परतीति यहि माँति
नहिं भावई । प्रीति केहि धौं सुनर बानरनि क्यों भरं । बात
सब यणि परतीति हरि त्यों दई । आँसु भन्हाय उर लाव
मुँदरी लई ॥ ७७ ॥

भावार्थ—(सीताजी पुनः बोलीं) इन बातों से भी मुझे विश्वास नहीं होता कि तू सचमुच रामका दूत है । अच्छा-बह बतला कि नर बानरों में प्रीति कैसे हुई ? अर्थात् श्रीरामजी और तुझ से जान पहचान कैसे हुई और मित्रता कैसे जुड़ी । तब हनुमान जी ने सब बातें (जैसा सीता जी जानना चाहती थीं—सीताजी का पद-भूषण, गिराना, और सुग्रीवद्वारा उन पद-भूषणों का रामजी के पास पहुँचना, सुग्रीव-मित्रता इत्यादि) कह कर विश्वास करवा दिया । तब सीता जी के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये और उन आँसुओं से मुँदरी को

भिगोकर उसे हृदयसे लगा लिया ।

नोट—इस प्रसङ्ग में सीताजी का चालुर्य, नीति-निपुणता, पातिव्रत इत्यादिका अच्छा वर्णन है । मायावी राक्षसों के बीच धोखा हो जाने का भय था, अतः सीता ने हनुमान की अच्छी तरह परीक्षा करके तब उनपर विश्वास किया । मुद्रिका पाकर सीता की मनोभावनाओं की अधिकता वर्णन करने में केशव ने अपनी प्रतिभा का कमाल दिखलाया है ।

मूल—दोहा—आंसु वरपि हियरे हरपि सीता सुखद सुभाइ ।
निराखि निराखि पिय मुद्रिकाई वरनति है बहुभाइ ॥७८॥

शब्दार्थ—सुखद सुभाइ=सहज ही करुणामूर्ति । बहु भाइ=विविध प्रकार से ।

नोट—आगे इस प्रसंग भर में उल्लेख अलंकार मानना उचित होगा । अलंकार प्रत्येक छन्द में 'सन्देह' होगा ।

मूल—पदघटिकाछन्द—
यह सूर किरण तम दुःख हारि । ससिकला किधौ उर सीतकारि
कल कीरति सी सुम सहित नाम । के राज्यथी यह तजी राम ७२

शब्दार्थ—सीतकारि=शीतल करनेवाली । सहित नाम=उस अंगूठी पर "श्रीरामोजयति" खुदा हुआ था ।

भावार्थ—(जात की जी विचार करती हैं कि) क्या यह सुंदरी सूर्य किरण है क्योंकि इसने मेरे दुःखरूपी अंधकार को हर लिया, या यह चन्द्रमाकी कोई कला है, क्योंकि

मेरे हृदय को शीतल कर रही है (विरह-वाप शान्त है) या नाम सहित यह श्री राम की सुन्दर कीर्ति । क्योंकि जैसे श्रीराम के नाम-स्मरण वा कीर्ति-श्रवण से को आनंद प्राप्त होता है वैसाही आनंद यह मुझे देरह अथवा रामने इसे राज्यश्री का चिह्न जान राज्य की इसे भी त्याग दिया है ।

अलंकार—संदेह ।

१—पद्मटिकाछंद—

कै नारायण उर सम लसंति । सुम अंकन ऊपर श्री व
पर विद्या सी आनंद दानि । सुत अष्टापद मन शिवा मा

शब्दार्थ—अंकन=(१) शरीर, वक्षस्थल(२) अक्षर ।

(१)श्रीवत्स चिह्न (२) 'श्री' शब्द । अष्टापद=(१)

अर्थात् सिंह (२)मुषर्ण । शिवा=पार्वती (शिव की क

कारिणी शक्ति) ।

भावार्थ—अथवा यह मुँदरी श्रीनारायण भगवान का

ही है, क्योंकि जैसे श्रीनारायण के वक्षस्थल पर श्रीवत्स

चिह्न है, उसी प्रकार इसमें भी सब अंकों के ऊपर

अंको से पहले) 'श्री' वसती है—(उस अँगूठी के नगीने

"श्रीरामो जयति" शब्द लिखा हुआ था), या यह परा

है, क्योंकि उसी के समान यह भी आत्मानन्द देरह

या इसे (कल्याणकारिणी) पार्वती ही समझूँ, क्योंकि

पार्वती अष्टापदयुक्त (सिंह सहित) रहती हैं वैसेही यह भी अष्टापद (स्वर्ण) युक्त अर्थात् सुवर्णमय है ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट संदेह ।

मूल—पदघटिकाछंद—
जनु माया अक्षर सहित देखि । कै पत्री निश्चयदानि लेखि ॥
पिय प्रतीहारिनी सी निहारि । श्री रामोजय उच्चार करि ॥८१॥

शब्दार्थ—अच्छर=(१) अक्षर ब्रह्म, अविनाशी ब्रह्म । (२) लिपि अक्षर । प्रतिहारिनी=चोवदारिन । माया=(१)प्रकृति (२) धन अर्थात् सुवर्ण ।

शब्दार्थ—यह सुंदरी मानो माया सहित अक्षर ब्रह्म है (जैसे माया और ब्रह्म एकत्र रहते हैं वैसे ही इसमें भी सुवर्ण है और अक्षर लिखे हैं) या यह निश्चयदासिनी पत्रिका है (मोहर की हुई चिट्ठी वा सनद) क्योंकि जैसे उसमें नाम की मोहर होती है उसी प्रकार इसमें भी राम का नाम सुंदा हुआ है । या यह प्रियतम रामचंद्र की चोवदारिन, है क्योंकि जैसे चोवदारिन मालिक का नाम लेकर जय जयकार उच्चारण करती है वैसे ही यह सुंदरी भी नाम सहित जयकार को उच्चारण करती है ।

अलंकार—श्लेष और उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—पदघटिकाछंद—
पिय पठई मानो साखि सुजान । जगभूपन को भूपन-निघान ॥
निजु आई हमको सीख देन । यह कियो हमरो मरम लेन ॥८२॥

शाब्दार्थ—जगभूषण=श्रीरामजी । भूषण-निधान=भूषणों की मंजूषा । निजु=निश्चय ही । सीख=शिक्षा । मरम=भेद, तत्त्व ।

भावार्थ—यह मुद्रिका श्रीराम जी की अलंकारमंजूषा है, अर्थात् श्रीरामजी केवल इसी को पहन कर ऐसी शोभा पाते हैं मानो सब भूषण पहने हुए है । इस मुद्रिका को प्रियतन ने मानो सखी बनाकर हमारे पास भेजा है ताकि यह हमें श्रीराम जी की शिक्षादे अथवा हमारे हृदय के मर्म (पवित्रत कुशीलाचरण) का पता लगावे (मुद्रिका को देख कर सीता की आकृति वा भावनाएँ जैसी हों जायँ—उनको देख कर हनुमानजी समझ लेंगे कि जानकी पवित्रता हैं वा कुशीलाचारिणी हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—दोहा—सुखदा सिखदा अर्थदा, यशदा रसवातारि ।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौ परम गुरुनारि ॥८३॥

भावार्थ—यह श्रीरामजी की मुद्रिका है या कोई परम हितैषिणी गुरु स्त्री (सास, घाय, माता इत्यादि) है, क्योंकि जैसे गुरु स्त्री सुख, शिक्षा, प्रयोजन, यश और रस (दाम्पत्य सुख) देने का प्रबंध करती है वैसे ही यह मुद्रिका भी करती है ।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट संदेह ।

मूल—दोहा—बहु वर्णा सहज प्रिया, तमगुण हरा प्रमान ।
जग मारग दरशावनी, सुरज किरण समान ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ—बहुवर्णा = (१) कई रंगवाली (सूर्य किरण में सात रंग होते हैं)—(२) कई अक्षरवाली (अँगूठी में 'श्रीरामोजयति' ये छः अक्षर लिखे थे) । सहजप्रिया = साधारणतः प्रिय (सूर्य किरण भी सहज प्रिय होती है, अँगूठी भी वैसी ही होती है) । तमगुणहरा = (१) अंधकार हरने वाली (२) दुःख हरनेवाली । प्रमान = निश्चयपूर्वक । जग मारग दरशावनी = (१) सांसारिक कार्यों का मार्ग दिखलानेवाली (२) सांसारिक रीति दिखलानेवाली (पतिपत्नी का परस्पर स्मरण करा कर संबंध दृढ़ करने वाली) ।

भावार्थ—यह मुद्रिका सूर्य किरण के समान है क्योंकि बहु वर्णा है (सूर्यकिरण में बहुत से रंग होते हैं, इसमें भी बहुत से अक्षर हैं) सहज प्रिया है, तमगुण हरा है (सूर्य किरण अंधकार हरती है, यह मुद्रिका दुःख वा अज्ञान हरती है) और निश्चय पूर्वक जगमार्ग की दरशानेवाली है (सूर्य किरण उजला देकर सबको सांसारिक कार्यों का मार्ग दिखाती है और यह अँगूठी मुझे प्रियतम का स्मरण कराकर दाम्पति प्रेम का मार्ग दिखाती है) ।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट समुच्चयोपमा ।

मूल—दोहा—श्री पुर में वन मध्य ही, तू भग करी अनीति ।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहे परतीति ॥ ८५ ॥

अलंकारपूर्वक
ऐसी श्लेष
द्रिश् को कि
ताकि यह
के मर्म (पति
नका को दे
जाय-नर
हैं बा
मुद्रिका

शब्दार्थ—श्री=राज्यश्री । हौं=मैं । अनीति करी=धोखा दिया, त्याग दिया ।

भावार्थ—(श्री सीता जी मुद्रिका प्रति कहती हैं) राज्य-लक्ष्मी ने अयोध्या में, मैंने वन में और तू ने मार्ग में राम को छोड़ा, अतः हे मुद्रिका बतला तो अब स्त्रियों की बन्धन-दारी पर कौन नर विश्वास करेगा?

मूल—पद्मटिकाच्छद—

कहि कुसल मुद्रिके राम गात । शुभ लक्ष्मण सहित समान तात
यह उतर देति नहि बुद्धिवंत । केहि कारण घौं हनुमंत संत ॥८६॥

शब्दार्थ—सहित=हितैषी । समान=(स+मान) स्वाभिमानी ।
बुद्धिवंत=हनुमंत का विशेषण है ।

भावार्थ—हे मुद्रिका ! बतला, राम जी शरीर से तो सकुशल हैं! और शुभ लक्षण मेरे परम हितैषी तथा स्वात्माभिमानी प्यारे लक्ष्मण जी तो सकुशल हैं! हे बुद्धिमान सज्जन हनुमंत तुम ही बतलाओ, यह मुद्रिका तो कुछ उत्तर नहीं देती, इसका क्या कारण है ।

मूल—(हनुमान)बोहा-तुमपूँछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम
कूकन की पदवी दरे तुम यिन या कहँ राम ॥८७॥

भावार्थ—(हनुमान जी चतुराई से उत्तर देते हैं कि) हे माता तुम इसे मुद्रिका नाम से संबोधन करके पूँछती हो, इसीसे यह इस नाम को सुनकर चुप है (कि मुझसे तो पूँछती)

ही नहीं) क्योंकि अब तुम से रहित होकर (तुम्हारे वियोग में) श्री राम जी ने इसे कंकण की पदवी दी है (तुम्हारे वियोग में इतने दुबले हो गये हैं कि मुँदरी को अब कंकणवत् पहनते हैं)—अतः यह मुँदरी अपने को कंकण समझती है इसीसे मुँदरी कहने से नहीं बोलती—(दूसरे के नाम से दूसरा नहीं बोलता)।

अलंकार—अल्प।

(रामजी की विरहावस्था)

मूल—(हनुमान)—दंडकछेद—दीर्घ वरीत वसेँ केशोदास
केसरी ज्यों, केसरी को देखि बन करी ज्यों कपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत, चकवा ज्यों चंद्र
चितै चौगुना चंपत हैं ॥ केका सुनि ब्याल ज्यों विलात
जात, घनश्याम, घनन की घोरत जवासो ज्यों तपत हैं।
भौर ज्यों भवत बन जोगी ज्यों जगत रैन, साकत ज्यों
राम नाम तेरोई जपत हैं ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—दरीन=गुफाएँ। केसरी=(१) सिंह (२) केशर।
करी=हाथी। बासर की संपति=दिन का प्रकाश। केका=
मोर का शब्द। घनश्याम=खूब काले। घोरन=गरज।
साकत=शाक्त, शक्ति वा दुर्गा के उपासक।

भावार्थ—(श्री हनुमान जी मौका पाकर श्री राम जी की
विरह दशा का वर्णन करते हैं) राम जी सिंह की तरह
बड़ी बड़ी गुफाओं में ही बसते हैं (बनशोभा नहीं देखते)

और केशर की क्यारियों देखकर ऐसे भयभीत होते हैं जैसे जंगली हाथी सिंह को देखकर डरता है । दिनका मकास वसी तरह नहीं देखते जैसे बल्लूकंपक्षी (दिन का मकास उन्हें अच्छा नहीं लगता) । और चंद्रमा को देखकर चक्रवा से भी अधिक चँपते हैं (व्याकुल होते हैं) । मोरों का शब्द सुनकर सर्प की तरह (कंदराओं में) छिप रहते हैं, और काले बादलों की गरज सुनकर अवाप्त की भाँति जलते हैं । भंवर की तरह चंचल चित्त बनों में घूम करते हैं, रात्रि को जोगियों की तरह जागते हैं - (रात्रि को नींद नहीं आती) और साकत की तरह (तुम्हें अपनी इष्ट देवी समझ) सदा तुम्हारा ही नाम रटते रहते हैं ।

अलंकार—उपमाओं से पुष्ट बल्लेख ।

मूल—(हनुमान)—धारिधरछं१—

राजपुत्रि यक घात सुनी पुनि । रामचन्द्र मन माहँ कही गुनि ।

रात्रि कीह जमराज जनी जनु । जातनानि तन जानत के मनु॥

शब्दार्थ—जमराज जनी=जमराज की दासी (अति कष्ट-
दायिनी) । जातना=यातना, पीड़ा ।

भावार्थ—हे राजपुत्री ! पुनः एक घात सुनिये जो श्री रामचन्द्र जी ने खूब सोच विचार कर कही है । बड़ी रात्रि जमराज की दासी के समान कष्टदायिनी जान पड़ती है, हमारी पीड़ा को हमारा तन या मन ही जानता है (कहने योग्य नहीं) ।

मूल—दोहा—दुख देखे सुख होहिगो, सुख नहि दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे, होइ परम पद लीन ॥ ९० ॥

भावार्थ—(श्री राम जी ने यह भी कहा है कि) दुःख के बाद सुख होगा (धैर्य रखना) क्योंकि प्रकृति का नियम है कि सुख विना दुःख झेले नहीं मिलता। जैसे तपस्वी पहले तपका दुःख झेलता है तब मोक्ष पाता है।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

मूल—दोहा—वर्षा-वैभव देखिके देखी शरद सकाम।
जैसे रज में कालभट भेंटि भेंटियत वाम ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ—सकाम=उत्कट इच्छायुक्त। वाम=देवांगना।

भावार्थ—वर्षा का वैभव देखकर अब कामनायुक्त हृदय से शरद को देखा है (अर्थात् तुम्हारी तलाश की कामना रखते हुए भी वर्षा के कारण रुक जाना पड़ा, अब भी हमारी उत्कट इच्छा दब नहीं गई। अब शरद, ऋतु आई है, रास्ता साफ हुआ है हम शीघ्र तुम्हारे पास आते हैं) यह वर्षा की रुकावट और तदनन्तर शरद का आना हमें कितनी फटिनाई से प्राप्त हुआ है जैसे किसी योद्धा को रण में पहले कालभट से भेंट करनी पड़ती है तदनन्तर देवांगनाओं से भेंट होती है।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—(सीता) दोहा—दुःख देखे कै देखिहौं तव मुख आनंद कंव।
तपन ताप तपि धौस निशि जैसे सीतल चंद्र ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—दुःख झेल कर तब तेरा आनन्दप्रद मुख देखूंगा ।
जैसे जो दिनभर सूर्य की गरमी से तपता है, वह रात्रि को
चन्द्रमा की शीतलता का अनुभव करता है ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—दोहा—अपनी दसा कहा कहीं दीप दसा सी बूढ़ ।
जस्त जाति वासर निता केशव सहित सनेह ॥ ९३ ॥

शब्दार्थ—दसा=हालत । दीपदसा=दिया की बत्ती । सनेह
=(१) प्रेम (२) तैल ।

भाषार्थ—मैं अपनी हालत क्या कहूँ, मेरा शरीर तो
चिराम की बत्ती के समान प्रेमवश रातदिन जल कर रहा है ।

—उपमा और श्लेष से पुष्ट व्यतिरेक ।

१ (हनुमान)—दोहा—

सुगति सुकोश, सुनेनि सुनि, सुमुखि, सुदंति, सुधोनि ।
दरसावे गा बेगिही तुमको सरसिज-योनि ॥ ९४ ॥

शब्दार्थ—सरसिजयोनि=ब्रह्मा ।

भाषार्थ—हे सुन्दर चाल, बाल, नेत्र, मुख, दन्त और कटि
वाली सीता ! सुनो, धैर्य रखो, ब्रह्मा शीघ्र ही ऐसा संयोग
व्यपस्थित करेगा कि मैं तुम्हारे दर्शन करूँगा ।

मूल—हरिगीतिकाण्ड—

फहु जननि दे परतीति जासौ राम चन्द्रहि आवरि ।
सुभ ससि की माणि दरिग्रह कहि सुजस तब जग भावरी ॥
सय काल हैही अमर अह तुम समर जयपद पारही ।

सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥ ९५ ॥*

शब्दार्थ—परतीति=विश्वास । सीसकी मणि=चूड़ामणि,
शीशफूल । जयपद=विजय, जीत ।

मूल—करजोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो । ⊗

पुनि जंजुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ।
रन मारि अक्ष कुमार बहु विधि इन्द्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्म अस्त्र प्रमाण मानि सो वश्य भो मन शुद्ध कै ॥९६॥

शब्दार्थ—उपवन=वाटिका । कोरि=करोड़ । किंकर=दास ।

जंजुमाली=प्रहस्त नामक मन्त्री का पुत्र । पंचमन्त्रि=(१) वि-
रूपाक्ष, (२) यूपक्ष (३) दुर्द्धर्ष, (४) प्रधसंभास (५) कर्ण । अक्ष-
कुमार=रावण का एक पुत्र । इन्द्रजित=मेघनाद । ब्रह्मअस्त्र=
ब्रह्मा की दी हुई फौस । वश्य भो=वशीभूत हुआ । मन शुद्ध
कै=शुद्ध मन से, केवल राम काज हेतु (बल से या भय
से हार कर नहीं) ।

तेरहवाँ प्रकाश समाप्त

*नोट—छन्द ९५ के बाद एक हस्त लिखित प्रति में नीचे
लिखे छन्द मिलते हैं, और छन्द नं० ९६ उसमें नहीं है ।

हरिगीतिकाछन्द—

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो ।

घर पौड़ियो जहँ जंजुमाली दूत जाय पुकारियो ॥

उठि धाइयो मन क्रोध अति करि सोधु कपि जब पाइयो ।

बहु आइयो तेहि ठौर तबही संक उर नहि लाइयो ॥

अति जोर स्यों हनुमंत देखि अनंत वानन मारियो ।
 मन मानियो नहि छोम कपि तव सकल सैन सँहारियो ॥
 पुनि जंघुमाली सों भिरथो लह बाहु जुगल उखारि कै ।
 मठ बैठि कै अभिलाष सों पुर में ते दीनो डारि कै ॥
 परियो ते रावन काँ सभा तेहि काल तेहि पहिचानियो ।
 पुनि पंचसुत मंत्रान के तिन सीस आयसु मानियो ॥
 तन भान कासि हँसि वान धनु तेहि काल लेर गये तहाँ ।
 रन दूत पूत सुसैन स्यों बर जंघुमालि परथो जहाँ ॥
 परपे सु वान समान घन तन भेदियो हनुमंत को ।
 तब धारयो कपि नाद करि रोकै कहा मयमंत को ॥
 घननाल लै सिगरे हूये उर साल रावन के भयो ।
 तेहि काल अक्ष कुमार बोलि प्रहस्त को आयसु द्यो ॥

छंद—

जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने ।
 कुमार अक्ष तिष्ठ बाण छारयो घने घने ॥
 कर्पास छुद्ध छुद्ध भो सँहारि अक्ष डारियो ।
 प्रहस्त सीस में तवे प्रहारि मुष्ट मारियो ॥

दोहा—

मोरो अक्ष सुनो जहाँ रावन अति पछिताय ।
 इन्द्रजीत सौ या कहीं वानर जियत न जाय ॥

तोटक—

घननाद गयो सजिके जबहीं । हनुमंत सों बुद्ध जुरे तबहीं ।
 बलघंत गुन्यो वह हेरि दियो । मन में गुनि एक उपाय कियो

तोमर—

तब इन्द्र जीत बिलोकि । विधिपास दीन्हीं मोकि ।
 कपि प्रहस्तेजहि जानि । निज सीस लीन्हीं मानि ॥

चौदहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या चौदहें प्रकाश में है है लंका दाह ।

सागर तीर मेलान पुनि करिहैं रघुकुल नाह ॥

शब्दार्थ—मेलान=डैरा डालना, ठहरना, विश्राम ।

मूल—(रावण)—मत्तगणन्द सवैया—

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जू को ।

को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण भूषण भू को ॥

सागर कैसे तन्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो ॥

कैसे वैधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दग सोवत पातक लेखो ॥१॥

शब्दार्थ—त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण=त्रिशिरा और खरदूषण

को नाश करनेवाले ।

भावार्थ—(रावण पूछता है कि) रे कपि तू कौन है ?

(हनुमान जी जवाब देते हैं कि) मैं अक्षय कुमार का घातक

बली रघुनाथजी का दूत हूँ । (पुनः प्रश्न है कि) कौन

रघुनाथ ? (जवाब है कि) त्रिशिरा और खरदूषण को मारने

वाले और संसार के भूषण रूप रघुवंशी श्रीरामजी । (तब

प्रश्न है कि) तूने समुद्र कैसे पार किया ? (जवाब है कि)

गोपद समान छँप कर आया । (फिर प्रश्न है कि) किस

काम के लिये आया ? (जवाब है कि) सीता के चोर को

पावन मांको
कल तन संहारो
जुगल उच्चारो
दुनि जारि है
वैह पविचारो
मावियो
लेर गये वहाँ
परयो जहाँ
को
मयमत ही
के भयो
आयु रो

दुरे लह
उपारि

दूढ़ने के लिये । (फिर प्रश्न है कि) तू बंदी क्यों हुआ ?
(जवाब है कि) तेरी स्त्री को सोते समय आँसू से देखा है
इसी पाप से बंदी होना पड़ा ।

विशेष—आचार्य केशव ने इस छंद में किस-युक्ति से राम
जी के माहात्म्य, रूप और बल का तथा राममर्कों के आच-
रणका वर्णन किया है सो समझते ही बन पड़ता है ।

बल कैसा है—हजारों की सेना एक दम में मारसकते हैं ।

माहात्म्य कैसा है—उनके सेवक अक्षय (अमर) को भी मार
सकते हैं । रूप कैसा है—सारे संसार का मूषण है ।

राम-सेवक सागर (भवसागर) कैसे तरते हैं—जैसे गोधर ।

... काम क्या करते हैं—केवल राम संबंधी कार्य । इस
शरीर से किये हुए पापों का दंड यहीं भोग लेते हैं, पर स्त्री
को माता के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से देखने तक को पाप
समझते हैं ।

अलंकार—गूढोत्तर ।

मूल—(रावण) चामर छंद—कोरि कोरि यातनानि कोरि
कोरि मारिये । काटि काटि फारि माँसु चाँटि चाँटि डारिये ।
खाल खँचि खँचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहुरे । पौरि टाँगि दंड
मुंड लै उडार जाहुरे ॥ २ ॥

शब्दार्थ—कोरि=फरोड़ । यातना=कष्ट । फोरि फोरि मारिये
=रतना पीटो कि इसके सब अंग फूट फूट कर रक्त निकलने
लगे । पौरि=द्वार । रुंड=सिर रहित शरीर ।

भावार्थ—सरल है। (रावण हनुमानजी के दंड की व्यवस्था करता है)।

मूल—(विभीषण)—दूत मारिये न राजराज छोड़ दीजई ।
मंत्रि मित्र पुलि कै सो और दंड कीजई ॥ एक रंक मारि क्यों
बड़ो कलंक लीजई । बृंद सुखि गो कहा महा समुद्र छीजई ॥३॥

भावार्थ—(विभीषण रावण को समझाते हैं) हे राजराजेश्वर!
दूत को मारना उचित नहीं। इसे छोड़ दीजिये और अपने
मंत्रियों तथा मित्रों से पूछ कर कोई और दंड कीजिये। एक
छुद्र दूत को मारकर बड़ा कलंक क्यों लेते हैं। समुद्र में से
एक बृंद सुख जाने से क्या समुद्र घट जाता है अर्थात् राम
की सेना में से यदि एक को मार भी डाला जाय तो क्या
उनकी सेना कम हो जायगी)।

अलंकार—दृष्टान्त ।

मूल—चामर छंद—तुल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि वास-
सी । लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी ॥ पूछ पौनपूत
की सँवारि वारि दी जहीं । अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात
मो तहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—तुल=रुई । वाससी=बस, कपड़े । रार=धूना, रा-
ल । दून सूत सौं=दोहरे सूत से । कसी=कस कर बाँध दिया।
वारिदी=जलादी, आग लगा दी । जहीं=इयोंहीं । तहीं=त्योहीं ।
भावार्थ—रुई को तैल में बोर बोर कर और बहुत से बस

जोड़ जोड़ कर और बहुत सी रार और ऊन लेकर दोहरे सूत से कस कर पूँछ में बाँध दिया । इस प्रकार पूँछ को चताक ज्योंही आग जला दी गई, त्योंही हनुमान जी (लक्ष्मि विद्धि से) अपने अंग को छोटा करके ब्रह्म फौंस से निवृत्त कर अटारी पर चढ़ गये ।

मूल—चंबरी छंद (षण्णिक)—

धाम धामनि आग की बहु ज्वालमाल विराजहीं ॥

पौन के झकझोर तें झँझरी झरोखन झाजहीं ॥

बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं ।

धुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—ज्वालमाल=आग की लपटें । झँझरी=छिद्र, सुरास । बाजि=घोड़े । बारन=हाथी । जोरन=जोर से । धुद्र=दीव लोम । विपदा=आफत ।

भावार्थ—घर घर में आग की लपटें उठने लगीं, हवा के झोंकों से झरोखों से सुरासों से लपटें निकलने लगीं । घोड़े, हाथी, मैना, शुक और मोरदि पशुपक्षी गण जोर से भागने लगे, जैसे आफत आते ही नीच जन मालिक को छोड़ कर भागने में लज्जित नहीं होते ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—शुजंगप्रयात छंद—जटी धमि ज्वाला अट्टा सेत हैं यों । शरत्काल के मेघ संख्या सयै ज्यों । लगी ज्वाल धूमावली नी ल रायें । मनो स्वर्ण की किकिनी नाग साजें ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—जटी=जड़ी हुई (युक्त) । अटा=अट्टालिकाएँ ।
नाग=हाथी ।

भावार्थ—अग्नि-ज्वालाओं से युक्त अट्टालिकाएँ ऐसी श्वेत
क्षीरही हैं, जैसे संध्या समय शरद ऋतु के बादल होते हैं ।
ज्वालाओं सहित धुएँ के धौरहर ऐसे जान पड़ते हैं मानो बड़े
बड़े हाथी सोने की किंकिणी पहिने हों ।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—लसै पीत छत्री मदी ज्वाल मानो ।
ढके ओढ़नी लंक वक्षोज जानो ॥ जरेँ जूह नरि चर्दी चित्र-
सारी । मनो चेटका में सती सत्यधारी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—पीत छत्री=सोने की बनी पीली पीली महलों की
बुर्जियाँ (छतरियाँ) । ज्वाल मदी=ज्वालामयुक्त । लंक=
लंकापुरी । वक्षोज=कुच । जूह=यूथ । चित्रसारी=सेजभवन
(सोने के कमरे) । चेटका=चिता ।

भावार्थ—महलों की स्वर्ण की बनी हुई बुर्जियाँ ज्वाला से
ढक गई हैं, वे ऐसी मालूम होती हैं, मानो लंकापुरी के
कुर्चों पर ओढ़नी पड़ी हुई है । रंगमहल के सैनागारों में स्त्रियों
के झुंड के झुंड जल रहे हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो
सती स्त्रियाँ चिताओं में जल रही हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंग प्रयात—

शब्दार्थ—रैनिचारी=निश्चर । गहेज्योति गाड़े=लपटों में बड़े हैं । ईश=महादेव । भोरें=धोखे में । अलंकार=सोने के आमूषण ।

भावार्थ—कही निश्चर अग्नि को लपटों में पड़ गये हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महादेव की कोपाम्नि में कामदेव जल रहा हो । कही स्त्रियों ज्वालाओं के धोखे में अपनी लाठ साड़ी छोरकर और स्वर्णामूषण तोड़कर फेंकती हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और अम ।

मूल—भुजंग प्रयात—

शब्दार्थ—राते=लाल (स्वर्ण के) । रचे=रंगसे रंगे हुए । मलै अग्नि=मलयगिरि । दावज्वाला=दावाम्नि ।

भावार्थ—कहीं लाल रंगसे चित्रित सोने के मकान पर पुर्वा छागया है, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्य और चंद्रमा मेघों से ढंक गये हैं । रावण की शल्लशाला जल रही है और उससे ऐसी गंध निकल रही है मानो मलयगिरि में दावाम्नि लग गई हो (जैसे मलयगिरि में दावाम्नि लगने से

जलने पर चन्दन से सुगंध और सर्पों से दुर्गन्ध निकलती है वैसे ही शस्त्रशाला के जलने से दो प्रकार की गंध आती है) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंग प्रयात—चलीं भागि चौहूँ दिसा राजरानी । मिलीं ज्वालमाला फिरें दुःखदानी ॥ मनो ईश वानावली लाल लोलें । सवै दैत्य—जायान के संग डोलें ॥ १० ॥

शब्दार्थ—राजरानी=रावण की स्त्रियाँ वा वधुएँ । लोल=चलती हुई । दैत्यजायान=निश्चरियाँ ।

भावार्थ—रावण की स्त्रियाँ चारो ओर भागती हैं, पर जिस ओर जाती हैं उसी ओर उन्हे दुःखद अग्नि की ज्वालाएँ मिलती हैं और वे उधर से लौटती हैं, पुनः जिधर जाती हैं उधर ही वही हाल होता है । यह घटना ऐसी मालूम होती है मानो ईश्वर की लाल और चर वाणावली सभी निश्चरियों के साथ साथ लगी उन्हें रगेदे फिरती है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—मत्त गयंद सवेया—

लंकहि लाय दई हनुमंत विमान वचे अति उच्चरुखी है । पाचि फटै उचटै बहुधा मनि, रानि रटै पानी पानी दुखी है ॥ कंचन को पविलो पुर पूरे, पयोनिधि में पसरो सो, सुखी है । गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी है ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—लाय दई=आग लगादी । उच्चरुखी है=और ऊँचे होकर चलने से । मनि—पानी

श्रीरामचन्द्रिका

में जब हनुमान जी ने आग लगा दी तब इतनी ऊँची लपटें उठीं कि देवताओं के विमानों को (मानुषी उँचाई की अपेक्षा) बहुत अधिक उँचाई से चलना पड़ा तब वे बच सके (नहीं तो वे भी जल जाते) अग्नि से तपकर अनेक प्रकार के बहुमूल्य पत्थर फटकर उछलते हैं, और सब रानियाँ दुःखित हो हो कर पानी पानी चिल्लाती हैं। यहाँ तक हुआ कि सोने की समस्त लंकापुरी पिघल जाने से सोने का द्रव असंख्य धाराओं से समुद्र में जागिरा। यह बात कवि केशव कहते हैं कि, ऐसी जान पड़ी कि मानो गंगा को हजार धारा से मिलती हुई देव शर्पा से सरस्वती नदी असंख्य धाराओं से सुखी होकर समुद्र से मिल रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—बोहा—हनुमत लाई लंक सब बच्चो विभीषन धान।

जनु अरणोदय वेर में पंकज पूर्य जाम ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—लाई=जलाई। पूर्यजाम=पहले पहर में।

भावार्थ—हनुमान ने सब लंका जलाई। उसमें बचा हुआ विभीषण का घर (ऐसा शोभा पा रहा है) मानो सूर्योदय के पहले ही पहर में कमल प्रफुल्लित होकर शोभित हो रहा हो।

नोट—वेर और याम में, पुनिरुक्ति सी जान पड़ती है। १२-

ऐसा कहने में युक्ति यह है कि राम-प्रताप रूपा सूर्योदय के

वेंगे, तब रण में रावण को संताप होगा (बिना युद्ध किये रावण सीता न देगा), परन्तु जब राम जी की घनी शर-धारा वर्षेगी, तब लंका को बहते देर न लगेगी (लंका ऐसा दृढ़ गढ़ नहीं है कि उसे जीतते देर लगे—यह कपिगण के उत्साह और हिम्मत का वर्णन है) ।

मूल—तोमर—चलि अंगदादिक वीर । तहँ आइयो रनधीर ॥
जहँ वाग हे सुग्रीव । फल देखि ललक्यो जीव ॥ १८ ॥

भावार्थ—वहाँ से चलकर सब रणधीर वीर वहाँ आये जहाँ सुग्रीव के वाग (कई एक फले हुए वाग) थे; और मूसे होने के कारण और उन वागों में खूब फल देख कर उन सब का जी खाने को ललक उठा ।

मूल—तोमर—सब खाइयो फल फूल । रहियो सुकेवल मूल ।
तव दीख दधिमुख आय । वह मारियो कपि धाय ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—दधिमुख=सुग्रीव का पुत्र और उन वागों का मुख्य रक्षक ।

भावार्थ—अंगद के यूथ के सब वानरों ने उन वागों के सब फूल फल खा डाले, (फल फूलों से खाली होकर) वृक्ष केवल ठूँठमात्र रह गये । यह हाल दधिमुख ने देखा, तब वह (वरजने की रीति से) दौड़ दौड़ कर वानरों को मारने लगा ।

मूल—तोमर—अति रोस वालि कुमार । गहि मारियो कपि धार ।
सब लै गये निजु जीव । जहँ बैठियो सुग्रीव ॥ २० ॥

मूल—तोमरछंद—सीता न ल्याये वीर । मनमौझ उपजति पार ।
आना सु कौन उपाय । पर पुरुष छँधि काय ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—छँधि=छुने । काय=काया, शरीर ।

भावार्थ—(श्रीहनुमान जी अपने मन में सोचते हैं) वीर होकर भी मैं सीता को न लाया, इस बात का मुझे मनमें खेद रहंगा, पर लाता किस उपाय से, मैं पर पुरुष होकर उनके शरीर को कैसे छूता ।

छंद—

यहि पार अंगद भेटियो । सब को सबै दुख भेटियो ।
जयसी कछु वितरई सबै । तिनसों कही तयसी तबै ॥ १६ ॥

भावार्थ—समुद्र के इसपार आकर हनुमान जी ने अंगद से भेंट की (अंगद ही उस थूथ के मुखिया थे, इससे केवल अंगद का नाम लिखा गया) । सब का सब प्रकार का शोक भिट गया । सब जैसी कुछ जिसपर बीती थी, सो सब दुःख की बातें उसने परस्पर कह सुनाई (हनुमान ने अपनी बीता कही और अंगद के साथवालों ने अपनी बीती कही) ।

नोट—‘जयसी’ और ‘तयसी’ शब्द इसी रूपसे लिखे जायेंगे, तमी छंद का रूप शुद्ध रहेगा । जैसी और तैसी लिखने से छंदका रूप अशुद्ध हो जायगा ।

मूल—तोमर—जय राम धरिई चाप । रन रावनै संताप ॥
वरपे सघन सर-धार । लंका घहत नहिं पार ॥ १७ ॥

भावार्थ—(सब विचार करते हैं) जय राम जी धनुष चढ़ा-

भाचार्य—तब अंगदने भी अति क्रुद्ध होकर दधिमूत्र की सेवा को पकड़ पकड़ कर खूब पीटा । जब खूब पीट गये तब वे रक्षक बानर अपने अपने प्राण लेकर भागे और यहाँ गये जहाँ सुभीत बैठे थे और सब हाल कहा ।

मूल—शोका—लै आये सीता खबर, ताते मन आते फूले ।
इनको बिलगु न मानिये, नाहि धरिये चित मूल ॥ २१ ॥
। फूल=आनंद । बिलगु=बुराई ।

(सुभीत ने अंगद की यह दिठाई सुनकर अनुमान किया कि मालूम होता है कि) अंगद सीता का शोष लेकर आये हैं, इसी से आनंदशुभ होकर ऐसा कान कर बैठे हैं । तब, यदि ऐसा है तो इनके इस कार्य से बुरा न मानना चाहिये और इस दोष को चित्त से दोष न मानना चाहिये (क्योंकि हमारे परम मित्र राम का काम तो पूरा कर आये हैं) ।

मूल—संयुता छंद—

रघुनाथ पै जबहीं गये । उठि अंक लावन को भये ॥
प्रभु मैं कहा करनी करी । सिर पायँ की धरनी धरी ॥ २२ ॥
शब्दार्थ—अंक लाना=ठावी से लगा कर भेटना । करनी=करतूत ।

भाचार्य—जब सब मिल कर राम जी के पास गये, तब राम

जी हनुमान जी को छाती से लगा कर भेटनें को उठे ही थे कि हनुमान जी ने यह कह कर कि महाराज मैंने कौनसा बड़ा काम किया है जो आप इतना सम्मान देना चाहते हैं (छाती से लगा कर भेटना चाहते हैं। यह सम्मान मित्र के दर्जे का है, मैं तो दास हूँ) पैर के निकट ज़मीन पर अपना सिर टेक दिया (अत्रि नम्र भाव से चरणों पर सिर रख दिया)।

नोट—सिर और पाँयँ शब्दों का ऐसा प्रयोग करना फारसी तथा उर्दू के साहित्य के अनुसार एक प्रकार का अलंकार है जिसे हिन्दी में 'मुद्रा' अलंकार कह सकते हैं।

मूल—दोहा—चिन्तामणि सी मणि दर्द, रघुपति कर हनुमंत ।
सीता जू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥ २३ ॥

भावार्थ—हनुमान जी ने श्री रघुनाथ जी के हाथ में चिन्तामणि समान सर्व आनंददायिनी सीता जी की 'चूड़ामणि' दे दी, वह चूड़ामणि ऐसी जान पड़ती थी मानो अनंत अनुराग से रंजित श्री सीता जी का मन ही था।

नोट—इस छंद से यह स्पष्ट है कि वह चूड़ामणि लाल रंग की थी।

अलंकार—उल्लेख।

मूल—दोषक छंद—

श्री रघुनाथ जब मणि देखी । जी महँ भागदसा सम लेखी ।
फूलि उख्यौ मन ज्यौं निधिपाई । मानहु अंध सुडीठि सुहाई ॥२॥

शब्दार्थ—भागदशा=सौभाग्य की अवस्था, खुश किस्मती ।
फूल उठ्यो=आनंदित हुआ । निधि=नव निधि ।

भावार्थ—श्री रघुनाथजी ने जब यह सीता जी की चूड़ामणि देली तो उसे अपने मनमें अपनी खुश किस्मती ही के सभान समझा । मन ऐसा आनंदित हुआ मानो दरिद्र ने नवी निधियाँ पाई हो या मानो अन्ये को सुदृष्टि मिली हो ।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—(श्री रामचन्द्र) तारक छंद—मणि होहि नहीं मनु
आय प्रिया को । उरमें प्रगल्भ्यो गुन प्रेमदिया को ॥ सब भागि
गयो सु हुतो तम छायो । श्वभं अपने मनको मत पायो ॥२६॥

शब्दार्थ—आय = है । गुन=स्वरूप (दीपक का
स्वरूप अर्थात् ज्योति) । तम=विरह दुःख और कर्तव्य-
विमूढ़ता । मत=कर्तव्य ज्ञान ।

भावार्थ—राम जी कहने लगे कि यह मणि नहीं बरस सीता
का मन ही है, इसे पाकर प्रेम दीपक की ज्योति हमारे
हृदय में प्रकाशित हो उठी है, जिस प्रकाश से विरह दुःख
और कर्तव्य-विमूढ़ता तो चले गये और अब हम अपने मन
का मत पागये (अर्थात् अब यह मणि पाकर सीता का
निश्चिंत पता मिल गया, प्रेम ने उत्तेजना दी है, अब हम
वह काम करेंगे जो एक प्रेमी पति को अपनी पियतमा के
लिये करना चाहिये अर्थात् सीताहर्ता रावण पर चढ़ाई करेंगे

और उसे दंड देकर सीता का उद्धार करेंगे ।

अलंकार—अपह्नुति ।

मूल—तारक छंद—दरसै हमकोऽघ नहीं दरसाये । उरलागति
आय बन्वाई लगाये ॥ कछु उत्तर देति नहीं चुप साधी ।
जिय जानति है हमको अपराधी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—ऽव=अव । दरसाये=दरशाने से भी ('हमारी
ओर देखो' ऐसा कहने से भी) । बन्वाई=वरियाई, जवरई ।

भावार्थ—(मणि पाकर राम जी को प्रेमवश विरह की
उन्माद दशा का आवेश हो आया है, अतः कहते हैं कि)
हम कहते हैं कि हमारी ओर देखो तब भी यह हमारी ओर
नहीं देखती, जवरदस्ती जब हम हृदय से लगाते हैं तब हृदय
से लगती है (प्रेम से स्वयं हृदय से नहीं लगती) पूछने
पर कुछ उत्तर भी नहीं देती, चुप्पी साध ली है, हमें अपराधी
जानकर ऐसा करती है (तो ठीकही है) ।

नोट—मुद्रिका पाकर सीता की जो दशा हुई थी वही दशा
मणि पाकर राम जी की भी हुई । वे मुँदरी से वार्ता करने
लगी थीं, ये मणि से वार्ते करने लगे । यह दशा देख, अधिक
व्याकुलता से बचाने के लिये हनुमान जी बोल उठे ।

मूल—(हनुमान) तारक छंद—कछु सीय दशा कहि मोहिं
न आव । चर का जड़ घात सुने दुख पावै ॥ सर सो प्रति
वासर वासर लागै । तन घाव नहीं मन प्रानन खाँगे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—प्रतिवासर=रोज, प्रति दिन । वासर=राग, गान

(जो रावण के यहाँ नित्य होता है और अशोक वाटिका से सुनाई पड़ता है) । खंगे=छेदता है ।

भावार्थ—(हनुमान जी कहते हैं) हे महाराज ! सीता की दशा मुझे कुछ कही नहीं जाती, यदि मैं कहीं तो वह वार्ता सुनकर चैतन्य की तो बात क्या जड़ पदार्थ भी दुःख पावें । सुनिये उनकी यह दशा है कि रावण के यहाँ जो संगीत होता है (जिसे सब ही दुखी जीवों का कुछ न कुछ मनोरंजन होता है) वह उनको निरंतर धाण सम लगता है । तन में धाव तो नहीं देख पड़ता पर मन और प्राणों को वह छेदता है ।

नोट—हनुमान जी संगीत विद्या के आचार्य हैं और उन्हें संगीत का यह प्रभाव अच्छीतरह विदित है कि संगीत सब प्रभार के दुखियों का मनोरंजन कर सकता है । जिस दुःख का इलाज संगीत से न हो सके वह दुःख लाइलान समझना चाहिये । अतः सीता का दुःख बड़ा कठिन है, संगीत भी उन्हें धाण सम लगता है । यह कहकर हनुमान जी यह दर्शाना चाहते हैं कि सीता का प्रेम और तज्जानीत विरह आप के प्रेम और विरह से कम नहीं ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—तारक खंद—प्रति अंगन के सँगही दिन नासैं । निदि खी मिलि यादति दीह उसासैं ॥ निदि नेकहु नोद न आवति

जानौ । रवि की छवि ज्यों अधरात घखानौ ॥ २८ ॥

भावार्थ—(हनुमान जी शरद ऋतु में खबर लेकर लौटे हैं । शरद में दिन घटता है और रात्रि बढ़ती है, अतः कहते हैं कि) प्रतिदिन सीता के अंगों सहित दिन कम होता है (जैसे आजकल प्रतिदिन दिन का मान कम होता है वैसे ही प्रति दिन सीता के अंग कम होते जाते हैं—वे दुबली होती जाती हैं) । जैसे प्रतिरात्रि को रात्रि का मान बढ़ता है वैसे ही सीता की उससे भी प्रतिरात्रि दार्घ्यतर होती जाती है । रात्रि को उन्हें जरा भी नींद नहीं आती जैसे आधीरात को सूर्य की ज्योति नहीं आती ।

अलंकार—सहोक्ति और उपमा ।

मूल—घनाक्षरी—भौरिनी ज्यों भ्रमत रहति वन वीथिकानि, हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है । हरिनी ज्यों हरति न केशरि के काननहिं, केका सुनि व्याली ज्यों विलान ही चहति है ॥ पीउ पीउ रटति रहति, चित चातकी ज्यों चंद चित चकई ज्यों चुप है रहति है । सुनहु नृपति राम विरह ति-हारे पंसी सूरतिन सीता जूकी मूरति गहति है ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—मृदुल मृणालिका=(१) मुलायम कमलदंड (२) कमलनालवत् मृदु बाहें । केशरि=(१)सिंह (२)केशर । विलान=(१)बिलों को (२)विलुप्त होजाना (कहीं छुप रहना) । चहति है=दूँढती है । सूरति=दशा । मूरति=शरीर ।

भावार्थ—हे राजा रामचन्द्र ! सुनिये, आपके विरह में सीता

जी का शरीर (स्वयं सीता जी) इन दशाओं को भङ्ग करता है (सीता जी की यह दशा है) कि जैसे अमरी बन-वीथिकाओं में इतस्तवः घूमती रहती है उसी भाँति सीता भी अशोक वन की वीथिकाओं में तुम्हें खोजती हुई भ्रमण क्रिय करती हैं अर्थात् अशोक वाटिका के तमालादि श्यामरंग वृक्षों को भ्रम वश तुम्हारा शरीर समझ कर भेटनेको दौड़ती है, और जैसे हंसिनी मुलायम कमलदल को सदैव चाहती है उसी भाँति सीता जी तुम्हारा कमलमाल सम मुझाओं को चाहती रहती हैं । जैसे हरिनी सिंह के निवास करने के वन की ओर भूल कर भी कभी दृष्टिपात नहीं करता उसी प्रकार सीता जी केशर की वयारियों की ओर नहीं देखती, और जैसे गौर का शब्द सुनकर सर्पिनी बिल खोजती है (मनुष्ये शिप जाना चाहती है) उसी तरह जानकी भी मयूरस्थान सुन कर कहीं बिटुस होजाने को कोई विचर दूँदा करती हैं । चिच लगा कर चातकी की तरह पीउ कहीं पीउ कहीं रटती रहती हैं और चंद्रमा को देखकर चक्रवाकी की भाँति चुप हो जाती हैं ।

अलंकार—उपमाओं से पुष्ट उल्लेख ।

मूल—(सीता जी का संदेश)—दादा—

श्री नृसिंह प्रहलाद की वेद जो गायत गाथ ।

गये मास दिन आसु ही झूझी हैदे नाथ ॥ ३० ॥

भावार्थ—श्रीसीताजी ने कहा है कि हे नाथ ! श्री नृसिंह और प्रह्लाद की कथा जो वेद में वर्णित है, वह शीघ्र ही एक मास बीतने पर भूठी होजायगी अर्थात् प्रह्लाद की कथा से जो यह बात प्रसिद्ध है कि ईश्वर अपने शरणागत भक्तों की रक्षा करते हैं, वह झूठी हो जायगी, क्योंकि यदि एक मास में आप आकर मेरा उद्धार न करेंगे तो रावण मुझे मार डालेगा और लोग कहेंगे कि राम जब अपनी स्त्री को न बचा सके तब प्रह्लाद को उन्होंने कैसे बचाया होगा । (क्योंकि उसने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी—यथा:—

“मास दिवस मँहँ कहा न माना । तो मैं मारव काढ़ि कृपाना” (तुलसी)

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा (कारजमिस कारण कथन—कारण निबंधना) ।

मूल—दोहा—आगम कनक कुरंग के, कही बात सुख पाइ ।
कोपानल जरि जाय जनि शोक समुद्र न बुझाइ ॥ ३१ ॥

भावार्थ—सुवर्ण मृग (कपट मृग रूप मारीच) के आने से पहले जो बात प्रसन्नता पूर्वक आपने कही थी वह प्रतिज्ञा कोपामि में जलने न पावै वा शोक समुद्र में डुबा न दी जाय (कोप वा शोक से भूल न जाइयेगा)—वह बात यह है (देखो प्रकाश १२ छंद ९) ।

कहे वह झूठा है, तुमने तो अपने लिये (नर हरि) नर-हरि (नृसिंह=नरों में सिंहवत्) नाम स्थापित कर दिया (अर्थात् तुम्हें 'नरहरि' की पदवी दी जाय तो ठीक है) । तुम वानर नहीं हो तुम तो मेरे बाण के समान अमोघ शक्ति से सम्पन्न हो, बड़े बड़े शूर वीर वानरों द्वारा तुम बलियों में मुख्य (प्रधान) कहकर प्रशंसित हो (बड़े बड़े शूरवीर वानर तुम्हें प्रधानता देते हैं) तुम केवल शाखामृग (एक शाखा से दूसरी पर उछल कूद करने वाले वानर) नहीं हो, वरन् बुद्धि और बल के शाखामृग हो, या वेदों की शाखाओं के विचरण करने वाले हो (वेदों में पारंगत हो) इसी कारण मुझे अति भाते हो । हे हनुमंत तुम साधु हो, बलवंत हो और यशवंत हो, एक कामको गये थे अनेक काम कर आये ।

अलंकार—परिकरांकुर, विधि, अपह्नुति, यमक, लाटानु-प्रास इत्यादि से पुष्ट उल्लेख ।

मूल—(हनुमान) तोमर छंद—

गइ मुद्रिका लैपाट । मनि मोहि लाई वार ॥

कह कन्यो में बल रंक । अति मृतक जारी लंक ॥ ३३ ॥

भावार्थ—(हनुमान जी कहते हैं) महाराज ! मैंने तो कुछ भी करतूत नहीं की, आपकी मुद्रिका मुझे उसपार ले गई और सीता जी की चूड़ामणि मुझे इस पार ले आई, मैं तो बल

भावार्थ—वानरों के विलास से आकाश युक्त है अर्थात् सब वानर आकाश में उछलते कूदते उड़ते चलते हैं और वे संख्या में इतने अधिक हैं कि उनकी ओट के कारण सूर्य का प्रकाश दिखाई नहीं देता। पुनः राम के साथ लाखों रीछ भी चलते हैं, उनकी सेना ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्र की लहरें चल रही हों।

अलंकार—उपेक्षा।

मूल—(सुग्रीव) दंडक छन्द—कहै केशोदास तुम सुनो राजा रामचंद्र, रावरी जवाहिं सैन उचकि चलति है। पुरति है भूरि धूरि रोदसी के आसपास, दिसदिस वरपा ज्यों बलनि बलति है ॥ पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गजराज मृग मृगराज राजिनि दलति है। जहाँ तहाँ ऊपर पताळ पय आयजात, पुरइन को सो पात पुहुमी हिलति है ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—उचकि=उछलकर। रोदसी=पृथ्वी और और आकाश दोनों। वरपा ज्यों बलनि बलति है=जैसे यर्पा अपने बल (मेघों) से अति बली होती है वैसे ही आपकी सेना बली वानरों से अति बलवान है। बलति है=बल अति है। पन्नग=सर्प, बड़े बड़े अजगर। पतंग=पक्षी। राजिनि=(राजी) पंक्ति, समूह। दलति है=पीस डालती है। पय=पानी। पुहुमी=पृथ्वी।

भावार्थ—हे राजा रामचंद्र! जब आप की सेना उछल कर चलती है, तब पृथ्वी और आकाश सब ओर से घूर से पूर्ण

1. | 2. | 3. | 4. | 5. | 6. | 7. | 8. | 9. | 10. | 11. | 12. | 13. | 14. | 15. | 16. | 17. | 18. | 19. | 20. | 21. | 22. | 23. | 24. | 25. | 26. | 27. | 28. | 29. | 30. | 31. | 32. | 33. | 34. | 35. | 36. | 37. | 38. | 39. | 40. | 41. | 42. | 43. | 44. | 45. | 46. | 47. | 48. | 49. | 50. | 51. | 52. | 53. | 54. | 55. | 56. | 57. | 58. | 59. | 60. | 61. | 62. | 63. | 64. | 65. | 66. | 67. | 68. | 69. | 70. | 71. | 72. | 73. | 74. | 75. | 76. | 77. | 78. | 79. | 80. | 81. | 82. | 83. | 84. | 85. | 86. | 87. | 88. | 89. | 90. | 91. | 92. | 93. | 94. | 95. | 96. | 97. | 98. | 99. | 100. |

|| 1 || 2 || 3 || 4 || 5 || 6 || 7 || 8 || 9 || 10 || 11 || 12 || 13 || 14 || 15 || 16 || 17 || 18 || 19 || 20 || 21 || 22 || 23 || 24 || 25 || 26 || 27 || 28 || 29 || 30 || 31 || 32 || 33 || 34 || 35 || 36 || 37 || 38 || 39 || 40 || 41 || 42 || 43 || 44 || 45 || 46 || 47 || 48 || 49 || 50 || 51 || 52 || 53 || 54 || 55 || 56 || 57 || 58 || 59 || 60 || 61 || 62 || 63 || 64 || 65 || 66 || 67 || 68 || 69 || 70 || 71 || 72 || 73 || 74 || 75 || 76 || 77 || 78 || 79 || 80 || 81 || 82 || 83 || 84 || 85 || 86 || 87 || 88 || 89 || 90 || 91 || 92 || 93 || 94 || 95 || 96 || 97 || 98 || 99 || 100 ||

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100.

| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | 31 | 32 | 33 | 34 | 35 | 36 | 37 | 38 | 39 | 40 | 41 | 42 | 43 | 44 | 45 | 46 | 47 | 48 | 49 | 50 | 51 | 52 | 53 | 54 | 55 | 56 | 57 | 58 | 59 | 60 | 61 | 62 | 63 | 64 | 65 | 66 | 67 | 68 | 69 | 70 | 71 | 72 | 73 | 74 | 75 | 76 | 77 | 78 | 79 | 80 | 81 | 82 | 83 | 84 | 85 | 86 | 87 | 88 | 89 | 90 | 91 | 92 | 93 | 94 | 95 | 96 | 97 | 98 | 99 | 100 |

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100.

भोगवती पुरी 'अतल' की राजधानी है ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी कहते हैं कि) श्रीरामचन्द्रजी ने भूमिके भार को उतारने केलिये धवतार लिया है, पर उसके विरुद्ध अपने प्रबल दल के भार से भूमि का और भी बोझ बढ़ाते हैं । इतना बड़ा दल है कि उसके धकों से दरस्त टूटते हैं, पहाड़ गिरते हैं, समस्त तालों और नदियों का जल सूखता है (दलवाले सब पानी पी डालते हैं) । वानरों के उछल कर चलने के धकों से जमीन हिल जाती है और मचान की तरह पृथ्वी नीचे को दबती और पुनः उछलती है, शेष के समस्त फन नीचे को झुक झुक जाते हैं, और अतल लोक की भोगवती नगरी वितल लोक को भाग गई है (पहले तल की नगरी दब कर दूसरे तल को चली गई है)—तात्पर्य यह कि दल बहुत बड़ा है ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

मूल—हरिगीतिका छंद—

रघुनाथ जू हनुमंत ऊपर शोभिजें तेहि काल जू ।
उदयाद्रि शोभन शृंग मानहु शुभ्र सूर विसाल जू ॥
शुभ अंग अंगद कंध लक्ष्मन लक्षिये यहि भाँति जू ।
जनु मेरु पर्वत शृंग अद्भुत चन्द्र राजत रात जू ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—शोभिजै=शोभित हैं । उदयाद्रि=उदयाचल पर्वत ।

शोभन=सुंदर । शृंग=चोटी । शुभ्र=जति उज्ज्वल । सूर=सूर्य । लक्षिये=दिखलाई पड़ते हैं । रात=रक्ताभावाले,

शब्दार्थ—मूर्ति=अधिकता । विभूति=(१) भस्म(२) रत्न ।
 ईश शरीर=महादेव का शरीर । वियो=दूसरा । संतत=सदा ।
 तरंग तरंगित = प्राचीन काल में मलयगिरि पर्वत से चंदन
 काट कर समुद्र में फेंक कर समुद्र की तरंगों द्वारा अन्यान्य
 देशों को लगे ले जाते थे, अतः चंदन के अनेक काष्ठखण्ड
 सदा समुद्र में तैरा करते थे ।

भावार्थ—यह समुद्र है कि महादेव जी का दूसरा शरीर
 पाया गया है क्योंकि जैसे महादेव के शरीर में विभूति(भस्म)
 की अधिकता, पीयूष (पीयूषधर चंद्रमा) और विष पायेजाते
 हैं वैसे ही इस समुद्र में भी विभूति (रत्नादि) की अधिकता,
 अमृत और विष पाये जाते हैं । अथवा यह समुद्र है या
 कश्यप प्रजापति का घर है, क्योंकि जैसे कश्यप का घर देवता
 और दैत्यों का मन मोहता है (पिता का घर और जन्मभूमि
 प्यारी होती है) वैसे ही यह समुद्र भी अपनी दीर्घता से
 देव और दैत्यों के मन मोहित करता है । अथवा यह समुद्र
 है या किसी संत का हृदय है, क्योंकि जैसे संतहृदय में
 सदैव श्रीहरि निवास करते हैं वैसे ही इस समुद्र में भी श्रीहरि
 बसते हैं, इसकी शोभा अनन्त है जिसे कोई कवि वर्णन नहीं
 कर सकता । अथवा यह समुद्र है या कोई नागर (नगर
 निवासी सुचतुर) पुरुष है, क्योंकि जैसे नागर मनुष्य का
 शरीर चंदनोद्भूत से तरंगवत् चित्रित रहता है (शरीर में

पन्द्रहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या प्रकाश दसपंचमें दससिर करै विचार ।
मिलन विभीषन सेतु रचि रघुपति जैहैं पार ॥

मूल—(रावण) हरिगीतिका छंद—

सुरपाल भूतलपाल हौ सब मूल मंत्रन जानिये ।

बहु मंत्र वेद पुराण उत्तम मध्यमाधम मानिये ॥

करिये जु कारज आदि उत्तम, मध्यमाधम भानिये ।

उर मध्य आनि अनुत्तमै जुगये ते आज बखानिये ॥ १ ॥

शब्दार्थ—भानिये=भंग कर डालो, छोड़ दो । अनुत्तम=सर्वोत्तम (अन+उत्तम=जिससे अधिक उत्तम कोई न हो) ।
जुगये=हृदय में सुरक्षित रखा है ।

भावार्थ—रावण अपने मंत्रियों से कहता है कि तुम देवों और भूमि के पालक हो और सब प्रकार के मूलमंत्रों को जानते हो, वेदों और पुराणों में बहुत प्रकार के मंत्र हैं जिनमें से कुछ उत्तम कुछ मध्यम और कुछ अधम माने जाते हैं । इनमें से आदि प्रकार का जो उत्तम मंत्र है उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये, मध्यम और अधम मंत्र को छोड़ देना चाहिये । अतः मैं तुमसे वही मंत्र पूछता हूँ जिसे तुमने सर्वोत्तम समझ कर हृदय में सुरक्षित कर रखा है, आज वही उत्तम मंत्र मुझसे कहो ।

(१५५)

। अन्वयः -

एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च

। एतत्पुत्रं च, एतत्पुत्रं च

एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च - एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च

एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च - एतत्पुत्रं च

। एतत्पुत्रं च - एतत्पुत्रं च

। एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च

एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च
एतत्पुत्रं च एतत्पुत्रं च

भावार्थ—जो अपने भुजबल से मृत्युपाश को तोड़ सकता है, कालदंड जिसको हाथ जोड़ता है, ऐसा कुंभकर्ण सा जिसके भाई है, वह भला किसको कुछ समझ सकता है (कोई भी क्यों न हो, उसके सामने सब तुच्छ हैं) ।

धलंकार—काव्यार्थापत्ति । काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(कुंभकर्ण) चतुष्पदी छंद—

आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै ।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, आन को मंत्र वतावै ॥
जेहि घर जग जीत्यो, सवै अतीत्यो, तासौं कहा वसाई ।
मति भूलि गई तव, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ॥५॥

शब्दार्थ—आपुन=आप । आन=अन्य, दूसरा । मन्त्र=सलाह=वर=बल वा वरदान । अतीत्यो=बीत गया, खतम हो गया । वसाई=वश चल सकता है । मति=सुधि, खबर (ब्रह्मा के वरदान की सुधि कि नर वानर को छोड़ तुम किसी के मारे न मरोगे, यथा—

“तुम काहू के मरहु न मारे । वानर मनुज जाति दुइ वारे” (तुलसी)
तव=सीता हरण के समय । सिर ऊपर आई=आपदा सिर पर आ गई ।

भावार्थ—(कुंभकर्ण कहता है) आपतो सब जानते हैं (कि क्या होनहार है) इसी से आप किसी का कहना नहीं मानते, वो अच्छा है जो जी में आवे सो कीजिये । जब तुम सीता

कुमकनी काम सोकर जाके । और काम मन आवन जाके ॥ ४४ ॥

अलंकार—आपत्ति (मगल) ।

सकल है ।

तो है देव । पर राम को राम नाम की क्या भी पढ़ेया
की चीज है और जो सोचकर कर सोचता है,
जिना है । और अब आपकी देवा वही पुन है जिसे
है जिसके मत से आपने सब लोको को अपने धर्म से कर
आपकी—मदरत कहता है, है देव । आकरने आपकी पर जिना
आता है, (पराजित होना है) । देव—(संशय) है देव ।
आपकी—आपकी—मदरत कहता है । आता है—संशय मुझको है
कामदेव मत सोचता आता है । काम देव मत आकर को है ॥ ४५ ॥

अलंकार—स्वामता छंद—

अब यही वा पढ़ेयेगी तब मंगला करने का समय न मिलेगा ।
देवा कहतीलीत बातलाली जितसे मीत जितय ही (कर्णिके मग
गई पढ़ेयेये, तब तक (ही समय है) मुन्दर हीमोपेव
मन में छिद मर ही । अब तक रामदेव (संशय) यही
आपकी—अब आपकी मुझे करना चाहिये वेशा मीर दो, अपने
काममें करिये लोखलये । कामदेव जो लोखलये मर ही ॥ ४६ ॥

अलंकार—स्वामता छंद—

भावार्थ—जो अपने भुजबल से मृत्युपाश को तोड़ सकता है, कालदंड जिसको हाथ जोड़ता है, ऐसा कुंभकर्ण सा जिसके भाई है, वह भला किसको कुछ समझ सकता है (कोई भी क्यों न हो, उसके सामने सब तुच्छ हैं) ।

अलंकार—काव्यार्थापत्ति । काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(कुंभकर्ण) चतुष्पदी छंद—

आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै ।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, आन को मंत्र बतावै ॥
जेहि घर जग जीत्यो, सबै अतीत्यो, तासो कहा बसाई ।
मति भूलि गई तघ, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ॥५॥

शब्दार्थ—आपुन=आप । आन=अन्य, दूसरा । मन्त्र=सलाह=वर=बल वा वरदान । अतीत्यो=बीत गया, खतम हो गया । बसाई=वश चल सकता है । मति=सुधि, खबर (ब्रह्मा के वरदान की सुधि कि नर वानर को छोड़ तुम किसी के मारे न मरोगे, यथा—

“तुम काहू के मरहु न मारे । वानर मनुज जाति दुइ वारे” (तुलसी)
तब=सीता हरण के समय । सिर ऊपर आई=आपदा सिर पर आ गई ।

भावार्थ—(कुंभकर्ण कहता है) आपतो सब जानते हैं (कि क्या होनहार है) इसी से आप किसी का कहना नहीं मानते, वो अच्छा है जो जी में आवे सो कीजिये । जब तुम सीता

कृति बोधी । मया विम. वनसु रण म कृसे जीव सकोसो विम.
 इत जय पर धाव प्रसिद्धी इतः यानो विमने लका म सुख को.
 भावार्थ— (मदीरती कहती है कि) विम. जो राम की को
 खपती ।

शूल म चतुर्गदं धी, पसंद बाड़े धी । स्वयं रं=कपसु संशुद्ध,
 शूद्रदं धु—शूल विसे=(शुभाविस्था) निश्चय । इती इम=जा
 को विम संघ स्वयंवर कथा न लरे व ॥ ६ ॥

इत व इती राम कपोल रूप रं व । शौरि चरासन सकर
 को विमकी पखरेख न लोचि गरं व ॥ शंस विसे पखरेख
 को लक म मासु को शक्ति गरं व । कथा रण शौरिने विम
 शूल—(मदीरती) शूद्रा—राम की याम को आना शौरि

शूलकार—शोकिक ।

भा-भवती मयु निहित है ।

शूल है (विमकी पखरेख ही से शर वानर से शेर न करनी
 शर आपदा शिर पर आगड़े मय उमसे वचन का शण्ड शी-
 ली पद शिथि (शरणा के शरदान की) शूल शरं, शौरि शर
 ही शिका, इस कारण शर कुछ वय नही चर सकती । शर
 दशा म (शर वानर से शेर कर लेने की दशा म) . शरीर
 शरदान से विमने शंसार को जीता है, वह शरदान शर इस
 का कारण शीली : शर दूभगा कौन शिरु सलार है । शिर
 शरदान से शर विमने शर न समझा था कि शरीर शीली मयु

की खींची धनुष-रेखा को तुम लाँघ नहीं सके । यदि तुम नि-
श्चय बलवंत थे और यदि तुम्हारी दृष्टि में सीता रूपवती जँच
गई थीं, तो शिव-धनुष को तोड़ कर सीता को स्वयम्बर में
हीं क्यों न जीत लिया ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—सवैया—वालि बली न बच्यौ पर खोरिहि क्यों बचि-
हौ तुम आपनि खोरिहि । जा लागि छोर समुद्र मथ्यौ काहि
कैसे न बाँधिहै वारिधि थोरहि ॥ श्री रघुनाथ गनौ असमर्थ
न देखि विनारथ हाथिन घोरहि । तोन्यो सरासन संकर
को जेहि सोऽव कहा तुव लंक न तोरहि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—खोरि=दोष । थोरा=छोटा । लंक=(१) लंका (२)
कमर ।

भावार्थ— जिस राम से पर दोषी बली वालि नहीं बच सकां
उस राम से तुम निज दोषी होकर कैसे बच सकोगे, जिसके
लिये राम ने क्षीर समुद्र मथडाला था (कच्छपरूपसे, लक्ष्मी
के लिये) उसी लक्ष्मीरूपा सीता के हेतु इस छोटे से समुद्र
को क्यों न बाँध लेंगे । विना चतुरंगिनी सेना के हैं ऐसा सम-
झ कर तुम राम को असमर्थ न समझना । जिसने तुम्हारे
पूज्य देव शंकर का धनुष तोड़ डाला वह तुम्हारी लंकापुरी क्यों
न जीत लेगा (अथवा तुम्हारी कमर क्यों न तोड़ देगा, क्योंकि
परस्त्री लंपट की कमर ही तोड़ देना उसका उचित दंड है) ।

अलंकार—निदर्शना ।

दोष समा कराना (जो पवन की सम्यक् है, नहीं तो नहीं) ।
 साथ लेकर आना, सीता उन्हें दो और पूरे कर अपना
 यह है कि राम के इस पार जाने से पहले ही राम सीता को
 ऐसे भागना जैसे देवा के चलते ही लक्ष्मण उन्हें है । ब्रह्म
 साक्षात् देखकर सतीर भूदान में निक सके । सब और
 दोषदायु—बुद्धिहीन वरक कोई ऐसा और नहीं कि जो राम को
 जाता हरि विषु हैरे वरे । वीला सिवाल किन पाय परे ॥ १० ॥

मूल—देख रघुनाथक धार रहे । जैसे वह पश्य पाय परे ॥
 कर सके और कुंभकर्ण भोग भी उनके साथ नहीं लड़ सकते ।
 कर सकते । मय नार की क्या मजाल कि उनके साथ युद्ध
 देख सके, किम और निकुंम क्या सकवादी है, ये कुछ नहीं
 जायायु—आतिक्रम की क्या मजाल है कि उनकी और
 के दो और पुत्र । इन्द्रजित—राजापुत्र भवनाद ।

दोषदायु—आतिक्रम—एक सेनापति । किम, निकुंम—कुंभकर्ण
 को है इन्द्रजित जो और सहे । का कुंभकर्ण हरेगार सहे ॥ ९ ॥
 को है आतिक्रम जो देख सके । का कुंभ निकुंम क्या जो सके ॥

मूल—(विभीषण)—मादनक उदरे—
 अलंकार—समाश्लिषि (प्रतिशोषक) ।
 राम सहित सब जग करी भर धार करे दिन ॥ ८ ॥
 मांकी आयस दोष जो अभुवन पाल प्रवीन ।
 मूल—(भवनाद) दोष—

मूल—जौलों नल नील न सिंधु तरै। जौलों हनुमंत न दृष्टि परै ॥ (X)

जौलों नाहि अंगद लंक ढही। तौलों प्रभु मानहु बात कही ॥ ११ ॥

जौलों नाहि लक्ष्मण वाण धरै। जौलों सुग्रीव न क्रोध करै ॥

जौलों रघुनाथ न सीस हरो। तौलों प्रभु मानहु पाइ परौ ॥ १२ ॥

मूल—[रावण] कलहंस छंद—अरि काज लाज ताजे कै (X)

उठि धायो। धिक तोहि मोहि समुझावन आयो ॥ तजि राम

नाम यह बोल उचान्यो। सिर माँझ लात पगलागत मान्यो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—तजि राम नाम=राम का नाम लेना छोड़ दे। “उचरयो

का कर्ता ‘रावण’ है।

भावार्थ—रावण ने विभीषण से कहा कि शत्रु का पक्ष देने

को बठ दौड़ा, धिक्कार है तुझे, मुझे तू समझाने चला है ?

स्वरदार, आज से राम का नाम न लेना। जब रावण ने यह

बात कही तब विभीषण डर कर पैर पड़ने लगा, पैर पड़ते

समय रावण ने विभीषण के सर पर लात से आघात किया।

मूल—कलहंस छंद—अरि हायहाय उठि देह सँभान्यो। लि- (X)

य अंग संग सब मंत्रिय जान्यो ॥ तजि अंध यंधु दसकंध उ-

चान्यो। उर रामचन्द्र जगती पति जान्यो ॥ १४ ॥

भावार्थ—चोट लगने पर रो पीट कर विभीषण उठे और देह

को सँभाल कर (सावधान होकर) अपने साथ रहनेवाले

चार मन्त्रियों को साथ लेकर अज्ञानी भाई रावण को छोड़

कर शीघ्रता पूर्वक राम के पास को चल दिये, क्योंकि वे हृदय

से श्रीराम जी को ही समस्त संसार का अधिष्ठाता जानते थे।

मूल—दोहा—मंत्रिन सहित विभीषणे वार्दी शोभ अकास ।
जनु अलि आवत भाव ते प्रमुपद् पदुमन पास ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—शोभ=शोभा । अलि=भैरि । भाव ते=बड़े प्रेम से ।

भावार्थ—मंत्रियों सहित विभीषण आकाशमार्ग से राम जी की ओर जा रहे हैं, (निश्चर होने से शरीर काला है) अतः उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो श्री राम जी के चरण कमलों के पास बड़े प्रेम से अमर आ रहे हैं ।

नोट—किसी प्रति में “प्रमु पद् पदुमनि पास” पाठ है । इस पाठ में अर्थ होगा “प्रमु पद् कमल की पास (सुगंध) पाकर मानों प्रेम सहित भैरि आ रहे हैं” ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—चौपाई—

निकट विभीषण आय तुलाने । कपिपति सों तब ही गुदराने ॥
रघुपति सों तिन जाय मुनायो । दसमुख सोदर सेवहि आयो ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—आय तुलाने=आपहुँचे । कपि=कटक के चारों ओर के पहरेदार बंदर । पति=निज अध्यक्ष (सुग्रीव) गुदराने=निवेदन किया ।

भावार्थ—जब विभीषण रामदल के निकट आ पहुँचे तब पहरेदार वानरों ने (उन्हें बुर ही पर रोककर) उनका हाल अपने अध्यक्ष सुग्रीव से कहा । उन्होंने राम जी को जा मुनाया कि रावण का भाई आपकी सेवा करने को आया है

और आपसे मिलना चाहता है ।

मूल—(श्रीराम)—चौपाई—

बुधि बलवंत सबै तुम नीके । मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के ॥
तब जु विचार परै सो कीजै । सहसा शत्रु न आवन दीजै ॥१७॥

शब्दार्थ—मंत्रिन ही के=मंत्रियों के हृदय के ।

मूल—(सुग्रीव)—मोदक छंद—

रावण को यह साँचहु सोदरु । आपु बली बलवंत लिये अरु ॥
राकस वंश हमें हतने सब । काज कहा तिनसों हमसों अब १८॥

शब्दार्थ—सोदरु=सगा भाई । बलवंत लिये अरु=और भी
बलवानों को साथ लिये है । राकस=राक्षस । हतने=हतन
करना है, मारना है ।

मूल—(जामवंत) मोदक छंद—बध्य विरोध हमें इनसो
अति । क्यों मिलि है हमसों तिनसों मति ॥ रावण क्यों न
तज्यो तबही इन । सीय हरी जवही वह निर्घ्न ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—बध्य विरोध=बध्य-बधिक का सा विरोध ।
निर्घ्न=निर्दय (रावण का विशेषण है) जिसे बुरा काम
करते घृणा वा लज्जा न लगे ।

मूल—(नल) मोदक छंद—

चार पठै इनको मत लीजिय । ऐसहि कैसे विदा करि दीजिय ॥
राखिय जो अति जानिय उत्तम । नाहित मारिय छाँड़ि सबै भ्रमर ॥

शब्दार्थ—चार=दूत ।

मूल—शोहा—मंत्रिन सहित विभीषणै वादी शोम अकास ।
जनु अलि आदत भाव ते प्रमुपद पदुमन पास ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—शोम=शोमा । अलि=भैरि । भाव ते=बड़े प्रेम से ।

भावार्थ—मंत्रियों सहित विभीषण आकाशमार्ग से राम जी की ओर जा रहे हैं, (निश्चर होने से शरीर काल है) अतः उनकी शोमा ऐसी जान पड़ती है मानो श्री राम जी के चरण कमलों के पास बड़े प्रेम से अमर आ रहे हैं ।

नोट—किसी प्रति में “प्रमु पद पदुमनि पास” पाठ है । इस पाठ में अर्थ होगा “प्रमु पद कमल की पास (मुगंध) पाकर मानों प्रेम सहित भैरि आ रहे हैं” ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—चौपाई—

निकट विभीषण आय तुलाने । कपिगति सों तब ही गुदराने ॥
रघुपति सों तिन जाय सुनायो । दसमुख सोदर सेवहि आयो ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—आय तुलाने=आपहुँचे । कपि=कटक के चारो ओर के पहरेदार बंदर । पति=निज अव्यक्ष (सुग्रीव) गुदराने=निवेदन क्रिया ।

भावार्थ—जब विभीषण रामदल के निकट आ पहुँचे तब पहरेदार बानरों ने (उन्हें बुर ही पर रोककर) उनका हाठ अपने अव्यक्ष सुग्रीव से कहा । उन्होंने राम जी को जा सुनाया कि रावण का भाई आपकी सेवा करने को आया है ।

पन्द्रहवाँ प्रकाश

१-१

और आपसे मिलना चाहता है ।

मूल—(श्रीराम)—चौपाई—

बुधि बलवंत सबै तुम नीके । मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के ॥
तब जु विचार परै सो कीजै । सहसा शत्रु न आवन दीजै ॥१७॥

शब्दार्थ—मंत्रिन ही के=मंत्रियों के हृदय के ।

मूल—(सुग्रीव)—मोदक छंद—

रावण को यह साँचहु सोदरु । आपु बली बलवंत लिये अरु ॥
राकस वंश हमें हतने सब । काज कहा तिनसों हमसों अब १८॥

शब्दार्थ—सोदरु=सगा भाई । बलवंत लिये अरु=और भी
बलवानों को साथ लिये है । राकस=राक्षस । हतने=हतन
करना है, मारना है ।

मूल—(जामवंत) मोदक छंद—बध्य विरोध हमें इनसो
अति । क्यों मिलि है हमसों तिनसों मति ॥ रावण क्यों न
तज्यो तबही इन । सीय हरी जबही वह निर्घन ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—बध्य विरोध=बध्य-बधिक का सा विरोध ।
निर्घन=निर्दय (रावण का विशेषण है) जिसे बुरा काम
करते घृणा वा लज्जा न लगे ।

मूल—(नल) मोदक छंद—

चार पठै इनको मत लीजिय । ऐसहि कैसे विदा करि दीजिय ॥
राखिय जो अति जानिय उत्तमानाहित मारिय छाँड़ि सबै भ्रमर ॥

शब्दार्थ—चार=दूत ।

मूल—[नील] मोदक छंद—

साँचेहु तो यह है शरनागत । राखिय राजिवलोचन
भीत न राखिय तो अति पातक । होइ जु मातु पिता कुल

शब्दार्थ—मो मत=मेरा यह मत है । भीत=डर कर शरण
आया हुआ । होइ. . . घातक=चाहे वह माता पिता और
समस्त कुल का घातक ही क्यों न हो ।

मूल—(हनुमान)—घसंततिलका छंद—जानी विभीषण न
राकस रामराजा । प्रह्लाद नारद विशारद बुद्धि साजा ॥ सुमीव
नील नल अंगद जामवंता । राजाधिराज बलिराज समान संतार २१

शब्दार्थ—राकस=राक्षस, । विशारद=पंडित, विद्वान् ।

मूल—दोहा—कहन न पाई घात सय हनुमंत गुण धाम ।
कहौ विभीषण आपुही सयन सुनाय प्रणाम ॥ २३ ॥

भावार्थ—हनुमान जी ने अपनी बात पूरी न कह पाई थी कि
विभीषण ने सब को प्रणाम कर के अपना भर्म कह सुनाया ।

मूल—(विभीषण) मत्तगयंद सवैया—

दीन दयाल कहावत केशव हौं अतिदीन दक्षा गहो गाढ़ो ।
रावण के अब ओघ समुद्र में बूढ़त हौं घरही गहि काढ़ो ॥
ज्यों राज को प्रह्लाद की कोरति त्योहीं विभीषण को जस बाढ़ो ।
आरत बंधु पुकार सुनौ किन आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—घर ही=बलपूर्वक, । बाढ़ो=बढ़ाइये, फैलाइये ।
किन=क्यों । हौं=मैं । त्योहीं. . . बाढ़ो=उसी प्रकार विभीषण
के बचाने का यश संसार में फैलाइये ।

मूल—(पुनः विभीषण) मत्तगयंद सवैया—

केशव आपु सदा सह्यौ दुःख पै वासन देखि सके न दुसारे ।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योंही तहाँ तेहिभाँति संभारे ॥
मेरिय बार अवार कहा कहूँ नाहि तू काहू के दोष विचारे ।
वूढ़त हौं महा मोह समुद्र में राखत काहे न राखन हारे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—त्योंही=तुरंत, अति शीघ्र । अवार=देर । मोह=दुःख ।

अलंकार—रूपक (मोह समुद्र में) ।

मूल—वसंततिलका छंद—श्रीरामचंद्र अति आरतवंत ।

जानि । लीन्हो बुलाय शरणागत सुःखदानि ॥ लंकेश आउ चिर
जीवहि लंकधाम । राजा कहाउ जग जौलगि राम नाम ॥ २६ ॥

भावार्थ—श्रीराम जी ने विभीषण को दुखी जान, शरणा-
गत सुखदाता होने के कारण यह कहकर बुला लिया कि हे
लंकेश आओ, लंका में चिरकाल तक जीवित रहो, और जब
तक संसार में राम नाम का साका चलैगा तब तक तुम राजा
कहलाओगे ।

मूल—तोटक छंद—

जयहीं रघुनायक वाण लियो । सविशेष विशोषित सिंधु हियो ॥
तव ही द्विज रूप सु आइ गयो । नल सेतु रचै यह मंत्र दयो ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—सविशेष=विशेष रूपसे (अत्यन्त) । विशोषित=
सूखगया ।

भावार्थ—जब राम जी ने धनुष वाण उठाया तब समुद्र का
हृदय विशेष रूपसे सूख गया (उठी उदाधि उर अन्तर ज्वाला

-तुलसी), तब ब्राह्मण का रूप बना कर समुद्र आया और यह सलाह दी कि नल के हाथों पुल बँधवाकर सेना को उस पार ले जाइये ।

(सुन्दरकांड-कथा प्रसंग समाप्त)

(सेतु-बंधन)

मूल—शोहा—जहँ तहँ यानर सिंधु महँ गिरिगण डारत आनि ।
शब्द रखौ मरि पुरि महि रावण को दुख दानि ॥ २८ ॥

मूल—तोटक छंद—

उछलै जल उच्च अकाश खदै । जल जोर दिशा विदिशान मदै ॥
जनु सिंधु अकाश नदी अरि कै । पहुँ भाँति मनाधत पाँ परिकै ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—अकाश नदी=आकाश गंगा । अरिकै=अड़ गई है, मान किया है । पाँ परिकै=पैर छू छू कर ।

भावार्थ—पहाड़ फेंके जाने से समुद्र का जल बहुत ऊँचे तक उछलता है और (दिशा विदिशाओं में छा गया है) । यह घटना ऐसी जान पड़ती है, मानो आकाश गंगा ने समुद्र से मान किया है (समुद्र नदी-पति होने से आकाश गंगा का भी पति है अतः पत्निये मान किया है) और समुद्र अपने हाथों से उसके पैर छू छू कर उसे मनाता है ।

अलंकार—व्यपेक्षा ।

मूल—तोटक छंद—

यहु ध्योम विमान ते भीजि गये । जल जोर भयँ अंगराग रये ॥
सुर सागर मानहु युद्ध जये । सिंगरेपट भूषण छुटि लये ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—अंगराग रये=अंगराग अर्थात् केसर चंदनादि से रंगे हुए (वस्त्राभूषण विमानों से वह वह कर समुद्र में आगये हैं) । सुर=देवताओं को । युद्ध जये=युद्ध में जीत लिया है । सागर=समुद्र ने ।

नोट—‘सुर’ कर्म कारक में और ‘समुद्र’ कर्ता कारक में है ।
“वस्त्राभूषण विमानों से समुद्र में वह आये हैं” इतने पद अनुक्त हैं ।

भावार्थ—समुद्र से जो जल उछला है उससे आकाशगामी सुर विमान भोग गये हैं, और जलके जोर से देवों के केशर चंदनादि रंजित वस्त्राभूषण समुद्र में वह आये हैं, यह घटना ऐसी जान पड़ती है, मानो समुद्र ने युद्ध में देवताओं को जीत कर उनके वस्त्राभूषण लूट लिये हैं ।

अलंकार—अनुक्त विषया वस्तूप्रेक्षा ।

मूल—तोटक छंद—

अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छयो । पुर रावण के जल जोर भयो ॥
तब लंक हनुमत लाइ दर्ई । नल मानहु आइ बुझाइ लई ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—छिछि=उछले हुए पानी की छांछ (धारा) । त्रिकूट =वे तीन शिखर जिन पर लंकापुरी बसी थी । लाइ दर्ई=आग लगादी थी ।

भावार्थ—समुद्र जल की उछलती हुई धाराओं से त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखर छागये और रावण की लंकापुरी में

चल भर गया । यह घटना ऐसी जान पड़ी मानो २३
द्वारा जलाई गई लंका को नल ने बुझा लिया ।

धलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—ताटक छंद—

लगि संतु जहाँ तहँ सोम गहे । सरितान के फेरि प्रवाह बहे ॥
पति देवनदी रति देखि भली । पितु के घर को जनु रुसि चली ॥
शब्दार्थ—लगि सेतु=सेतु से रुककर । देवनदी=आकाश
गंगा । रति=प्रीति । पति देवनदी रति=समुद्र और आकाश,
गंगा की प्रीति (देखो छंद नं० २९) । पितु के घर
को=उद्गमस्थान की । 'सोम गहे' 'प्रवाह' का विशेषण
है । फेरि=उलट कर ।

भावार्थ—सेतु के कारण (सेतु से रुककर) नदियों के
सुन्दर प्रवाह जहाँ तहाँ रुक गये और उद्गमस्थान की ओर
को बहने लगे, मानो वे नदियाँ अपने अपने पिता के घरों
को इस कारण रुक कर चलती हैं कि हमारा पति वे
आकाशगंगा पर ही अधिक प्रीति करता है ।

धलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—सब सागर नागर सेतु रची । वरणों बहुधा सुर शक्र सची ॥
तिलकावलि सी सुभ सीस लसै । मणिमाल किधौ उर में बिलसै ॥

शब्दार्थ—सब=समस्त (यह शब्द 'सुर' का विशेषण है) ।
नागर=सुन्दर, श्रेष्ठ । रची=अनुरक्त होकर । तिलकावलि=

खौर ।

भावार्थ—समस्त देवता, यहाँ तक कि इन्द्र और शची भी, समुद्र के सेतु पर अनुरक्त होकर (सुन्दर देख कर) विविध प्रकार से उसका वर्णन करने लगे, कि यह समुद्र के सिर की खौर है या समुद्र के हृदय पर मणिमाला शोभा दे रही है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—तारकछंद—उरते शिव मूरति श्रीपति लीन्ही । शुभ-सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही ॥ इनको दरसै परसै पग जोई । भवसागर को तरि पार सो होई ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—उरते=हृदय से, बड़े प्रेमसे, अत्यन्त भक्तिभाव से । श्रीपति=श्रीराम जी । सेतु के मूल=जिस स्थान से सेतु-रचना का आरंभ हुआ था । अधिष्ठित कीन्ही=स्थापित की ।

भावार्थ—श्रीराम जीने अति भक्ति भाव से शिव की एक मूर्ति लेकर सेतु के आरंभ के स्थान पर स्थापित की (शिव मूर्ति स्थापित कर के उनकी आराधना की) और श्रीमुख से उस मूर्ति का यह माहात्म्य बतलाया कि जो व्यक्ति इनके दर्शन करेगा वा इनके चरणों का स्पर्श करेगा वह भवसागर के पार तर जायगा (उसका जन्म मरण न होगा, वह मुक्त हो जायगा) ।

मूल—दोहा—सेतुमूल शिव शोभिजै केशव परम प्रकास । सागर जगत जहाज को करिया केशव दास ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—जहाज= नौका । करिया=केवट, खेवक, मल्लाह ।

भावार्थ—शिव जी अपने परम प्रकाश से (पूर्ण शक्ति और प्रभाव से युक्त) सेतु के आदि स्थल पर शोभित हैं, मानो संसार सागर के जहाज के मल्लाह हैं ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट गम्योत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छंद—सुक सारन रावण दूत पठायो । कपिराज सों एक संदेश सुनायो ॥ अपने घर जैयहु रे तुम भाई । जमहूँ पहुँ लंक लई नहि जाई ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कपिराज=सुग्रीव । भाई=सुग्रीव (बालि से रावण की मित्रता थी, सुग्रीव बालिके भाई हैं । अतः रावण भी भाई कहता है) ।

भावार्थ—रावण ने सुक और सारण नामक दो राक्षसों को दूत बनाकर रामदल देखने को भेजा । उन्होंने सुग्रीव से रावण का यह संदेश सुनाया कि—“हे भाई सुग्रीव ! तुम अपने घर लौट जाओ, जमराज भी मेरी लंका नहीं जीत सकते” ।

मूल—(सुग्रीव) तारक छंद—भाजि जैहौ कहाँ न कहूँ चल देखौ । जलहु धलहु रघुनायक पेशौ ॥ तुम बालि समान सहोदर मेरे । हतिहौ कुल स्यो तिनु प्रानन तेरे ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—तुम बालि मेरे=तुम बालि समान मेरे हो अर्थात् मेरे संबंध से जो गति बालि की हुई है वही

तुम्हारी भी होगी । तिनू=तृण समान ।

भावार्थ—(सुग्रीव ने जवाब दिया) हे शुक और सारन ! रावन से कह देना कि भाग कर कहाँ जाओगे, मैं तो कहीं ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ तुम बच सकोगे, क्योंकि मैं जल तथा थल में सर्वत्र राम जी को देखता हूँ । हाँ, वेशक तुम बालि के ही समान मेरे भाई हो (अर्थात् जहाँ बालि गया है वहाँ तुम भी जाओगे) वंश सहित तेरे तृण समान प्राणों को मैं ही मारूंगा—तेरे पापों के कारण तेरे प्राण तृण समान हलके और कमजोर हो गये हैं, अब तुझ में महाप्राणता नहीं रह गई ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—(कवि वचन) तारक छंद—सब राम चमू तरि सिंधुहि आई । छवि ऋक्षन की धर अंबर छाई ॥ बहुधा सुक सारन को सु बतार्ई । फिरि लंक मनो वरपा ऋतु आई ॥३८॥

शब्दार्थ—चमू=सेना । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । फिर=फिर कर, लौट कर (अर्थात् शरद के बाद लौट कर फिर वर्षा आ गई) । बतार्ई=दिखलाई ।

भावार्थ—राम की समस्त सेना सिंधु को पार करके लंका में आ गई, वहाँ काले काले रीछों की शोभा जमीन और आकाश में छा गई, वह सब सेना का विस्तार सुग्रीव ने शुक सारन को दिखलाया । वह सब सेना लंका को ऐसे घेरे है मानो फिर

शब्दार्थ—जहाज= नौका । करिया=केवट, खेवक, मल्लाह ।

भावार्थ—शिव जी अपने परम प्रकाश से (पूर्ण शक्ति और प्रभाव से युक्त) सेतु के आदि स्थल पर शोभित हैं, मानो संसार सागर के जहाज के मल्लाह हैं ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट गम्योत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छंद—सुक सारन रावन दूत पठायो । कपिराज
सों एक संदेश सुनायो ॥ अपने घर जैयहु रे तुम भाई । जमह
पहँ लंक लई नहि जाई ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कपिराज=सुग्रीव । भाई=सुग्रीव (बालि से रावण की मित्रता थी, सुग्रीव बालिके भाई हैं । अतः रावण भी भाई कहता है) ।

भावार्थ—रावण ने शुक और सारण नामक दो राक्षसों को दूत बनाकर रामदल देखने को भेजा । उन्होंने सुग्रीव से रावण का यह संदेश सुनाया कि—“हे भाई सुग्रीव ! तुम अपने घर लौट जाओ, जमराज भी मेरी लंका नहीं जीत सकते” ।

मूल—(सुग्रीव) तारक छंद—मजि जैही कहाँ न कहँ यल
देखौ । जलहु थलहु रघुनायक पेखौ ॥ तुम बालि समान
सहोदर मेरे । हतिहौं कुल स्यौं तिनु प्रानन तेरे ॥ ३७ ॥

जुम बालि मेरे=तुम बालि समान मेरे
हो अर्थात् मेरे संबंध से जो गति बालि की हुई है वही

तुम्हारी भी होगी । तिनू=तृण समान ।

भावार्थ—(सुग्रीव ने जवाब दिया) हे शुक और सारन ! रावन से कह देना कि भाग कर कहाँ जाओगे, मैं तो कहीं ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ तुम बच सकोगे, क्योंकि मैं जल तथा थल में सर्वत्र राम जी को देखता हूँ । हाँ बेशक तुम बालि के ही समान मेरे भाई हो (अर्थात् जहाँ बालि गया है वहाँ तुम भी जाओगे) वंश सहित तेरे तृण समान प्राणों को मैं ही मारूंगा—तेरे पापों के कारण तेरे प्राण तृण समान हलके और कमजोर हो गये हैं, अब तुझ में महाप्राणता नहीं रह गई ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—(कवि वचन) तारक छंद—सब राम चमू तरि सिंधुहि आई । छवि ऋग्गन की धर अंबर छाई ॥ यहुधा सुक सारन को सु वताई । फिरि लंक मनो धरपा ऋतु आई ॥३८॥

शब्दार्थ—चमू=सेना । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । फिर=फिर कर, लौट कर (अर्थात् शरद के बाद लौट कर फिर वर्षा आ गई) । वताई=दिखलाई ।

भावार्थ—राम की समस्त सेना सिंधु को पार करके लंका में आ गई, वहाँ काले काले रीछों की शोभा जमीन और आकाश में छा गई, वह सब सेना का विस्तार सुग्रीव ने शुक सारन को दिखलाया । वह सब सेना लंका को ऐसे घेरे है मानो फिर

लौट कर लंका में वर्षा ऋतु आ गई है ।

नोट—हेमंत ऋतु में चढ़ाई हुई थी । वर्षा का आना अकाल ऋतु परिवर्तन कह कर कवि लंका का अमंगल सूचित करता है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दंडक छंद—कुंतल ललित नील भ्रुकुटी धनुष नैन कुमुद फटाक्ष बाण सबल सदाई है । सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषणन मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है । विमहानुकूल सय लक्ष लक्ष अश्वबल अक्षराज मुखी मुख केशौदास गाई है । रामचन्द्र जूकी धम्, राजश्री विभीषणकी, रावण की भीचु दरकूच चालि आई है ॥ ३९ ॥

नोट—इस छंद का अर्थ तीन तरह से लगेगा । (१) राम जी की सेना का (२) विभीषण की राजश्री का (३) रावण की भीच का ।

शब्दार्थ—(प्रथम अर्थ के लिये)=कुंतल, ललित, नील, भ्रुकुटी, धनुष, नयन, कुमुद फटाक्ष, बाण=ये सब यूप वानरों के नाम हैं । सबल=बलवंत । सदाई=सदैव । सुग्रीव, तार और अंगद=बड़े सरदारों के नाम हैं । भूषणन=सेना में भूषणवत् हैं । मध्यदेश=ये लोग सेना के मध्यभाग के सरदार हैं । केशरी, गज=वानरों की जातियों के नाम हैं । गति भाई है=जिनकी चाल बड़ी सुन्दर है । विमह, अनुकूल=

रीछ सेना के यूथों के नाम हैं। लक्ष लक्ष ऋक्षवल=लाखलाख रीछों की सेना जिनकी सेवा में है। ऋक्षराज मुखी=जिन सब मुखियों में जामवंत जी मुख्य सरदार हैं। मुखगाई है= ये वीर रीछ सेना के मुखभाग (अग्रभाग) में वर्णित हैं। चमू=सेना। दरकूच=कूच दरकूच मंजिलें तै करती हुई। कई जगह कूचमुकाम करती हुई।

भावार्थ—(कवि अनुमान करता है कि यह राम की सेना है, वा विभीषण की राज्यश्री है, वा रावण की मृत्यु है। प्रथम अर्थ में राम सेना का रूप कैसा है)—कुंतल, नील, भ्रुकुटि, धनुष, कटाक्ष, नयन, और बाण नामा वानरों से सदा बलवान है (जो सेना) और जिस सेना में सुग्रीव, तार अंगदादि वीर भूषणवत हैं और यही वीर सेना के मध्य भागके (जिस भाग में श्रीराम और लक्ष्मण स्थित रहते हैं) संचालक हैं। और केशरी तथा गज जाति के वानर भी हैं जिनकी चाल बड़ी सुन्दर है। विग्रह और अनुकूल नामक जिस सेना में रीछ सरदार हैं, जिन सरदारों में से एक एक के पास लाखों रीछों की सेना है और जिन सरदारों में जामवंत जी मुख्य हैं (राम जी के ४ प्रधान मंत्रियों में हैं) यह रीछसेना समस्त सेना के मुखभागमें (अग्रभागमें) रहती है। ऐसी राम चन्द्रजी की सेना है।

शब्दार्थ—(दूसरे अर्थ के लिये) कुंतल=केश। ललित=

सुन्दर । नील=काले । भ्रुकुटी=मौहें । नेत्र=नेत्र । लाल कमल । फटाक्ष=वाँकी चितवन । बल=सौन्दर्य । सुग्रीवं=सुन्दर गर्दन । तार=मोती । अंगद=बाजूबंद । मध्यदेश=कमर । केशरी=सिंह । गज गति=हाथी की सी चाल । विग्रहानुकूल=सब शरीर के अंग यथायोग्य हैं । लक्ष लक्ष ऋक्षवल ऋक्षराजमुखी=लाखों नक्षत्रगण सहित चंद्रमा के समान मुखवाली । मुख केशवदास गाई है=केशव के दासों के मुख से प्रशंसित है (सब राम-भक्त जिसकी प्रशंसा करते हैं) ।

भावार्थ—(विभीषण की राजश्री का) जिसके सुन्दर कांठे केश है, मौहें धनुष समान हैं, नेत्र लाल कमल सम हैं, वाँकी चितवन वाणसम है और जिसका सौन्दर्य (बल) सदा रहनेवाला है । जिसकी सुन्दर ग्रीवा मोतियों से युक्त है, बाजूबंद विजायठ आदि भूषणों से अलंकृत है, कमर सिंह की सी है, चाल गज की सी है जो मन को भाती है । शरीर के और सब अंग भी (कुच, फर, पद, नासा, कपोलादि) यथायोग्य हैं, लाखों नक्षत्रों के सौन्दर्य को लेकर यदि चन्द्रमा निकले तो, जो छवि उस चन्द्रमा की होगी, वैसी ही इसकी मुख छवि है, सब रामभक्त जिसकी प्रशंसा करते हैं (निष्पाप है— बहुधा राजलक्ष्मी सकलक होती है, वह रामभक्तों से प्रशंसित नहीं होती, पर यह रामभक्तों से प्रशंसित है, अतः निष्पाप

है)-ऐसी होने से यह अनुमान होता है कि यह विभीषण की राजश्री है ।

शब्दार्थ—(रावण की मीच के लिये) कुंतल=भाला । ललित=तीक्ष्ण । नील=काले रंगकी । शुकुटी=भौंहे चढ़ाये । धनुष=धनुष लिये हुए । नैन=(नय+न) अन्याय युक्त, विवेक हीन, क्योंकि मृत्यु विवेकरहित होती है । कुमुद=आनन्द रहित, क्रुद्ध । कटाक्ष वाण=चितवन वाण सम कराल है । सबल=बहुत बलवती । सुग्रीव=गर्दन में सुन्दरता यह है कि । सहित तार=(तार=उच्च स्वर) बड़े उच्च स्वर से गरजती है । अंगदादि भूषण न=विजायठ आदि भूषण नहीं धारण किये हैं, वरन् मुंडमालादि क्रूर और भयानक भूषण धारण किये हैं । मध्य=मध्यम, असुन्दर । देश=अंग । केशरी सु गज गति भाई है=जिसकी ऐसी तेज गति है जैसे सिंह हाथी पर टूटता है, घातक गतिवाली है (जैसे सिंह हाथी के मारने को चलता है वैसे यह रावण को मारने चली है) । विग्रहानुकूल=(विग्रह=विरोध) रामजी का विरोध-राम वैरही जिसके लिये अनुकूल समय है । लक्ष लक्ष ऋक्ष बल=लाखों रीछों का बल है जिसमें । ऋक्षराज मुखी=रीछ का सा भयंकर मुख है जिसका । मुख गाई है=जिसका मुख सज्जनों ने ऐसा ही भयंकर कहा है ।

भावार्थ—(रावण की मीचका) तीक्ष्ण भाला लिये, काली

कल्टी, भौहें चढ़ाये, धनुष लिये, अत्याचारिणी, क्रुद्ध, चितवन बाण सम कराल है और जो सदा ही बलवती है । गले से उच्च स्वर से गरजती है, मूषण रहित मुंडमालादि भयंकर मूषण धारण किये, अंगोंवाली है और जैसे सिंह हाथी के मारने को क्षपटता बेसी चालवाली है । रावण के मारने के लिये राम वैर जिसे अनुकूल हेतु मिल गया है, जिसमें लाखों रीछों का है (रीछ पेड़ पर चढ़ जाता है—यदि रावण ब्रह्मादि शरण जाय तो भी यह वहाँ तक चढ़ कर मारेगी है), जिसका बड़े रीछ का सा भयंकर मुख है, सज्जनों ने ऐसा ही जिसका वर्णन किया है । इस रूपवाली होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह रावण की मृत्यु है क्या !

अलंकार—श्लेष से पुष्ट संदेह ।

मूल—हीरक छंद—

रावण सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो ।

मानहु दस शृंग युत कलिंद गिरि विमोहियो ॥

राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यो हयो ।

हंस सबल अंसु सदित मानहु उद्रे कै गयो ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—सुभ स्यामल तनु=अति काले शरीरवाला । शृंग=शिखर । कलिंदगिरि=काले शृंगोंवाला पर्वत (जिससे यमुना निकली है) । लाघवगति=शीघ्रता से । हयो=(हन्यो) गिया-दिये । हंस=सूर्य । अंसु=(अंशु) किरण ।

भावार्थ—(राम सेना देखने को) काले शरीर वाला रावण अट्टालिका पर यों शोभित हुआ, मानो दस शिखरों सहित कलिंदगिरि सोहता हो । रामजी के बाण ने अति शीघ्र उसके छत्र मुकुटादि गिरा दिये तब वह ऐसा मालूम हुआ मानो किरण सहित सूर्य दूर स्थान को उड़ गया हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—हीरक—लज्जित खल तज्जि सुथल भज्जि भवन में गयो ।

लक्षण—प्रभु तत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो ॥

लंक निराखि अंक हरपि मर्म सकल जो लह्यो ।

जाहु सुमति रावण पहुँ अंगद सन यों कह्यो ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—सोभयो=शोभित हुए । अंक हरपि=मनसे आनंदित होकर ।

भावार्थ—इस बात से लज्जित होकर खल रावण उस स्थान को छोड़ कर घर के भित्ति भाग गया । तब राम और लक्ष्मण दोनों वीर लंका के दक्षिण की ओर वाले पहाड़ पर सुख पूर्वक जा बैठे । लंका को देख कर आनंदित हुए । और लंका के दुर्गों का सब भेद जानने के निमित्त राम जी ने अंगद से कहा कि हे सुमति ! तुम लंका को जाओ (रावण को समझाओ । यदि वह अब भी मान जाय तो व्यर्थ युद्ध क्यों करना पड़े) ।

नोट—यह राजनीति है कि युद्ध की समस्त तैयारी करके

कल्लूटों, भौंहें चढ़ाये, धनुष लिये, अत्याचारिणी, क्रुद्ध, चितवन माण सम कराल है और जो सदा ही बलवती है । गले से उच्च स्वर से गरजती है, अंगद-भूषण रहित मुंडमालादि भयंकर भूषण धारण किये, अंगोंवाली है और जैसे सिंह हाथी के मारने को क्षपटता वैसी चालवाली है । रावण के मारने के लिये राम वैर जिसे अनुकूल हेतु मिल गया है, जिसमें लाखों रीछों का है (रीछ पेड़ पर चढ़ जाता है—यदि रावण ब्रह्मादि के शरण जाय तो भी यह वहाँ तक चढ़ कर मारेगी यह भाव है), जिसका बड़े रीछ का सा भयंकर मुख है, सज्जनों ने ऐसा ही जिसका वर्णन किया है । इस रूपवाली होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह रावण की मृत्यु है क्या ?

अलंकार—श्लेष से पुष्ट संदेह ।

मूल—हीरक छंद—

रावण सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो ।

मानहु दस शृंग युत कलिंद गिरि विमोहियो ॥

राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो ।

हंस सवल अंशु सहित मानहु उड़ि कै गयो ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—सुभ स्यामल तनु=अति काले शरीरवाला ।

शृंग=शिखर । कलिंदगिरि=काले शृंगोंवाला पर्वत (जिसमें यमुना निकली है) । लाघवगति=शीघ्रता से । हयो=(हन्यां) गिय दिये । हंस=सूर्य । अंशु=(अंशु) किरण ।

भावार्थ—(राम सेना देखने को) काले शरीर वाला रावण अट्टालिका पर यों शोभित हुआ, मानो दस शिखरों सहित कलिंदगिरि सोहता हो । रामजी के बाण ने अति शीघ्र उसके छत्र मुकुटादि गिरा दिये तब वह ऐसा मालूम हुआ मानो किरण सहित सूर्य दूर स्थान को उड़ गया हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—हीरक—लज्जित खल तज्जि सुथल भज्जि भवन में गयो ।

लक्षण—प्रभु नत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो ॥

लंक निराखि अंक हरपि मर्म सकल जो लह्यो ।

जाहु सुमति रावण पहुँ अंगद सन यों कह्यो ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—सोभयो=शोभित हुए । अंक हरपि=मनसे आनंदित होकर ।

भावार्थ—इस बात से लज्जित होकर खल रावण उस स्थान को छोड़ कर घर के भितर भाग गया । तब राम और लक्ष्मण दोनो वीर लंका के दक्षिण की ओर वाले पहाड़ पर सुख पूर्वक जा बैठे । लंका को देख कर आनंदित हुए । और लंका के दुर्गों का सब भेद जानने के निमित्त राम जी ने अंगद से कहा कि हे सुमति ! तुम लंका को जाओ (रावण को समझाओ । यदि वह अब भी मान जाय तो व्यर्थ युद्ध क्यों करना पड़े) ।

नोट—यह राजनीति है कि युद्ध की समस्त तैयारी करके

एकवार मेलके लिये अंतिम उद्योग कर लेना चाहिये । अंतिम उद्योग भी असफल हो, तब युद्ध छेड़ना चाहिये ।

मूल—चंचला छंद—रामचंद्र जु कहंत स्वर्ण लंक देखि देखि ।
 ऋक्ष वानरालि घोर ओर चारिहु विशोखि ॥
 मंजु कंज गंध लुब्ध भौर भीर सी विशाळ ।
 केशोदास आस पास शोभिजै मनो मराल ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—कहंत=कहते हैं । ऋक्ष वानरालि=रीछ और वानरों की सेना । गंधलुब्ध=सुगंध के लोभी । शोभिजै=शोभा देते हैं । मराल=हंस (इस उत्प्रेक्षा से जान पड़ती है कि दक्षिण की ओर कहीं पीले और काले रंग के भी हंस होते हैं) ।

नोट—चौथे चरण में 'केशोदास' शब्द का 'शो' ह्रस्व उच्चारण युक्त माना जायगा ।

भावार्थ—स्वर्ण-लंका को चारों ओर से रीछ वानरों की सेना से विशेष प्रकार से घिरी हुई देख देख कर रामचंद्र जी कहते हैं कि यह लंका कमल सम है और उस में जो काले काले राक्षस हैं वे सुन्दर कमल के अंदर सुगंधलोभी भौरों के समान हैं, और चारों ओर से रीछ वानरों की घोर सेना जो उसे घेरे हुए है, वे रीछ वानर ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमल के आस पास हंस शोभा दे रहे हों ।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा ।

सोलहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—यह वर्णन है षोडशे केशवदास प्रकाश
रावण अंगद सों विविध शोभित वचन विलास

⊗ मूल—दोहा—अंगद कूटि गये जहाँ आसनगत लंकेश ।
मनु मधुकर करहाट पर शोभित श्यामल वेष ॥

शब्दार्थ—आसनगत=सिंहासन पर बैठा हुआ ।

कमल की छतरी, जो पहले पाली होती है, फिर बीज
पर हरी हो जाती है ।

भावार्थ—अंगद छलाँग मारते वहाँ गये जहाँ रावण ।

पर बैठा था । वह ऐसा जान पड़ता था मानो कमल
छतरी पर भौरा बैठा हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—(प्रतिहार)—नागराज छंद—

पद्म विरंधि मीन वेद जीव सौर छंदि
कुवेर वेर कै कही न यक्ष भीर
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि
अ बोलु छंद मंद बुद्धि इन्द्र की

शब्दार्थ—जीव=वृहस्पति । सौर=वक्रवाद । वेर=बार,
यक्ष भीर मंडिरे=यक्षों की भीर न लगावो ।

भावार्थ—(अंगद ने रावण का यह विम्व देखा कि

दरवान देवताओं से कहता है कि) हे ब्रह्मा धीरे धीरे वेद पढ़ो, हे बृहस्पति वकवाद छोड़ो, हे कुवेर तुझसे कितनी बार कहा कि तू यहाँ यक्षों की भीड़ न लाया कर, हे सूर्य तुम दूर पर नारदादि मुनियों के साथ जा बैठो, और हे मूर्ख चंद्र तू इतना मत बोल यह इन्द्र की सभा नहीं है ।

अलंकार—उदात्त ।

नोट—एक संस्कृत श्लोक भी ऐसाही हमने सुना है:—

ब्रह्मन्न ध्ययनस्य नैष समयः तूष्णीं बहिः स्थीयतां ।

स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः ॥

वीणां संहर नारद स्तुति कथालापैरलं तुम्बुरो ।

सीता रत्नक भल्ल भग्न हृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः ॥

मूल—चित्रपदाच्छंद—

अंगद यों सुनि बानी । चित्त महा रिस आनी ॥

ठेलि कै लोग अनैसे । जाय सभा महँ वैसे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ठेलि कै=धक्का देदे कर किनारे करके । लोग

अनैसे=(अनिष्ट लोग) निश्चर (रावण के नौकर चाकर) ।

वैसे=बैठे, जाकर बैठगये ।

भावार्थ—अंगद प्रतिहार की यह (अविवेक भरी) वाणी

सुनकर, हृदय में अत्यन्त क्रुद्ध हुए । तब रावण के दरवानों

को धकिया कर अलग करके जाकर सभा में बैठ गये ।

भाषार्थ—(गवण पृष्ठता है कि) त्रिप लंकायक
 तुमने अपने को बताया है, वह लक्ष्मणारुच कौन है ।
 छंद नंबर ४) ! (अंगद) वह विर्माण है तो
 शत्रु का जलना है (तुम भी देव-शत्रु हो, अतः तुम्हें
 जलवेगा—अंगद का यह कथन निवान मन्व हुआ, क
 रावन की दाह-क्रिया विर्माण ने ही की) (रावन)
 जौने वह लंकायक कैसे होगा ! (अंगद) संसार में
 जीवित कौन कहेगा (तू तो मृतक ही है) (रावन)
 इस संसार में कौन मार सकता है ? (अंगद)—वेही
 ही तुम्हें मारेगी । (रावन) अच्छा वीर ! अब यह इच्छा
 कि तुमको उसने किस क्रान से भेजा है ।

अलंकार—गूढोचर ।

मूल—(अंगद)—सर्वथा—

धी रघुनाथ को घानर केशव आयो हो एक न काहू हथोव ।
 सागर को मद झारि चिकारि विक्रुट की देह विहारि गयोव ।
 शीय निहारि संहारि कै रासस शोक अशोकवनीहि दयोव ।
 अन्न कुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नोचोहि जात मयोव ।

शब्दार्थ—आयो हो=आया था । हयो=हन्यो; मारा । सरा
 को मद झारि=समुद्र का अनुल्लंघनीयता का अहंकार निर
 कर । चिकारि=गरज गरज कर (धुपचाप चोरी से नहीं) ।
 विक्रुट=बहु पर्वत जिस पर लंकापुरी स्थित थी । विहारि
 गयो=सर्वत्र घूम गया । अशोकवनी=आशोक वाटिका ।

नीकेहि=सही सलामत (विना किसी हानि के) ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि हे रावण तुझको अबभी अपनी हीन वैभवता नहीं सूझी) श्री राम जी का एक अकेला वानर आया था, उसे तुम न मार सके, समुद्र को अपनी अनुलंघनीयता का घंमड था, उसे गिरागया (लॉघ आया और लॉघ गया) गरज गरज कर त्रिकूट भर में विहार करगया (तेरे महलों में घुसकर तेरी सब स्त्रियों को देख गया) । सीता का पता लगा, राक्षसों को मार, अशोकवाटिका को उजाड़, अक्षय कुमार को मार और लंका को जलाकर सही सलामत लौट गया । तुम उसका कुछ भी न कर सके । क्या इन बातों से तुझे यह नहीं सूझता कि तेरा बल वैभव अब कुछ काम नहीं कर सकता ? अतः अब भी चेत जा ।

मूल—(अंगद)--गंगोदक छंद—राम राजान के राज आये
इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै । देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि
दे मित्र मंत्री जिते पँछि देखो सबै ॥ राखिये जाति को पाँति
को वंसको गौतको साधिये लोक पलोक को । आनि के पाँ
परो, देस लै कोष लै, आसुही ईश सीता चलै ओकको ॥ ९ ।

शब्दार्थ—देवि=पटरानी (जिसके साथ राज्याभिषेक हो
उस स्त्रीकी संज्ञा 'देवी' होती है) । कुंभकर्णादि दे=कुंभकर्ण

कर्णादि । आदि=आदि पद । आदि पद । आदि पद । आदि पद ।

मूल—हरिगीतिका छंद—

(रावण)—कौन हो पठये सो कौने हौं तुम्हें कह काम है

(अंगद)—जाति वानर, मंकनायक दूत, अंगद नाम है

(रावण)—कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सब दही

(अंगद)—लंक जाँरि सँहारि अक्ष गयो सो वान वृथा कही ? ४

भावार्थ—(रावण का प्रश्न)—तुम कौन हो, किसने यहाँ भेजा है, क्या काम है ? (अंगद का उत्तर)—हम जाति

के वानर हैं, लंका-नरेश के दूत हैं, अंगद हमारा नाम है ।

(रावणका प्रश्न)—हौं ! यह तो बतलाओ, वह कौन है

जिसके बाँधकर हमने देह पूँछ सब जलादी थी । (अंगद का

उत्तर)—तो क्या उसका यह कथन बिल्कुल असत्य है कि

उसने लंका को जलाया और अक्षय कुमार को मारा है ?

अलंकार—गूढोत्तर ।

मूल—(महोदर)—

कौनभाँति रहौ तहाँ तुम ? (अंगद) राज प्रेयक जानिये ।

(महोदर)—लंक लाइ गयो जो वानर कौन नाम बखानिये ।

मंघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबे ।

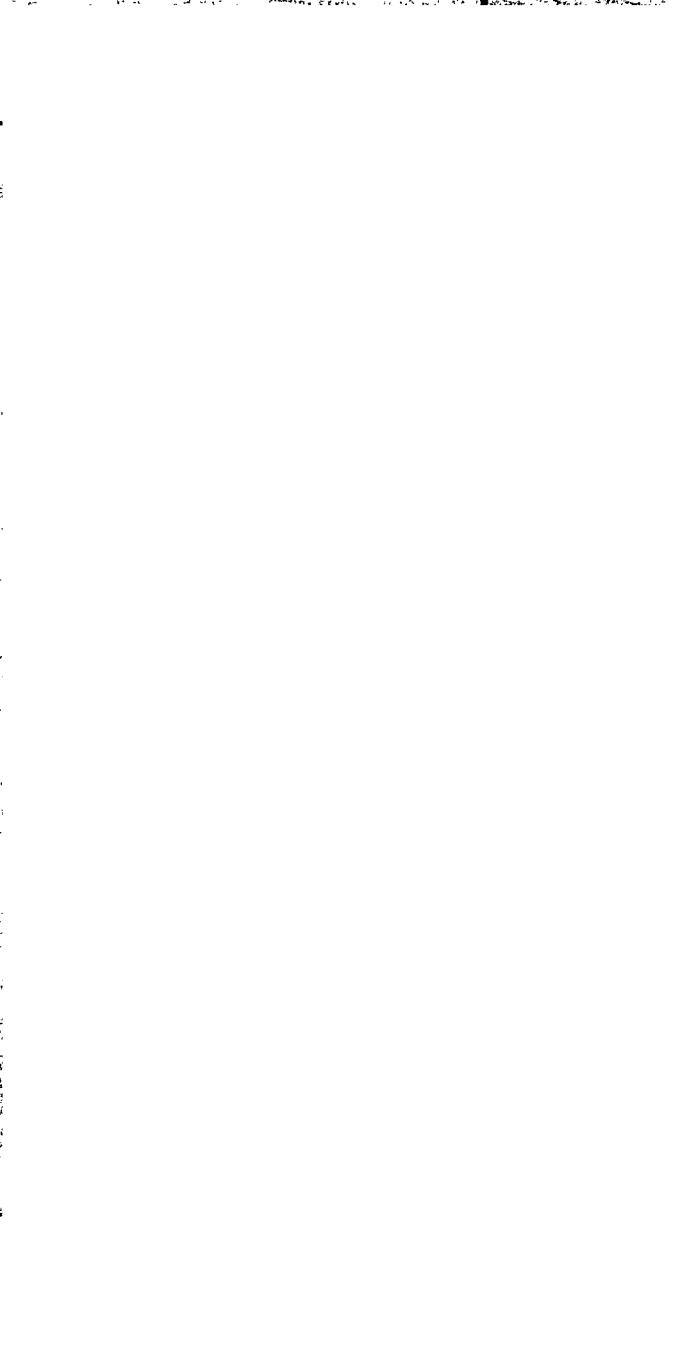
[अंगद]—लोक नराज दुख्यौ रहै अति जानिये न कहौं अचे ॥ ५ ॥

भावार्थ—महोदर नामक मंत्री ने पूँछा कि तुम वहाँ

(अपने मालिक के दरवार में) किस पद पर हो । (अंगद

उत्तर) हम राजदूत हैं । (महोदर का प्रश्न) हौं ! जो

वानर लंका जला गया उसका क्या नाम है बतलाइये तो ।



ना देशकोश ले-अपने पास रख (अर्थात् रामजी तेरा कोप लेने नहीं आये) । आसुही=सीमही (सीता को ही) । ईश=हमारे मालिक (रामजी) । ओक=देश,

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) हे रावण ! अब भी जा । देख, राजाओं के राजा श्री राम जी यहाँ तेरे नगर आगये हैं, मानो तेरा भाग्य ही जगमगा उठा है । पटरानी और माई कुंभकर्ण इत्यादि जितने तेरे हितैषी मंत्री हैं उनसे पूछले (कि मेरी सलाह अच्छी है कि नहीं अपनी जातिपाँति, वंश और गोत्रके लोगों को अब भी वप और लोक परलोक भी बनाले । मेरे कहनेसे तू केवल ना कर कि राम जीको सादर अपने घर लाकर सत्कार कर और अपना राजपाट तथा खजाना तू ले रख (वे तेरा राजपाट और खजाना लेने नहीं आये हैं) । सीता उनको देदे, वे (हमारे मालिक) केवल सीता को पाकर तुरंत अपने घर को लौट जायेंगे ।

मूल—(रावण) गंगोदक—लोक लोकेश स्यो जो जु ब्रह्मा रचे आपनी आपनी सीव सो सो रहँ चारि वाहँ धरे विष्णु रक्षाकरँ थात साँची यहँ वेद धानी कहै । ताहि भ्रमंगही देवदेवश स्यो विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजु संहरै । ताहि हौँ छोड़ि कै पाँय काक परौँ आजु संसार तो पाँय मेरे परै ॥ १० ॥

शब्दार्थ—स्यो=सहित । जो जु=जो जो । सीव=सीमा,

मर्यादा । भ्रूभंगही=जरा टेढ़ी नजर करते ही, तनिक क्रोध से । देवेश=इन्द्र । हौं=मैं ।

भावार्थ—(रावण कहता है) सब लोक और लोकपालों सहित जो जो वस्तु ब्रह्मा ने बनाई है, वे सब वस्तुएँ (सबही जीव) अपनी अपनी मर्यादा में रहते हैं । चार भुजावाले विष्णु इस सृष्टि की रक्षा करते हैं यह वेद कहते हैं । उन सब को तथा देवताओं, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि को जरा से क्रोध से रुद्र जी नष्ट कर देते हैं । उन रुद्र को छोड़ कर अब मैं किसके पैर पडूँ, आज तो संसार मेरे ही पैर पड़ता है (अर्थात् जो होना हो सो हो, मैं अपने इष्टदेव शंकर को छोड़ राम के पैर न पडूँगा) ।

मूल—मदिरा सवैया—

राम को काम कहा ? रिपुजीतहिं, कौन कवै रिपु जीत्यौ कहाँ ?
यालिवली, छल सौं, भृगुनंदन गर्व हन्यो, द्विज दीन महा ।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो विन प्राणन हैहयराज कियो ।
हैहय कौन ? वहै चिसन्यो जिन खेलत ही तोहिवाँधि लियो ? १॥

शब्दार्थ—भृगुनंदन=परशुराम । छिति छत्र हत्यो=पृथ्वी भरके सब क्षत्री मार डाले । हैहयराज=कर्तिवीर्य सहस्रार्जुन (मंडलाधिपति) ।

भावार्थ—(रावण)—राम ने कौन सी करतूत की है ? (जो तू मुझे उनके पैर पड़ने को कहता है) । (अंगद)

वे शत्रुओं को जीत लेते हैं । (रावण) कब और शत्रु को फँदा जाता है ? (अंगद) बली बालि को जीता है (रावण) छलसे, (अंगद) परशुराम का गर्व हरण किया (रावण) वह तो बेचारा कमजोर तपस्वी ब्राह्मण था (अंगद) वह दोन कैसे था, उसने सब क्षत्रियों को मारा किया था और दैह्यराज को मारा था । (रावण) का नाम ? (अंगद) मूल गया, वही दैह्यराज जिनसे खेल ही खेल में तुझको बाँध लिया था ।

अलंकार—गूढ़ोत्तर ।

मूल—(अंगद) मदिरा सवेया—

सिंधु तन्वो उनको धनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी ।
 बाँदर बाँधत सो न बाँधयो एत वारिध बाँधि कै बाट करी ।
 श्रीरघुनाथ प्रतापकी बात तुम्हें दसकंठ न जानि परी ।
 तेलहु तूलहु पाँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ जरी ॥१२॥
 शब्दार्थ—तुम पै=तुमसे (यह रूप बुँदेलखंडी है) । गई तरी=लौंघी न गई । बाट=रास्ता । जरी=जड़ीहुई, युक्त । ती=बली । जराइ जरी=नग जटित (सोने और रत्नों की बनी) ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) हे रावण देख । उनका बाँदर (एक लघु सेवक) समुद्र लौंघ आया, और तुम से (खुद) उनका बनाई धनुष रेखा लौंघी नहीं गई । तुमने सेवक बाँदर को बाँधना चाहा, सो न बाँध सके, उन्हीं ने

समुद्र को बाँधकर रास्ता बनाली । हे रावण ! राम के प्रताप की बात तुम्हें अब भी नहीं जान पड़ी । तेल और रुई से जटित (युक्त) पूँछ तो न जली और सोने की रत्न जटित लंका जल गई, (अर्थात् अनहोनी घटनाएँ हो रही हैं और । तुम्हें सूझती नहीं) ।

अलंकार--यमक ।

मूल—(मेघनाद)--मदिरा सवैया—

छाँड़ि दियो हमही वनरा वह पूँछ की आगिन लंक जरी ।
भीर में अक्ष मन्यो चपि बालक वादिहि जाय प्रशस्ति करी ॥ १२४
ताल विधे अरु सिंधु वैधयो यह चेटक विक्रम कौन कियो ।
वानर को नर को वपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

शब्दार्थ—आगिन=आग । चपि=दबकर । वादिहि=व्यर्थ ही । प्रशस्ति=प्रशंसा, बड़ाई । विधे=नाथे । चेटक=धोखे का चमत्कार । विक्रम=बलप्रदर्शक करतूत । वपुरा=दीन हीन । सुरनायक=इन्द्र ।

भावार्थ—(मेघनाद कहता है) उस वानर को हम ही ने छोड़ दिया था, पूँछ की आगि से लंका में आग लग गई, भीड़ भाड़ के कारण बेचारा छोटा बालक अक्षय कुमार दब कर मर गया, इसी पर वानर ने वहाँ जाकर व्यर्थ ही अपनी बड़ाई की धूम मचादी (कि मैंने ऐसा किया) । सप्तवाल नाथे और समुद्र बाँधा सो तो धोखे का चमत्कार

है, इसमें राम ने कौनसी करतूत कर दिखाई। दान ०
नर वानर की कौन बड़ी बात है, मैंने तो एक ...
में इन्द्रको बाँध लिया था।

अलंकार—काव्यथापत्ति।

मूल—(अंगद) सवैया—

चेटक सौं धनु भंग कियो, तन रावन के अति ही बलु हो।
बाण समेत रहे पचिके तहँ जा सँग पै न तज्यौ थलु हो ॥
बाण सु कौन ? बली बलि को सुन, ये बलि थावन बाँधि ।
येई सु तो जिनकी चिर चोरन नाच नचाइ के छोड़ि दियो ॥१६

शब्दार्थ—बलु हो=बल था। रहे पचिके=हैरान हो गये
परिश्रम करते करते हार गये थे। चिर=बूढ़ी।

(अंगद व्यंग से कहते हैं कि) हाँ ठीक है,
राम ने चेटक करके धनुष भंग किया था। रावण के तन
में तो बड़ा बल था (इन्होंने क्यों न भंग किया ?)।
प्रत्युत उस धनुष के साथ बाणासुर सहित परिश्रम करके
हार गये, पर वह धनुष अपने स्थान से टसकाया न टसका।
(तब रावण ने पूछा) कौन बाणासुर ? (अंगद) बलवान
दैत्यराज बलि का पुत्र। (रावण) हाँ हाँ बेही बलि न जिनको
वामन ने बाँध लिया था। (अंगद) हाँ हाँ बेही बलि तो,
जिन की बूढ़ी दासियों ने तुम्हें नाच नचाकर छोड़
दिया था।

अलंकार—गूढोत्तर ।

मूल—(रावण) मत्तगयंद सवैया—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे ।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदुलै, पितु जालगि मारे ॥
तोसे सपूतहि जाय कै बलि अपूतन की पदवी पगु धारे ।
अंगद संगलै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतै वपुमारे ॥१५॥

शब्दार्थ—आठहु=नील, सुखेन, हनुमान, नल, सुग्रीव,
जामवन्त और राम तथा लक्ष्मण । पदु=उचित हक (वदला) ।
जाय कै=पैदा करके । अपूतन की पदवी=निपुत्री की गति ।
पगु धारे=गये, प्राप्त हुए । वपुमारे=बाप को मारनेवाले को
(राम को) ।

भावार्थ—(रावण भेदनीति से काम लेता है, अंगद को
फोड़ना चाहता है)—हे अंगद ! नील, सुखेन, हनुमान और
नल चार ही वीर न उनके पक्षपाती हैं ? और समस्त कपि
सेना तो तेरी ही है । अतः आठों को आठो ओर बलिदान
करके (मारकर) तू अपने बाप के मारने का बदला ले ।
तुझसा सपूत पैदा करके बलि निपुत्री की सी गति को प्राप्त
हो (धिक्कार है तुझको), अरे अंगद ! अगर तू अकला
डरता है तो ले मेरी समस्त सेना ले जाकर आज ही अपने
बाप के हत्यारे को क्यों नहीं मारता ।

मूल—दोहा—जो सुत अपने बापको वीर न लेश प्रकास ।
तासों जीवित ही मन्यौ लोग कहैं ताजि शास ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो पुत्र खुल्लम खुल्ला ललकार कर अपने बाप के से बदला नहीं लेता उसे लोग निःसंकोच जीवित ही समझते हैं ।

मूल—(अंगद) दोहा—

इन्को बिलगु न मानिये कहि केशव पल साधु ।

पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु न्यों साधु ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—बिलगु मानना=बुरा मानना । साधु = भला आदमी ।

भावार्थ—जल, अग्नि, पवन और ईश्वर भले और बुरे लोगों के साथ एक सा बर्ताव करते हैं (सम दृष्टि होते हैं) अतः इनके कार्य से बुरा न मानना चाहिये (वात्पर्य यह है कि राम को तुम मेरे बाप का शत्रु बतलाते हो सो झूठ है) वे तो समदर्शी हैं, उनके लिये न कोई शत्रु है न मित्र ।

मलंकार— चौथी तुल्ययेतिगता ।

मूल—(रावण)—दुतविलंबित छंद—

उरसि अंगद लाज कछू गहौ । जनकघातक बात वृथा कहौ ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं सहरौ । सकल वानरराज मुम्हें करौ ॥१८॥

शब्दार्थ—वात वृथा कहौ=व्यर्थ बड़ाई करते हो ।

मूल—(अंगद) निद्रापालिका छंद—शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं । दूत विधिभूत कबहूँ न उर आनहीं ॥ आप मुझ दोस्रि अभिलाप अभिलापहू । रासिभुज सीस तब और कहुँ राखइ

धर्म—सम=उदासीन (न शत्रु न मित्र) । दूत विधि
नूत=तुम्हारी यह नवीन दूतविधि (तुम्हारी यह तोड़ फोड़
की नवीन भेद नीति) ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) हे रावण ! हम अपने शत्रु
मित्र और उदासीन लोगों को अपने मन में अच्छी तरह
समझते हैं । तुम्हारी यह नवीन भेदनीति को मैं कभी स्वीकार
नहीं कर सकता । अपना मुँह देख कर तब राम को मारने
की अभिलाषा करो, पहले अपने सिरों और मुजाओं की रक्षा
करलो तब और की रक्षा करना ।

अलंकार—काकुवकोक्ति ।

मूल—(रावण)—इन्द्रवज्रा छंद—मेरी यड़ी मूल कहा फह
रे । तेरो कहाँ दूत सबै सहों रे ॥ वै जो सबै चाहत तोति
मान्यौ । मारौ कहा तोहि जो दैव मान्यौ ॥ २० ॥

भावार्थ—यह मेरी यड़ी मूल है (जो अबतक तुझको मार
नहीं डाला) सो क्या कहूँ, मूल तो हो गई । दूत समझ कर
तेरी सब बातें सह रहा हूँ । वे लोग (राम सुग्रीवादि) तुझे
मरवाना ही चाहते हैं (इसी लिये तुझको दूत बनाकर
यहाँ भेजा है कि मेरे हाथों तू मारा जाय) सो अब मैं तुझे
क्या मारूँ, तुझे तो दैवही ने मार रक्खा है (शत्रुओं के
बीच रहता है तो किसी न किसी दिन अवश्यही मारा जायगा)

— मूल—(अंगद)—उपेन्द्रवज्रा छंद—

नराच श्रीराम जहाँ धरेंगे । अशेष माथे काटि भू परेंगे ॥
शिखा शिवा स्वान गहे तिहारी । फिरँ चहूँ ओर निरै विहारी ।

शब्दार्थ—नराच=(नाराच) वाण । अशेष=सब । शिवा
शृगाली, स्यारनी । निरैविहारी=(रावण प्रति संबोधन)
हे नरक विहागी रावण, हे पापी रावण !

भावार्थ—हे पापी रावण ! श्रीराम जी जिस समय
धारण करेंगे, उस समय तेरे सब मस्तक कट कट कर
में गिरेंगे । और स्यारनी तथा कुचे तेरी चोटी पकड़े प.
ओर घसीटते फिरेंगे ।

मूल—(रावण)—भुजंगप्रयात छंद—

महामोक्षु दासी सदा पाँइ धोवै । प्रतिहार है कै कृपा सूर जे
छपानाथ लीन्है रहैं छत्र जाको । करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको

रा०६।५—प्रतिहार=द्वारपाल । सूर=सूर्य । कृपा जोवै=कृपा
का अभिलाषी रहता है । छपानाथ=चंद्रमा ।

भावार्थ—(रावण कहता है कि) हे अंगद ! महामोक्षु
दासी होकर जिसके पैर धोया करता है, सूर्य दरवान होकर
जिसकी कृपा का अभिलाषी रहता है, चंद्रमा जिसका
छत्र लिये रहता है, उसका शत्रु सुग्रीव क्या अनभला कर
सकता है ?

अलंकार—उदात्त ।

—सका मेघमाला शिखी पाककारी । करै कोतवाली महा
री ॥ पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके । कहा वापुरो शशु
सुग्राव ताके ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—सका=(फारसी शब्द सका) भिखी, पानी
भरने वाला । शिखी=अग्नि । पाककारी, रसोइया=बावरची ।
कोतवाली=पहरेदारी । महादण्डधारी=यमराज । वापुरो=
वेचारा, दीन हीन ।

भावार्थ—(रावण कहता है) मेघसमूह जिसके यहाँ पानी
भरते हैं, अग्निदेव जिसके यहाँ रसोइया का काम करते हैं,
यमराज जिसके यहाँ चौकीदारी करते हैं, और ब्रह्मा जिस
के दरवाजे वेद पढ़ते हैं, ऐसे रावण को वेचारे सुग्राव की
शत्रुता की क्या परवाह है ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—(अंशु) गरुडगवन्द सञ्चया—पेट चढ़्यौ पलना पलका
चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे । चौक चढ़्यौ चित्रसारी
चढ़्यौ गज वाजि चढ़्यौ गढ़ गर्व चढ़्यौ रे ॥ व्याम विमान
चढ़्यौ रहीं फहि फेशय सो कवहुँ न पढ़्यौ रे । चेतत नाहि
रह्यौ चढ़ि चित्त सो चाहत सुह चिताहू चढ़्यौ रे ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—पेट चढ़्यौ=गर्भ में आकर माता के पेट पर चढ़ा ।
पलका=पलंग । पाल की चढ़ा=(विवाह समय में) । चौक चढ़्यौ=
विवाह चौक । चित्रसारी=रंगमहल । व्यामविमान=पुष्पक विमान ।
सो कवहुँ न पढ़्यौ=उस ईश्वर का नाम कभी न जग । चित्त

चढ़ि रह्यौ=मन में अहंकार भर रहा है । चिता=सरा ।
 हू चढ्यौ चाहत=मरने का समय आगया (तिस पर
भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) रे मूढ़ रावण ! तू
 के पेट पर चढ़ा, पलना पर चढ़ा, पलंग पर चढ़ा
 विवाह समय पालकी पर चढ़ा और अबतक मोह ही में
 रहा । फिर विवाह चौक पर चढ़ा, तदनन्तर लौ
 रंगमहल पर चढ़ा, पुनः हाथी घोड़ा पर चढ़ा और
 गढ़ पर चढ़ा । पुष्पक विमान पर चढ़ कर
 घूमता फिरा (इतने भोग विलास सब कर लिये, तब
 लुष्टि न हुई) पर उस ईश्वर का नाम न जपा (जो
 है) तू अब भी चेतता नहीं, अब मरने का समय
 तब भी तेरा चित्त अभिमान ही पर चढ़ा है (आश्चर्य है)

अलंकार—सार और पदार्थावृत्त दीपक ।

मूल—(रावण) भुजंगप्रयात छंद—निकान्यौ जु भैया
 राज जाको । दियो काढ़ि कै जू कहा शास ताको ॥
 राली फहौ वात तोसौ । सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसौ ॥ २१

शब्दार्थ—निकान्यो=घर से दूर भेजा हुआ । दियो काढ़ि
 (बुँदेलखंडी बोल-बाल) निकाल दिया । वानराली-
 की सेना । जुरै=सामने आवै ।

भावार्थ—घर से दूर भेजे हुए माई (भरत) ने बिना
 ही बाप का दिया हुआ राज जिस राम से छीन लिया

जिसे देस से निकाल दिया, उस राम से मुझे क्या डर है (अर्थात् जो अपने बाप का दिया राज्य नहीं रख सका वह दूसरे का राज्य क्या छीनेगा), तिस पर अच्छे सुभट योद्धाओं की सेना भी साथ नहीं है केवल वानरों की सेना साथ है। हे अंगद ! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, वह राम (जो ऐसा निर्बल है) मुझ से कैसे युद्ध कर सकेगा ।

मूल—(अंगद)—मत्तगयंद सवैया—

हाथी न साथी न घोरे न चरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ विलैहैं ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय फहूँ संग रहैं ॥
केशव काम के राम विसारत, और निकाम रे काम न ऐहैं ।
चेति रे चेति अजौ चित अंतर अंतक लोक अकेलोई जैहैं ॥२६॥

शब्दार्थ—न=और । कुठाउँ विलैहैं=इसी बुरे ठाम (संसार) में विलीन हो जायँगे । वित्त=धन । फहूँ=कभी । काम के=अपने हितैषी । काम न ऐहैं=कुछ भलाई न कर सकेंगे । चित अंतर=चित्त में । अंतक लोक=यमलोक ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) हेरावण ! चेत कर, हाथी घोड़े, साथी, चाकर, और गाँऊँ ये सब यहीं संसार में विनाश हो जायँगे । पिता, माता, पुत्र मित्र, धन स्त्री ये सब कभी भी तेरे साथ सदैव न रहेंगे । केशव कहते हैं कि अपने हितैषी केवल एक राम हैं, सो तू उनको भुलाये देता है, अन्य सब तो निकम्मे हैं, वे कुछ भलाई न कर सकेंगे । अब भी चेत जा, चित्त में समझले कि यमपुरी को अकेला

ही जाना पड़ेगा ।

मूल—(रावण)—भुजंगप्रयात—

डरै गाय विप्रे अनाथ जो भाजै । पर द्रव्य छोड़े परखीहि लाजै ।
पर द्रोह जासौ न होवै रतीको । सो कैसे लरै घेप कीन्हे जती को २७
भाषार्थ—जो गाय और ब्राह्मण से डरता है, अनाथ (अति
निर्बल) को देख कर भागता है, पर द्रव्य ग्रहण नहीं करता,
परखी के सामने लज्जित होकर मुख नीचा कर लेता है, जिससे
एक रत्नी भर भी पर द्रोह नहीं हो सकता, वह यती-भेष
धारी राम मुझसे क्या छड़ सकता है ?

अलंकार—व्याजस्तुति ।

मूल—दोहा—गेद कयों मैं खेल को, हरगिरि केशोदास ।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—हरगिरि=कैलास । सहास=प्रसन्नतापूर्वक ।

मूल—(अंगद) वृद्धक—जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि
ऐसे कोटि कपिन कं बालक उठावहीं । काटे जो कहत सीस
काटत घनेरे घाघ भगर के खेल कयों सुभट पद प्रावहीं ॥
जीत्यो जो सुरेश रण शाप कपिनारि हीको समझहु हम द्विज
नाते समझावहीं । गही राम पायँ, सुख पाय करै तपी तप,
सीताजू को देहि, देव दुंदुभी बजावहीं ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—हरगिरि=कैलास । घनेरे=बहुत से । घाघ=वा-
जीगर, इन्द्रजालिक । भगर=बालकों का एक खेल जिसमें
दो दल होते हैं । पहले दल का एक बालक दौड़ता हुआ
दूसरे दल के किसी बालक को छूने का उद्योग करता है

यदि उसने किसीको छूलिया और उसने उसे पकड़ न लिया, तो वह छुवा हुआ बालक 'मृत' कहा जाता है। इस खेल को इस देश में साधारणतः 'कबड्डी' वा 'बैजला' कहते हैं। सुरंश=इन्द्र। ऋषि नारि=अहल्या। द्विज नाते=तुझे ब्राह्मण और विद्वान् समझकर। करै तपी तप=हे तपस्वी! अब तुम तप करो (बूढ़े हो चुके अब तपस्या करने का समय है)।

भावार्थ— (अंगद कहते हैं कि) जैसे कैलास पर्वत तुमने उठा लिया—जैसा कि तुम कहते हो—ऐसे करोड़ों वानर-बालक उठाया करते हैं (इस से वे वीर नहीं कहलाते); सिर काटने की बात तुम कहते हो, सो इस तरह तो अनेक बाजीगर काटा ही करते हैं (वे धीर वीर नहीं कहलाते); कबड्डी का खिलाड़ी जो बहुतों को मारता है वह सुभट नहीं कहलाता। तुमने जो इन्द्र को जीत लिया, सो उस को तो अहल्या का शाप ही ऐसा था (तुम्हारी कुछ करतूत नहीं)। अब भी समझ जाओ, हम तुम्हें ब्राह्मण समझ कर समझाते हैं। तुम रामजी के पैरों पड़ो और सुख पूर्वक तपस्या करो, सीता राम जी को दे दो, तो सब देवता प्रसन्न होकर दुंदुभी वजावें और तुम्हारा यशोगान करें।

मूल—(रावण)—वंशस्थ छंद—

तपी जपी विप्रन छिप्रही हरीं । अदेध द्वेपी सब देव संहरीं ॥
सिया न देहौ यह नेस जी धरीं । अमानुपी भूमि अधानरी करीं ॥३०॥

शब्दार्थ—छिप=शीघ्र । अदेव, द्वेषी=निश्चरों के शत्रु ।

अमानुषी=मनुष्यों से रहित । अबानरी=वानर विहीन ।

भावार्थ—रावण बोला, हे अंगद मैं तप जप करनेवाले ब्राह्मणों को शीघ्र ही मार डालूंगा, निश्चरों के शत्रु सब देवों को भी मारूंगा । मैंने यह सङ्कल्प कर लिया है कि सीता न दूँगा और समस्त भूमि को नर वानर से रहित कर दूँगा (नर तथा वानर जातियों का विनाश कर दूँगा) ।

मूल—(अंगद) मत्तगयन्द सधैया—

पाहम ते पतिनी करि पावन दूक । कियो घनुइ हर को रे
छत्र विहीन करी छन में छिति गर्य ह्यो तिमके घर को रे ।
पर्वत पुंज पुरैन के पात समान तरे, अजहँ घरको रे
होयँ नरायन हू पै न ये गुन कौन यहाँ नर वानर को रे

शब्दार्थ—पुरैन=पुरइन (कमल) । अजहँ=इतने पर भी

घरका=घड़का, शक्का । गुन=काम । नर वानर —
वानर की सन्तान ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) जिसने पत्थर से सुन्दर बनादी, महादेव का घनुप भी तोड़ डाला, और जिसने में पृथ्वी को क्षत्री रहित कर दिया था उनके बल के गर्व को हरण किया, जिनके प्रभाव से पत्थर कमल पत्र समान पर उत्तराने लगे उनके विषय में अब भी तुझे शक्य है । कार्य ऐसे हैं जो नारायण से भी नहीं हो सकते, तू यह

(राम दल में) नर वानर की सन्तान किसको समझता है ?

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(रावण)—चंचरी छंद—

देहि अंगद राज तो कहँ मारि वानरराज को ।

बाँधि देहि विभीषणै अरु फोरि सेतु समाज को ॥

पूँछ जारहि अक्षरिपु की पायँ लागहि रुद्र के ।

सीय को तव देहुँ रामहि पार जायँ समुद्र के ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—वानरराज=सुग्रीव । अक्षरिपु=हनुमान ।

भावार्थ—(रावण सुलहनामे के लिये अपनी शर्तें पेश करता है) हे अंगद ! यदि राम सुग्रीव को मार कर तुझे राजा बनादें, विभीषण* को बाँध कर मेरे हवाले करें, समुद्र-सेतु को तोड़ दें, हनुमान की पूँछ जलवाँदें और शिव के पैरों पड़ें तो मैं सीता दे दूँ और वे समुद्र उतर कर अपने घर चले जायँ ।

अलंकार—सम्भावना ।

मूल—(अंगद) चंचरी छंद—

लंक लाय दियो बली हनुमंत संतन गाइयो ।

सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छोट घहाइयो ॥

ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौँ उलटी करौँ ।

आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं तेहि ते डरौँ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—लाय दियो=जला गया है । सोधि कै=अच्छी तरह से । छीर=पानी । अन्ध=मूर्ख । हौँ=मैं ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) जिस लड्डा को हनुमान ने बला डाला, और जिसको सेतु बाँधते नल ने पानी से अच्छी तरह बड़ा दिया, उसे (जली-वही लड्डा को) हे मूर्ख ! तुझ समेत मैं उखाड़ कर चलट दे सकता हूँ । पर डरता इस बात से हूँ कि बेचारे विभीषण राज्य कहाँ करेगा (वे कहेंगे कि अंगद ने जली वही लड्डा भी हमारे लिये न छोड़ी-इससे मैं डरता हूँ नहीं तो अभी चलट देता) ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

मूल—दोहा—अंगद रावण को मुकुट लै करि उड़ो सुजान ।
मनो चल्यो यमलोक को दससिर को प्रस्थान ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—दससिर=रावण । प्रस्थान=वह वस्तु जो यात्रा दोष निवारणार्थ शुभ मुहूर्त में स्नानान्तर में रखा दी जाती है।

भावार्थ—अंगद रावण का मुकुट लेकर शीघ्रता से चले, मानो यमलोक के लिये रावण का प्रस्थान रखने जाते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

सोलहवाँ प्रकाश समाप्त

सत्रहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या सत्रहें प्रकाश में लंका को अवरोधु ।

शत्रु चमू वर्णन समर लक्ष्मण को परमोधु ॥

शब्दार्थ—अवरोधु=धिराव, चारो ओर से आक्रमण । परमोधु= (प्रसुग्ध)बेहोश होना, मूर्च्छित होना । लक्ष्मण को परमोधु= लक्ष्मण का शक्ति से घायल होकर मूर्च्छित होना ।

मूल—दोहा—अंगद लै वा मुकुट को परे राम के पाइ ।
राम विभीषण के शिरसि भूपित कियो बनाइ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—शिरसि=सिरपर । बनाइ=अच्छी तरह से ।

मूल—पद्मटिका छंद—

दिसि दक्षिण अंगद पूर्व नील । पुनि हनुमत पच्छिम शत्रुशील ॥
दिसि उत्तर लक्ष्मण सहित राम । सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम ॥२॥
सँग युत्थप युत्थप बल विलास । पुर फिरत विभीषण आस पास ।
निसि वासर सब को लेत सोधु । यहि भाँति भयो लंका निरोधु ॥
जब रावण सुनि लंका निरोधु । तब उपजो तन मन परम क्रोधु ॥
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि । दक्षिणहि महोदर गयो दौरि ॥४॥
भयो इन्द्रजीत पच्छिम दुवार । है उत्तर रावण बल उदार ।
कियो विरूपाक्ष धित मध्यदेश । करै नारान्तक चहुँघा प्रवेश ॥५॥

शब्दार्थ—(२)शत्रुशील=शत्रुभाव से परिपूर्ण । विराम=स्थित ।

सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम=सुग्रीव एक केन्द्रस्थान (केन्द्र)

में अवस्थित हैं ।

(३) युत्यप=यूयपति, कप्तान । युत्यप बल विलास=एक कप्तान के साथ जितनी सेना रहती है ठीक उतनी ही । संग विलास=एक कप्तान की मातृहती में ठीक उतनी ही सेना दी गई है जितनी का संचालन ठीक रीति से हो सके । सोषु लेव=स्वर लेते रहते हैं, जिसे वस्तु की जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ वह वस्तु पहुँचाते हैं । निरोधु=धिगव, चारों ओर से घेर लेना । (४) पौरि=द्वार । (५) दन्द्रजाव=मेघनाद । बल उदार=बहुत बली । मध्यदेश=सेना का केन्द्रस्थल (हेडक्वार्टर्स) । धित क्रियो=नियुक्त किया गया, रक्सा गया । चहुषों=चारों ओर ।

मूल—प्रमिताक्षरा छंद—

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये । बहु क्रश कँगूरनि लागि गये ।
तव स्वर्ण लंक महँ शोभ भरे । जनु अग्नि ज्वाल महँ धूम भरे ।

शब्दार्थ—कँगूरनि लागि गये=कँगूरों पर चढ़ गये ।

भावार्थ—चारों दरवाजों पर घोर युद्ध हुए । बहुत से रीछ कौट के कँगूरों पर चढ़ गये, उस समय सोने की लंका में ऐसी शोभा हुई मानो अग्नि की ज्वालाओं पर धुँवाँ है (स्वर्ण-कँगूरों अग्निज्वालावत्, रीछ धूमवत्) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—मरकत मणि से शोभिजै सवै कगूँरा चारु ।

आय गयो जनु घात को पातक को परिवारु ॥७॥

शब्दार्थ—मरकत मणि=मर्कत मणि समान काले रीछ ।

घातको=मारने के लिये । पातक=पाप (पापकारंग काला है) ।

भावार्थ—सब सुन्दर स्वर्ण कंगूरे नीलमणि समान लिपटे हुए रीक्षों से ऐसे जान पड़ने लगे मानो रावण को विनष्ट करने के लिये पापों का समूह ही एकत्र हो गया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद (चौपाई)—

तव निकसो रावण-सुत सुरो । जेइ रण जीत्यो हरि बल पूरो ॥

तप बल माया तम उपजायो । कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥८॥

शब्दार्थ—हरि=इन्द्र । बलपूरो=बली । संभ्रम=बड़ा भारी भ्रम (धोखा) ।

भावार्थ—तब युद्ध करने के लिये बली इन्द्र को भी जीत लेने वाला रावणपुत्र मेघनाद कोट से बाहर आया और उसने अपने तपबल से माया का अंधकार पैदा कर दिया जिससे वानरों को बड़ा भारी धोखा हुआ ।

अलंकार—निदर्शना से पुष्ट हेतु ।

मूल—दोषक छंद—

काहु न देखि परै वह योधा । यद्यपि हैं सिगरे बुधि बोधा ॥

सायकसो अहिनायक साँध्यो । सोदर स्यो रघुनायक बाँध्यो ॥९॥

शब्दार्थ—बुधिवोधा=दूसरों को बुद्धि देनेवाले अर्थात् अति बुद्धिमान । सो=उसने । अहि नायक सायक=सर्पबाण, नागपाश । साँध्यो=संधान किया । स्यो=सहित ।

भावार्थ—अंधकार के कारण वह योद्धा किसी को दिखलाई नहीं पड़ता, यद्यपि सबही वीर बड़े बुद्धिमान हैं (पर कोई उपाय नहीं चलता) । उसने नागपाश का संधान किया और लक्ष्मण सहित श्रीराजी को बाँध लिया ।

मूल—रामहि बांधि गयो जब लंका । रावण की सिंगरी गई शंका ॥
देखि बंधे तब सोइर दोऊ । यूथप यूथ प्रसे सब कोऊ ॥१०॥

मूल—स्वागता छंद—

इन्द्रजीति तेइ छै उरलायो । आहु काज सब भो मन भायो ॥
के विमान अधिरूढ़ित धायो । जानकीहि रघुनाथ दिखायो ॥११॥

भावार्थ—(जब मेघनाद राम को नागपाश में बाँधकर उन्हें रणभूमि में छोड़कर, रावण के पास आया तब) रावण ने मेघनाद को छाती से लगा लिया और कहा कि बाह बेटा ! शाबाश ! आज सब काम मेरे मन का हुआ । तदनन्तर उसी दशा में दिखलाने के लिये सीता को विमान पर सवार कराकर रावण शीघ्रता पूर्वक राम के पास ले गया और उन्हें दिखलाया कि देखो हमने राम की यह गति कर डाली ।

मूल—राजपुत्र युत नागनि देख्यौ । भूमि पुत्रि तरु चंदन लेख्यौ ॥
बंनगापिभु पन्नगसार्ह । काल छाल कछु जानि न जाई ॥१२॥

शब्दार्थ—राजपुत्र=राम और लक्ष्मण को । भूमिपुत्रि= सीता जी ने । पन्नगारिप्रभु=गरुड़ के स्वामी, गरुड़गामी विष्णु । पन्नगसाई=शेष की शय्या पर सोनेवाले नारायण । काल चाल=समय का हेर फेर ।

भावार्थ—जानकी ने राम लक्ष्मण को नागफाँस में बँधा देखा, वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पवेष्टित चन्दन वृक्ष हैं । (कवि कहता है कि) आश्चर्य है, समय का हेर फेर कुछ जाना नहीं जाता, देखो तो जो राम विष्णु और नारायण ही हैं (जो गरुड़गामी और शेषशायी हैं) वे ही राम आज नागफाँस में बँधे हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (पूर्वाद्ध में) ।

मूल—दोहा—कालसर्प के कवल तें छोरत जिनको नाम ।
बँधे ते ब्राह्मण वचनवश, माया सर्पहि राम ॥१३॥

भावार्थ—(कवि का कथन है कि) जिनका नाम लेने से जीव काल सर्प के फँदे से छूट जाता है (अमर हो जाता है वा मुक्त हो जाता है) वे ही राम, ब्राह्मण के वचन के वशीभूत होकर माया की नागफाँस में बँधे हैं ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट निदर्शना ।

मूल—स्वागता छंद—

पन्नगारि तबही तहँ आये । ध्याल जाल सब मारि भगाये ॥
लंकमाँझ तबही गई सीता । सुन्न देह अवलोकि सुगीता ॥१॥

शब्दार्थ—पन्नगरि=गरुड़ । सुभ्र देह अवलोकि=राम लक्ष्मण के शरीरों को नागफाँस से मुक्त देख कर । सुगीता=प्रशंसित (सती पतिव्रताओं में प्रशंसित—यह शब्द सीता को विशेषण है) ।

भावार्थ—इसी समय (जब सीताजी राम लक्ष्मण के शरीर को देख रही थीं) गरुड़ जी वहाँ आये और नागफाँस के सब सर्पों को मार भगाया । जब सुमंगीता सीता ने राम लक्ष्मण के शरीरों को नागफाँस के कष्ट से मुक्त देख लिया तब लंका को (निज निवासस्थान को) लौट गई । (भाव यह कि सती पतिव्रता सीता के दृष्टिपात मात्र से उनके पति और देवर की भारी मुसीबत कट गई—माता सीता की कृपा—कोर क्या नहीं कर सकती) ।

मूल—(गरुड़) —इन्द्रवज्रा छन्द—

श्रीराम नारायण लोककर्ता । प्रह्लादि रुद्रादिके दुःखहर्ता ॥
सीतेश मोको फलु देहु शिक्षा । नान्ही बड़ी ईशजु होइ इच्छा ॥१५॥

भावार्थ—(गरुड़ जी विनती करते हैं—) हे राम ! आप लोक रचना कारक नारायण ही हैं, आप भद्रा और रुद्रादि देवताओं के दुःखहर्ता हैं (मैं आपका दुःख क्या निवारण करूँगा) हे सीता-पति ! मुझे निज इच्छानुसार छोटी नदी कोई आशा दीजिये वैसा मैं करूँ (वात्पर्य—यह कि आज्ञा हो तो आपकी सेवा हित में यहाँ रहूँ, शायद फिर ऐसा ही करेई)

काम आ पड़े) ।

मूल—(राम)—

कीये हुतो काज सबे सु कीन्हो । आये इतै मो कहँ सुख्य दीन्हो ॥
पाँ लागे वैकुंठ प्रभा विहारी । स्वलोक गो तत्क्षण विष्णुधारी ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—कीये हुतो=जो करना था । इतै=यहाँ । सुख—
(छन्द के गण के निर्वाह के कारण केशव ने 'सुख' शब्द
को कई जगह इस रूप से लिखा है) । पाँ लागे=चरण
छूकर । वैकुंठ प्रभाविहारी=वैकुंठ में रहनेवाले । स्वलोक=
वैकुंठ । विष्णुधारी=विष्णु वाहन (गरुड़) ।

भावार्थ—रामजी ने कहा, हे गरुड़ जो कुछ तुम्हें करना था
सो सब तुम कर चुके (तुम्हारी इतनी ही सहायता परकार
थी, अब कभी जरूरत न पड़ेगी) तुम यहाँ आये और मुझ
को बड़ा सुख दिया (अब तुम निज स्थान को जाओ) यह
सुन वैकुंठ में रहने वाले गरुड़ श्रीरामजी के पैर छूकर तुरंत
वैकुंठ को चले गये ।

मूल—इन्द्रवज्रा छंद—

धूम्राक्ष आयो जनु दंडधारी । ताको एनूमंत भयो प्रहारी ।
जिते अकंपादि बलिष्ट भारे । संग्राम में अंगद वीर भारे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—दंडधारी=यमराज । प्रहारी भयो=मार डाल्य ।

मूल—उपेन्द्र वज्रा छंद—

अकंप धूम्राक्षहि जाभि जूझ्यो । महोदरे रावण मंत्र वूझ्यो ॥
सदा हमारे तुम मंत्र वादी । रहे कहा है अतिही विचादी ॥

मूल—(महोदर)—

कहै जो कोऊ हितवंत बानी । कही सो तासो अति दुःखदानी ॥
गुनौ न दावै बहुधा कुदावै । सुधी तब साधत मौन भावै ॥१६॥

भावार्थ—महोदर ने उत्तर दिया कि जो कोई हितकी बात कहता है, उसे तुम दुःखद बात कहते हो, (गालियाँ देते हो) । तुम्हारी मति ऐसी हो गई है कि बहुधा दाव कुदाव (मौका-वेमौका) नहीं समझती, इसी से बुद्धिमान (सुधी) जन मौनभाव ग्रहण करते हैं: (इसी से मैं भी चुप हूँ) ।

(राजनीति वर्णन)

मूल—उपेन्द्र राजा—कहौ शुकाचार्य सुं हीं कहौ जू । सदा तुम्हारे हित संग्रहौं जू ॥
नृपाल भू में विधि चारि जानौ । सुनौ महाराज सबै बखानौ ॥ २० ॥

भावार्थ—श्री शुकाचार्य जी ने जो कुछ कहा है, वही मैं कहता हूँ, क्योंकि मैं सदा तुम्हारा हित चाहता हूँ । सुनिये मैं बखान करता हूँ । पृथ्वी में चार प्रकार के राजा होते हैं ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

यहै लोक एकै सदा साधि जानै । यलो वेनु ज्यों आपु ही ईश मानै ॥
करै साधना एक परलोकही को । हरिचन्द्र जैसे गये दे मही को २ ॥

भावार्थ—एक प्रकार के राजा इसलोक को ही सर्वस्व समझ कर इसी की साधना करना जानते हैं, जैसे बड़ी वेणु जो अपने को ईश्वर मानता था । एक प्रकार के राजा परलोक

ही की साधना करते हैं, जैसे राजा हरिश्चन्द्र जी, जिन्होंने सारी पृथ्वी ही दान कर दी थी।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

तुहँ लोक को एक साँधे सयाने। विदेहीन ज्यों वेद वानी बखाने॥
नठै लोक दोऊ हठी एक ऐसे। त्रिशंकै हँसै ज्यों भलेऊ अनैसे ॥२१॥

भावार्थ—एक ऐसे सयाने होते हैं कि दोनो लोक साधते हैं, जैसे वेद में वर्णित विदेही राजा (मिथिला के राजा जनक इत्यादि) हुए हैं। और एक ऐसे हठी होते हैं कि दोनो लोक नष्ट करते हैं, जैसे त्रिशंकु राजा जिसे मले घुरे सब लोग हँसते हैं।

मूल—दोहा—तुहँ राज को मैं कह्यौ तुमसो राज चरित्र।
रुचे सु कीजै चित्त में चितहु मित्र अमित्र ॥२३॥

भावार्थ—चारों प्रकार के राजाओं का चरित्र मैंने कह दिया, अब जो तुम्हें रुचे सो करो, और मन में समझ बूझ कर चाहे मुझे मित्र समझिये चाहे अमित्र।

(मंत्री वर्णन)

मूल—दोहा—चारि भाँति मन्त्री कहे चारि भाँति के मन्त्र।
मोहिं सुनायो शुक्र जू सोधि सोधि सय तन्त्र२४॥

शब्दार्थ—तंत्र=ग्रंथ।

मूल—छन्द—एक राज के काज हतै निज फारज फाजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मन्त्री सुख साजे ॥ एक राज के काज
आपने काज विगारत। जैसे लोचन हानि सही फयि बलिहि

निघारत ॥ एक प्रभु समेत अपनो मलो करत दासराधि दूत
ज्यो। एक अपनो अरु प्रभु को धुरो करत रावरो पृत ज्यो ॥२५॥

शब्दार्थ—हर्ते=नष्ट करते हैं। सुरथ= राजा सुरथ की कथा
मार्कण्डेय पुराण में देखो। कथि=शुक्राचार्य। दासराधिदूत=
(रामदूत) हनुमान जी। रावरो पृत=(आपका पुत्र)
मेघनाद-(हनुमान को बाँध लाया जिससे लंका जली)।

भावार्थ—एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपनी मलाई के लिये
राज्य की मलाई नष्ट करदेते हैं। जैसे राजा सुरथ को निकाठ
कर मंत्री ने अपना सुख साधन किया (देखो प्रकाश २३
छंद नं० १६)। एक ऐसे होते हैं कि राजा की मलाई के
लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं जैसे राजा बलि को निवारण करते
हुए शुक्राचार्य ने अपना एक नेत्र तक खो दिया। एक
मंत्री ऐसे होते हैं कि अपना और अपने मालिक दूनोंका मला
करते हैं, जैसे हनुमान। और एक ऐसे होते हैं कि अपना
और अपने राजा दूनों का बुरा करते हैं जैसे आपका
पुत्र मेघनाद।

मूल—दोहा—मन्त्र जु चारि प्रकार के मंत्रिन के जे प्रमान।
विप से दाड़िम बीज से गुड़ से नीव समान२६॥

भावार्थ—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं यह
निश्चय जानो। एक विप समान, एक अनार बीज समान,
एक गुड़ सा और एक नीव सा। विपसा=खाने में कटु और

मारक, सुनने में कटु और नष्टकारक भी । दाड़िम
बीजसा=खाने में मधुर और पुष्टिकारक-सुनने में मधुर और
गुण में पुष्टिप्रद । गुड़ सा=सुनने में मधुर पर प्रभाव में गर्म
अर्थात् दस्तावर (दुखद) । नींबू सा=सुनने में कटु पर
गुण में रोगहारी (सुखद) ।

अलंकार--धर्मलुता उपमा ।

मूल--चन्द्रवर्त्म छन्द--

राजनीति मत तत्त्व समझिये । देस काल गुनि युद्ध अरुझिये ॥
मंत्रि मित्र अरि को गुण गहिये । लोक लोक अपलोक न बहिये २७

शब्दार्थ--युद्ध अरुझिये=युद्ध में फँसिये । अपलोक=अपकीर्ति,
अपयश ।

भावार्थ--हे प्रभु ! राजनीति-मत का सार समझ लीजिये,
तब देश और काल को अच्छी तरह विचार कर (यदि
देश और काल अपने अनुकूल हों तो) युद्ध आरंभ कीजिये ।
मंत्री, मित्र अथवा शत्रु की कही अच्छी बात को ग्रहण
करना चाहिये । लोक लोकान्तर में अपयश न देना
चाहिये ।

मूल--(रावण)--चन्द्रवर्त्म छन्द--

चारि भाँति नृपजो तुम कहियो । चारि मंत्रि मत में मन गहियो ।
राम मारि सुर एक न बचिहँ । इन्द्रलोक बसोवास हि रचिहँ

शब्दार्थ--बसोवास=निवासस्थान ।

नियारत ॥ एक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत
ज्यो । एक अपनो अरु प्रभु को दुरो करत रावरो पूत ज्यो ॥२५॥

शब्दार्थ—हर्तै=नष्ट करते हैं । सुरथ= राजा सुरथ की कथा
मार्कंडेय पुराण में देखो । कथि=शुकाचार्य । दासरथिदूत=
(रामदूत) हनुमान जी । रावरो पूत=(आपका पुत्र)
मेघनाद-(हनुमान को बाँध लाया जिससे लंका जली) ।

भावार्थ—एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपनी मलाई के लिये
राज्य की मलाई नष्ट करदेते हैं । जैसे राजा सुरथ को निकाल
कर मंत्री ने अपना मुख साधन किया (देखो प्रकाश २३
छंद नं० १६) । एक ऐसे होते हैं कि राजा की मलाई के
लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं जैसे राजा बलि को निवारण करते
हुए शुकाचार्य ने अपना एक नेत्र तंक खो दिया । एक
मंत्री ऐसे होते हैं कि अपना और अपने मालिक दूनोंका मला
करते हैं, जैसे हनुमान । और एक ऐसे होते हैं कि अपना
और अपने राजा दूनों का चुरा करते हैं जैसे आप का
पुत्र मेघनाद ।

मूल—दोहा—मन्त्र जु चारि प्रकार के मंत्रिन के जे प्रमान ।
विप से दाड़िम बीज से गुड़ से नीब समान २६॥

भावार्थ—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं यह
निश्चय जानो । एक विप समान, एक अनार बीज समान,
एक गुड़ सा और एक नीब सा । विपसा=खाने में कटु और

धूँसा मारा जिस से मरकर वह गिर पड़ा और उसका सिर
(सुन्दर सुखट सहित) धूल में लत-पत होगया ।

मूल—वंशस्थ छंद—महावली जूझतही प्रहस्त को । चलयो ४
तहीं रावण भीड़ि हस्त को ॥ अनेक भेरी बहु दुंदुभी वजै ।
गयंद क्रोधान्ध जहाँ तहाँ गजै ॥ ३० ॥

भावार्थ—महावली प्रहस्त को मरा हुआ सुनकर, हाथ मलते
(पश्चात्ताप करते) हुए तुरंत रावण स्वयं लड़ने को चला ।
उसके चलते ही अनेक ढोल और नगारे बजने लगे और
क्रुद्ध हाथी जहाँ तहाँ गरजने लगे ।

मूल—सनीर जीमूत-निकास सोभहीं । विलोकि जाको सुर
सिद्ध छोभहीं ॥ प्रचंड नैऋत्य समेत देखिये । सप्रेत मानो
महकाल लेखिये ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—जीमूत=वादल । निकास=(सं० निकाश) सदृश,
समान । छोभहीं=डरते हैं । नैऋत्य=निश्चर । महकाल=
महाकाल ।

भावार्थ—लंकापति रावण रणभूमि को आते समय खूब
जलभरे वादल के समान सघन नीलवर्ण शोभा को धारण
किये हुए हैं, जिसको देखकर देवता और सिद्धगण डरते
हैं । बलवान राक्षस भी साथ में हैं अतः ऐसा जान पड़ता
है मानों प्रेतगण सहित महाकाल ही हैं ।

प्रलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

(समर भूमि में रावण की ओर के योद्धाओं
का वीर परिचय)

मूल—(विभीषण)—वसंततिलका-छन्द—कोदंड
महारथवंत-जो है । सिंहध्वजा समर-पंडित-वृन्द मंडि
जोधा बली प्रबल काल कराल नेता । सो ३२
युद्ध जेता ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—महाकोदंड मंडित=बड़ा धनुष लिये हुए
रथवंत=रथ पर सवार । नेता=शासक । जेता=जीतने वाला ।

भावार्थ—जो बड़ा धनुष लिये हुए है और रथ पर सवार है
जिसकी ध्वजा पर सिंह का चिह्न है, जिस को देख कर
घड़े चतुर योद्धाओं के समूहों के लगे छूट जाते हैं, वह
महाबली है और कराल काल का भी शासक है, वही युद्ध
इन्द्र को भी जीतनेवाला मेघनाद है ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—जो व्याघ्र घेष रथ व्याघ्रहि केतुधारी । ३३
कुयेर विपत्ति कारी ॥ लीन्हें त्रिशूल सुरसूल समूल मानो
थी राधेन्द्र अतिकाय वही सु जानो ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—आरक्त=खूब लाल । सुरसूल=देवताओं की मृत्यु
समूल=पूर्ण ।

भावार्थ—जो बाघमुँहा रथ पर सवार है और जिसकी
में बाघही का चिह्न है, जिसके नेत्र खूब लाल हैं, जिसने
पर विपत्ति दाही थी, जो हाथ में ऐस्य त्रिशूल लिये हुए

मानो देवताओं की पूर्ण मृत्यु ही है, हे राम जी, उसीको अतिकाय जानिये (वही अतिकाय नामा योद्धा है) ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—जो कांचनीय रथ शृंगमयूरमाली । जाकी उदार उर पणमुख शक्तिशाली ॥ स्वर्धामहर, कीरति कै न जानी । सोई महोदर वृकोदर वंधु मानी ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—काञ्चनीय=सोने का बना । शृङ्ग मयूर-माली= जिसकी चोटी पर अनेक मोर-चित्र हैं । जाकी=(इसका अन्वय 'शक्ति' के साथ करो) । शाली=लगी । स्वः=स्वर्ग । हर=लूटनेवाला । कै=कौन ।

भावार्थ—जो सोने के रथ पर सवार है और जो मयूरध्वजी है, जिसकी वरछी षट्मुख के चौड़े सीने में घुस गई थी, जिसने स्वर्गके प्रत्येक घर को लूट लिया है, जिसकी कीर्ति कौन नहीं जानता, वही वृकोदर का अभिमानी भाई महोदर नामा वीर है ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा विराजै । श्री सूर्यमंडल विडम्बन ज्योति साजै ॥ आखंडलीय वपु जो तनत्राण धारी । वंशांतके सु सुरलोक विपत्तिकारी ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—सूर्य मण्डल विडम्बन=सूर्य मण्डल को जलाने वाली । आखण्डलीय=इन्द्र का । तनत्राण=कवच (इसका

अन्वय आस्रण्डलीय शब्द के साथ है) ।

भावार्थ—जिस के रथ के अप्रमाण पर सर्पध्वजा है, जिसकी क्रांति सूर्य-मण्डल को लजाती है, जो इन्द्र का कर्तव्य अपने शरीर पर धारण किये है, वही देवताओं को विपत्ति डालनेवाला देवांतक नामक वीर है ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—जो हंसकेतु मुजदंड निपंगधारी । संप्राम सिन्धु
अवगाहकारी ॥ लान्दी छँदाय जेहि देव अदेव यामा ।
खरात्मज बली मकराक्ष नामा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—निपङ्ग=तरकस । अवगाहकारी=मंथन करनेवाला ।
अदेव=दैत्य ।

भावार्थ—जो हंसध्वज है, मुजदण्ड पर तरकस धारण किये हुए है, जो बहुधा समर सिन्धु को मथ डालता है, जिसने देवों और दैत्यों की स्त्रियों छीन ली हैं, वही खर का पुत्र मकराक्ष नामा वीर है ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—लगी स्यंदने वाजिगजी विराजे ।
जिन्हें देखिके पौन को येग लाजे ॥ मले स्थण के किकिनी
गूथ वाजे । मिले दामिनी सों मनो मेघ गाजे ॥ ३७ ॥
पताका दन्यो शुभ्र शार्दूल सोभै । सुरेन्द्रादि रुद्रादि को विल
खोभै ॥ लसै छत्रमाला हँसै सोममा को । रमानाथ जानो
दशग्रीव ताको ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जिसके रथ में घोड़ों की पङ्क्ति जुती हुई है, जिन्हें देख कर पवन का वेग भी लज्जित होता है। अच्छे सोने की बनी घंटियों के समूह जिसमें बजते हैं, मानो विजली युक्त मेघराज गरजते हों ३७ ॥ जिसकी पताका में स्वतः शार्दूल शोभता है, जिसे देख कर इन्द्र रुद्रादि के मन क्षुब्ध होते हैं (व्याकुल होते हैं) जिसके सिरो पर ऐसी छत्र-पांक्ति है जो चन्द्र-प्रभा की हँसी उड़ाती है, हे रमापति राम जी ! वही रावण है।

अलंकार—ललितोपमा, उत्प्रेक्षा(३७)ललितोपमा निदर्शना(३८)

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—

पुरद्वार छौंड़्यौ सचै आपु आयो। मनो द्वादशादित्य को राहु धायो
गिरिग्राम लैलै हरिग्राम मारै। मनो पञ्चिनीपद्म दंती विहारै॥३९॥

शब्दार्थ—गिरि ग्राम=पहाड़ों के समूह । हरिग्राम=चन्द्रों के समूह ।

भावार्थ—रावण सब वीरों को लङ्कापुरी के द्वार पर छौंड़ रणभूमि में आप अकेला आया, मानो वारहो आदित्यों को पकड़ने के लिये राहु अकेला दौड़ा है। रावण को रणभूमि में पाकर सब वानर समूह पर्वत समूहों से उसे मारते हैं, पर वह (रावण) इधर उधर इस प्रकार विचरता है मानो कमल और कमलिनियों के साथ हाथी खेल कर रहा हो (अर्थात् वे पर्वत रावण के शरीर में वैसे ही लगते हैं जैसे

हाथी के शरीर में कमलादि पुष्प) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

(लक्ष्मण को शक्ति लगाना)

मूल—सवैया छंद—

दक्षि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोप रई है ।
छूटत ही हनुमंत सो धीचहि पूँछ लपेटि कै डारि दरई है ॥
दूसरि ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है ।
रावयो मले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूल सी ओड़ि लई है ॥४०॥

शब्दार्थ—रोप रई=क्रुद्ध होकर । डारि दरई है=भूमि में फेंक दी है । अमोघ=जो कभी निष्फल न हो । हाइ हाइ-भई है=लोगों ने हा हा कार मचाया । फूलि कै=हृष और उत्साह सहित । ओड़ि लई=रोक ली ।

भावार्थ—रणभूमि में विभीषण को देख कर, क्रुद्ध होकर रावण ने बरछी उठाई और विभीषण को लक्ष्य करके चलाई । रावण के हाथ से छूटते ही हनुमान ने उसको बीच ही में पूँछ से पकड़ कर रोक लिया और अन्यत्र फेंक दिया । तब रावण ने दूसरी ब्रह्मदत्त अमोघ शक्ति चलाई जिसे देख कर सब लोगों ने हा हा कार मचाया (कि अब विभीषण न बचेगा) पर लक्ष्मण जी ने शरणागत की अच्छी रक्षा की और हर्षपूर्वक फूल की तरह उस बरछी को अपनी छाती से रोक लिया (और मूर्च्छित होकर गिर पड़े) ।

अलंकार—लोकोक्ति, उपमा ।

मूल—सन्निनी छंद—जोर ही लक्ष्मण लेन लाग्यो जहीं । मुष्टि छाती हनुमंत मान्यो तहीं ॥ आसुही प्राण को नाश सो है गयो । दंड द्वे तीनि में चेत ताको भयो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जोर लगा कर जब रावण लक्ष्मण को उठाने लगा तब हनुमान ने रावण को एक घूसा मारा । घूसे के लगते ही शीघ्र ही रावण के प्राण निकल से गये (मूर्च्छित हो गया) और दो तीन दण्ड बाद उसे चेत हुआ ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा—('नाश सो है गयो' में) ।

मूल—मरहटा छंद—

आयो डर प्राणन, लै धनु वाणन, कपि दल दियो भगाय ।
चढ़ि हनुमंत पर, रामचंद्र तव, रावण रोष्यो जाय ॥
धरि एक वाण तव, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट वनाय ।
लागे दूजो सर, छूटि गयो घर, लंक गयो अकुलाय ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—आयो डर प्राणन=रावण हनुमान से डर गया (अतः उनसे तो न बोला, पर औरों को मारने लगा) ।
वर=बल, हिम्मत । वनाय=अच्छी तरह से ।

भावार्थ—रावण जब हनुमान से डर गया, तब उसने धनुष वाण लेकर कपिदल को भगा दिया, (गड़बड़ी मची) तब राम जी ने हनुमान के कंधे पर सवार होकर जाकर रावण को रोका । एक ही वाण से सारथी, छत्र, ध्वजा और मुकुटों को अच्छी

तरह से फाट दिया । दूसरा भाग छाते ही, रावण को हिम्मत छूट गई और व्याकुल होकर छंका को लौट गया ।
अलंकार—दूसरी विभावना (हेतु अपूरण ते जहाँ कारज पूरण होय) ।

मूल—दोधक छंद—

यद्यपि है अति निर्गुणतारि । मानुष देह धरे रघुरारि ॥
 लक्ष्मण राम जहाँ अवलोष्यो । नैनन तें न राहौ जल रोष्यो ॥४३॥

भावार्थ—यद्यपि राम जी गुणातीत हैं, तो भी राम जी जब मानव शरीर धरे हैं तब मनुष्य की सी लीला करनी ही चाहिये (यह सोच कर) जब राम जी ने लक्ष्मण को मूर्च्छित देखा, तब नेत्रों से आँसू न रोक सके और वे फूट फूट कर रोने लगे (और कहते लगे कि) :—

—(राम) दोधक छंद—

लक्ष्मण मोहि विलोको । मोकहँ प्राण चले ताजि, रोको ॥
 हौं सुमिरौं गुण केतिक तेरे । सोदर पुत्र सहायक मेरे ॥ ४४ ॥

भावार्थ—राम जी विलाप करने लगे कि हे लक्ष्मण एक बार मेरी ओर ताको, मुझको छोड़ कर प्राण जाया चाहते हैं, उन्हें रोको । मैं तुम्हारे कौन कौन गुण याद करूँ, तुम तो मेरे भाई, पुत्र और मित्र ही थे ।

अलंकार—तुल्ययोगिता (तीसरी)

मूल—छंदचतुष्टयानुबन्धन तुही धनु मेरो । दू बल विक्रम धारक हेरो ॥
 दू बिन हौं पल प्राण न राखौं । सत्य कहीं कहुँ छूँ न भाखौं ॥४५॥

चौदहो यम और आठो वसुओं को नष्ट कर दूँगा । ग्यारहो रुद्रों को समुद्र में डुवाकर सब गन्धर्वों को पशु की भाँति बलिदान कर दूँगा तथा अभी तुरन्त विना विलम्ब कुबेर और इन्द्र को पकड़ कर राजा बलि के हवाले कर दूँगा । विद्याधरों को अविद्यमान कर दूँगा, सब सिद्धों की सिद्धताई छीन लूँगा । अदिति (देवमाता-सूर्य की माता) निश्चय ही दिति की दासी होगी और पवन, अग्नि और जल सब मिटा दूँगा (प्रलय उपस्थित कर दूँगा) । हे सुग्रीव ! सुनो, यदि सूर्य उदय होगा तो सारी सृष्टि को असुरों के अधिकार में कर दूँगा (देवताओं को नष्ट कर दूँगा) ।

अलंकार—प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

हन्वो विघ्नकारी बली वीर यामें । गयो शत्रुगामी गये एक यामें ॥
चलयो लै सबै पर्वतै कै प्रणामै । न जान्यो विशल्यौषधी कौन तामें ॥१०

शब्दार्थ—विशल्यौषधी=विशल्यकरणी जड़ी ।

शेष—द्रोणगिरि पर चार जड़ियाँ थीं । १-विशल्य करणी=

तुरन्त भर देनेवाली । २-सौवरणी=तुरन्त चमड़ा

३-सञ्जीवनी=मूर्च्छित को सचेत कर देने

हुए अङ्गों के पृथक् पृथक् टुकड़ों

(समय) रास्ता

सब (जितने वीर आज मरे हैं) एक साथ ही जीवित हो उठें ।
अथवा हम सब जो मृतवत् हैं जी उठें—आनंदित हो जायें ।

अलंकार—सम्भावना ।

मूल—सोदर सुर को देखत ही मुख । रावण के सिंगरे पुरवै सुख ।
बोल सुने हनुमंत कन्यो प्रभु । कृदि गयो जह औपधि को घनु ॥४८॥

भावार्थ—(विभीषण कहते हैं कि) हे राम जी ! तुम्हारा
भाई सूर्य का मुख देखते ही—सूर्योदय होते ही—रावण के
सब मुख पूरे फर देगा (मर जायगा) । यह बात सुन
कर हनुमान ने औपधि लाने की प्रतिज्ञा की और क्रुद्ध
कर औपधि के वन में (द्रोणपर्वत पर) जा पहुँचे ।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज निबंधना) ।

मूल—(राम) पद्मपदी—करि आदित्य अष्टष्ट नष्ट सम करौ
अष्ट वसु । रुद्रन घोरि समुद्र करौ गंधर्व सयं पसु ॥ बलिह
अघेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इन्द्र अथ । विद्याघरन अविद्य
करौ बिन सिद्धि सिद्ध सब ॥ निजु होहि दासि दिति की
अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल । सुनि सूरज ! सूरज
उबत ही करौ असुर संसार बल ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—बलिह अघेर=अति शीघ्र, बिना विलंब । निजु=निश्चय ही । सूरज=(सूर्यपुत्र) सुग्रीव । करौ असुर संसार बल=संसार में असुरों का बल (अधिकार) कर दूँगा ।

भावार्थ—(जब विभीषण ने कहा कि सूर्योदय होते ही
मर जायेंगे, तब राम जी क्रुद्ध हो कर कहते हैं कि



रोकनेवाले बलों और कुटिल वीर (कालनेमि) को मारा, और पहर भर रात धीतते धीतते वहाँ पहुँच गये । परन्तु चूँकि स्वयं विशल्यादि औषधियों को नहीं पहचानते थे अतः प्रणाम करके समस्त पर्वत ही उठाकर ले चले ।

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—लसैं औषधी चारु भो व्योमचारी ।
कहै देखि यों देव देवाधिकारी ॥ पुरी भौम की सी लिये सीस
राजें । महामंगलार्थी हनुमंत गाजें ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—भो व्योम चारी=आकाश मार्ग से चले । देवाधि-
कारी=इन्द्र ।

भावार्थ—पर्वत को लेकर हनुमान जी आकाश मार्ग से चले तो उसमें वे दिव्य औषधियाँ चमचमाती थीं । इस तरह जाते हुए देखकर देवता लोग और इन्द्र यों कहने लगे कि महामंगल के चाहनेवाले हनुमान गरजते हुए जा रहे हैं और द्रोणगिरि पर्वत बनके सिर पर मङ्गल मण्डल सा शोभा दे रहा है ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—(इन्द्र) भुजंगप्रयात छन्द—लगी शक्ति रामानुजै
साथी । जड़ै हूँ गये ज्यों गिरै हेम हाथी ॥ तिन्हें ज्याइये
सुनो प्रेमपाली । चढ्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली ॥ ५२

शब्दार्थ—प्रेमपाली=प्रेममय । ज्वालमाली=दिव्य औषधि से झलझलता हुआ द्रोणपर्वत । कीर्तिमाली=यश, श्री (हनुमान) ।

भावार्थ—(देवगण परस्पर बातें करते हैं)—राम के ७१

रहनेवाले राम के छोटे भाई लक्ष्मण को शक्ति लगी है और वे मूर्च्छित हो कर गिर गये हैं, ऐसे जान पड़ते हैं जैसे सुवर्ण रंग का हाथी हो। उन्हीं को जिलाने के हेतु, हे प्रेम-पालन करनेवाले देवताओ ! सुनो, ये कीर्तिमान हनुमान दिव्य औपधियों से देदीप्यमान इस पर्वत को लिये जा रहे हैं।

नोट—कुवेर के नियुक्त किये यक्षगण हनुमान को रोकना चाहते थे । इसपर इन्द्र ने उन्हें इस प्रकार समझाया है । 'प्रेमपाली' शब्द इस अभिप्राय से कहा गया है कि हमी सब देवताओं की भलाई के लिये राम-रावण का युद्ध हो रहा है । तुमभी अपना प्रेम दिखलाओ--(रोकना न चाहिये, वरन् इनकी सहायता करो) ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—किधौं प्रात ही काल जी में विचान्यौ । चलयो अंशु लै अंशुमाली सँहान्यो ॥ किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हें । महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हें ॥५३॥

शब्दार्थ—अंशु=किरण । अंशुमाली=सूर्य । ज्वालामुखी=ज्वालामुखी अग्नि ।

भावार्थ—(यह छंद कवि-कृत अनुमान है) किधौं यह विचार कर कि सूर्योदय होते ही प्रातःकाल लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग कहा गया है (अतः जिससे सूर्योदय हो ही न सकै) सूर्य को मार कर हनुमान उनकी किरणों को ही समेट लिये जा रहे हैं । अथवा अग्निदेव को ही जबरदस्ती पकड़े

लिये जा रहे हैं, जिसमें होम करने से लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग ही मिट जाय (दृवनादि सुकर्मों से अस्वायु दोष का मिटना हमारे सनातन धर्म में माना गया है) ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—मुजंगप्रयात छंद—

बिना पत्र है यत्र पलाश फूले । राम कोकिलाली भ्रम भौर मूले ३
सदानंद राम महानंद को ले । हनुमंत आये वसंत मनो ले ४ ।

शब्दार्थ—सदानंद=(यह राम का विशेषण है) सदैव आनन्द रूप । महानंद को=और अधिक आनंदित होने के लिये ।

भावार्थ—(दिव्य औषधियों से शल्यशलाका हुआ हनुमान जी लाये हैं, इस पर कवि उल्लेखा करता है कि मानो सदैव आनन्द स्वरूप श्री राम जी को अधिक करने के हेतु साक्षात् वसंत ही को हनुमान जी लाये हैं (क्योंकि यह घटना शिशिर ऋतु में हुई थी) क्योंकि जैसे वसंत में पत्ररहित पलाश फूलते हैं, और कोकिल निनाद करते हैं, वैसे ही इस पर्वत में सब ही मौजूद हैं (ज्वलंत औषधियाँ पलाश पुष्प सम हैं, और कोकिल्यादि पक्षी उत्तम थे ही) ।

अलंकार—उल्लेखा ।

मूल—मोटनक छंद—

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये । दूनी सुभ सोभ शरीर लिये ॥
कोदंड लिये यह बात ररै । लंकेश न जीवत जाइ घरै ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—छिये=छूकर (बुन्देलखण्ड में 'छूना' का उच्चारण 'छीना' करते हैं और 'खूष' को 'खीब' भी बोलते हैं) । ररै=रटते हैं ।

भावार्थ—ज्योही विशल्यकरणी इत्यादि औषधियाँ लक्ष्मण के शरीर से छुवाई गई त्योंही लक्ष्मण जी दुगुणित हृष्ट-पुष्ट हो कर उठ खड़े हुए और धनुष लिये हुए ललकारने लगे कि हाँ हाँ ! सावधान ! खबरदार ! जीते जी रावण लङ्का को लौट न जाने पावे (तात्पर्य यह कि यह सब कष्ट उन्हें स्वप्नवत् हुआ) ।

मूल—श्रीराम तहीं उर लाइ लियो । सँघ्यो सिर आशिप कोटि दियो
कोलाहल यूथप यूथ कियो । लंका दहल्यो दसकंठ हियो ॥ ५६ ॥

भावार्थ—ज्योही लक्ष्मण उठ खड़े हुए त्योंही राम जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सिर सँघ कर अनेक बर्सीसँ दीं । राम सेना में आनन्दमय कोलाहल मच गया और लङ्का में रावण का हृदय दहल उठा ।

सत्रहवाँ प्रकाश समाप्त



लिये जा रहे हैं, जिसमें होम करने से लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग ही मिट जाय (हवनादि सुकर्मों से अल्पायु दोष का मिटना हमारे सनादन धर्म में माना गया है) ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—मुजंगप्रयात छंद—

यिना पत्र हैं यत्र पालाश फूले । राम कोकिलाली नूनमें भौर भूले ।
सदानंद रामें महानंद को लै । हनुमंत आये वसंत मनो लै ।

शब्दार्थ—सदानंद=(यह राम का विशेषण है) सदैव आनन्द रूप । महानंद को=भौर अधिक होने के लिये ।

भावार्थ—(दिव्य औषधियों से शलजलाता हुआ हनुमान जी लाये हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो सदैव आनन्द स्वरूप श्री राम जी को अधिक करने के हेतु साक्षात् वसंत ही को हनुमान जी लाये हैं (क्योंकि यह घटना शिशिर ऋतु में हुई थी) क्योंकि वैसे वसंत में पत्ररहित पलाश फूलते हैं, भौर कोकिल निनाद करते हैं, वैसे ही इस पर्वत में सब ही मौजूद हैं (ज्वलंत औषधियों पलाश पुष्प सन हैं, भौर कोकिलादि पक्षी उसमें थे ही) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

सत्रहवाँ प्रकाश

मूल—मोटनक छंद—

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये । दूनी सुभ सोभ शरीर लिये
कोदंड लिये यह वात ररै । लंकेश न जीवत जाइ घरै ॥ ५

शब्दार्थ—छिये=छूकर (बुन्देलेखण्ड में 'छूना' उच्चारण 'छीना' करते हैं और 'खूव' को 'खीव' भी बोलते हैं) । ररै=रटते हैं ।

भावार्थ—ज्योंही विशल्यकरणी इत्यादि औपधियाँ लक्ष्मण के शरीर से छुवाई गई त्योंही लक्ष्मण जी दुगुणित हृष्ट-पुष्ट हो कर उठ खड़े हुए और धनुष लिये हुए ललकारने लगे कि हाँ हाँ ! सावधान ! खबरदार ! जीते जी रावण लक्ष्मण को लौट न जाने पावे (तात्पर्य यह कि यह सब कष्ट उन्हें स्वप्नवत् हुआ) ।

मूल—श्रीरामतर्ही उर लाइ लियो । सँध्यो सिर आशिष कोटि दियो
कोलाहल यूथप यूथ कियो । लंका दहल्यो दसकंठ हियो ॥ ५६ ॥

भावार्थ—ज्योंही लक्ष्मण उठ खड़े हुए त्योंही राम जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सिर सूँघ कर अनेक असीसों दीं । राम सेना में आनन्दमय कोलाहल मच गया और लक्ष्मण में रावण का हृदय दहल उठा ।

सत्रहवाँ प्रकाश समाप्त



दोहा—अष्टादशें प्रकाश में केशवदः

कुंभकर्ण को वर्णियो मेघनाद

मूल—दोधक छंद—

रावण लक्ष्मण को सुनि नीके । छूटि गये ...
रे सुत मंत्रि विलंब न लायो । कुंभ करघाई जाइ

भावार्थ—जब रावण ने सुना कि लक्ष्मण
(शक्ति के घाय से मरे नहीं) तब उसको
आर जीने की सब आशा जाती रही (उसने
कि जब ब्रह्मशक्ति भी इनके उपर असर नहीं
इनसे कैसे जीत सकूंगा) । तब आज्ञा दी
और हे मंत्रियो ! अब देर न करो और
को जगाने की चेष्टा करो ।

मूल—राक्षस लाखन साधन कीने । कुंडुभि दी .
मत्त अमत्त घड़े अरु धारे । कुंजरपुंज ...

भावार्थ—राक्षसों ने कुंभकर्ण को जगाने के
उपाय किये । बड़े बड़े नवीन नगाड़े (कानों
बजवाये गये और छोटे बड़े अनेक मस्त
उसको रौंदते रौंदते हार गये तब भी वह ...

अलंकार—विशेषोक्ति ।

मूल—आइ जहीं सुरनारि समार्गी । गावन वीन बजावन लगार्गी ॥
जानि उठो तवहीं सुरदोपी । छुद्र छुधा बहु भक्षण पोपी ॥३॥

भावार्थ—पर जब सौभाग्यवती देवांगनायें आकर वीणा बजाकर उसके निकट गाने लगीं तब वह देवताओं का शत्रु (कुंभकर्ण) जाग उठा और अपनी कलेवावाली (जलपान वाली) छोटी भूख को बहुत सी सामग्री से शान्त किया ।

अलंकार—विभावना (दूसरी) ।

मूल—नराच छंद—अमत्त मत्त दंति पंक्ति एक कौर को करै ।
भुजा पसारि आस पास मेघ ओप संहरै ॥ विमान आस-
मान के जहाँ तहाँ भगाइयो । अमान मान सों दिवान कुंभ-
कर्ण आइयो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ओप=प्रभा । अमान=अपरिमित, बहुत अधिक ।
मान=घमंड; शानशौकत । दिवान=(फारसी शब्द) राज-
सभा; अथवा राजा का छोटा भाई (बुँदेलखंड में राजा के छोटे भाई को 'दिवान' कहते हैं) ।

भावार्थ—मस्त और गैरमस्त हाथियों के झुण्ड के झुण्ड एक एक कौर में उड़ा जाता है, इधर उधर हाथ फैलाता है तो मेघों की प्रभा को मात करता है (फैलाने से चसक्री भुजाएँ मेघों की उँचाई तक पहुँचती हैं जिनकी कालिमा देख कर मेघ भी लजाते हैं)--आसमान में विचरनेवाले देवताओं

अठारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—अष्टादशें प्रकाश में केशवदास कराल
कुंभकर्ण को बर्णिवो मेघनाद को काल

मूल—दोधक छंद—

रावण लक्ष्मण को सुनि नाके । छूटि गये सब साधन जी
रे सुत मंत्रि विलंब न लावो । कुंभ करधरि जाइ ॥

भावार्थ—जब रावण ने सुना कि लक्ष्मण अच्छे हो गये
(शक्ति के घाव से भरे नहीं) तब उसको अपने जीतने
आर जीने की सब आशा जाती रही (वसने समझ लिया
कि जब ब्रह्मशक्ति भी इनके उपर असर नहीं करती तब मैं
इनसे कैसे जीत सकूंगा) । तब आज्ञा दी कि हे पुत्रो
और हे मंत्रियो ! अब देर न करो और जाकर कुंभकर्ण
को जगाने की चेष्टा करो ।

मूल—राक्षस लाखन साधन कीने । हुंहुमि दीह यजाइ नर्धनि ॥
मस्त धमस्त बड़े अरु धारे । कुंजरपुंज जगावत हारे ॥२॥

भावार्थ—राक्षसों ने कुंभकर्ण को जगाने के लिये लाखों
उपाय किये । बड़े बड़े नवीन नगाड़े (फानों के निकट)
बजवाये गये और छोटे बड़े अनेक मस्त और साधारण
हाथी उसको रौंदते रौंदते हार गये तब भी वह नहीं जागा ।

अलंकार—विशेषोक्ति ।

मूल—आइ जहाँ सुरनारि समार्गी । गावन धीन बजावन लगार्गी ॥
जागि उठो तवहीं सुरदोषी । छुद्र छुधा बहु भक्षण पोषी ॥३॥

भावार्थ—पर जब सौभाग्यवती देवांगनायें आकर वीणा बजाकर उसके निकट गाने लग्यीं तब वह देवताओं का शत्रु (कुंभकर्ण) जाग उठा और अपनी कलेवावाली (जलपान वाली) छोटी मूख को बहुत सी सामग्री से शान्त किया ।

अलंकार—विभावना (दूसरी) ।

मूल—नराच छंद—अमत्त मत्त दंति पंक्ति एक कौर को करै ।
भुजा पसारि आस पास मेघ ओप संहरै ॥ विमान आस-
मान के जहाँ तहाँ भगाइयो । अमान मान सों दिवान कुंभ-
कर्ण आइयो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ओप=प्रभा । अमान=अपरिमित, बहुत अधिक ।
मान=घमंड; शानशौकत । दिवान=(फारसी शब्द) राज-
सभा; अथवा राजा का छोटा भाई (बुँदेलखंड में राजा के छोटे भाई को 'दिवान' कहते हैं) ।

भावार्थ—मस्त और गैरमस्त हाथियों के झुण्ड के झुण्ड एक एक कौर में उड़ा जाता है, इधर उधर हाथ फैलाता है तो मेघों की प्रभा को मात करता है (फैलाने से उसकी भुजाएँ मेघों की उँचाइ तक पहुँचती हैं जिनकी कालिमा देख कर मेघ भी लजाते हैं)--आसमान में विचरनेवाले देवताओं

के विमानो को जहाँ तहाँ भगा दिया (देवता डर भाग गये)—इस प्रकार बड़ी शानवान से कुम्भकर्ण के पास राज-सभा में आया (अथवा) दीवान रावण के पास आये ।

मूल—(रावण)—समुद्र सेतु बाँधि कै मनुष्य दाय लिये कुचालि वानरालि लंक बागि लाइयो॥ मिल्यो न मोहि तोहि नेकहु डन्यो । प्रहस्त आदि दै अनेक मंत्रि संहन्यो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कुचाली=शरारती, दुष्ट ।

भावार्थ—(रावण कुम्भकर्ण से सब हाल सुनाता समुद्र में सेतु बाँध कर दो मनुष्य शरारती वानर लिये हुए आए हैं और उन्होंने लङ्का में आग लगवा दी विभीषण भी उनसे जाकर मिल गया है, गुप्तको और को भी जरा नहीं डरा । उन नर वानरों ने प्रहस्तादि मन्त्री और मित्रों को मार डाला है (अब तुम उनसे)

मूल—करो सु काज आसु आज चित्त में जु भावई । होय जीव-जीव शुक्र सुख पावई ॥ समेत राम लक्ष्मण वानरालि भक्षिये । सकोश मंत्रि मित्र पुत्र धाम ग्राम रक्षिये ।

शब्दार्थ—जीव=वृहस्पति । सकोश=खजाना सहित ।

भावार्थ—(रावण कहता है) हे भाई ! आज शीघ्र यह शुभ काम करो जो मेरे चित्त को भाता है, मेरे जी में दुःख हो और आचार्य शुक्र जी

सुख हो। वह कार्य यह है कि राम-लक्ष्मण सहित वानर-समूह को भक्षण करो और खजाना, मन्त्री, मित्र, घर और लङ्कापुरी की रक्षा करो।

अलंकार—कारज निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा (पूर्वार्द्ध में)
और प्रथम तुल्ययोगिता (उत्तरार्द्ध में)।

मूल—(कुम्भकर्ण) मनोरमा छंद*—सुनिये कुल-भूषण देव
विदूषण। बहु आजिविराजिन के तम पूषण। भुव भूप
चार पदारथ साधत। तिनको कवहूँ नहिं बाधक बाधत ॥७

शब्दार्थ—देव विदूषण=देवताओं के विनाशकर्ता। आजि-
विराजी=युद्ध में शोभा पानेवाले अर्थात् शूरवीर मट। तम=
अन्धकार। पूषण=सूर्य। चारिपदारथ=अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।

भावार्थ—(कुम्भकर्ण रावण से कहता है) हे कुल के
मण्डनकर्ता और देवताओं के विनाशक! मेरी एक बात
सुनो। यद्यपि आप अनेक शूरवीर योद्धाओं के युद्ध सम्बन्धी
तुमुल तम को हटाने में सूर्य के समान सामर्थ्यवान हो, तो
भी इस पृथ्वी पर जो राजा क्रम से चारो पदार्थों का साधन
करते हैं उन्हें कोई बाधक बाधा नहीं पहुँचा सकता (तात्पर्य
यह कि आप तीन पदार्थ साधन कर चुके अब आपको मुक्ति
साधन की फिक्र करनी चाहिये—युद्ध नहीं)—साधन का क्रम
आगे के छन्द में देखिये।

* इस का रूप है (४ सगण, ३ लय), पर अन्य विकृतो में ऐसा नहीं पाया जाता।

मूल—पंकजवाटिका छंद—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावन
संतति दित रति कोविद गावत ॥ संतति उपजत ही,
पासर । साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अर्थ=धन-सम्पत्ति । सन्तति=श्रीलाद ।
काम-साधन, स्त्री-सुख । कोविद=पण्डित, शानी ।
=राजा ।

भावार्थ—चारों पदार्थों के साधन का क्रम यह है कि
प्रथम धर्म साधन करे, तदनन्तर अर्थ को बढ़ावे, तब
के लिये स्त्री-सुख भोग, और सन्तान हो जाने पर राजा
चाहिये कि रातोदिन तन मन से लगकर मुक्ति का
करे (तात्पर्य यह कि आप तीन पदार्थ-धर्म, अर्थ और
साधन कर चुके, अब पुत्र को राज-भार देकर
साधन कीजिये) ।

मूल—दोहा—राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र
कामी कुटिल न सेइयें, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥

शब्दार्थ—कृपण=लोभी, धन-लोलुप ।

भावार्थ—कामी राजा, कुटिल युवराज, लोभी पुरोहित
मन्त्री और हित-विरोधी मित्र का सेवन न करना चाहिये
अलंकार—क्रम ।

मूल—घनाक्षरी छन्द—कामी, घामी, झूठ, कोधी, कादी,
द्वेषी, छलु, कातर, कृतघ्नी, मित्र-द्वेषी, द्विज द्रोहिये ।
किंपुरुष, काहली, कलही, फूर, कुटिल कुमन्त्री कुलहोन

टोहिये ॥ पापी लोभी शठ अंध चावरो यधिर गूँगो वौना
अविवेकी हठी छली निरमोहिये । सुम सर्वभक्षी दैववादी जो
कुवादी जड़ अपवशी ऐसो भूमि भूपति न सोहिये ॥ १० ॥

शब्दार्थ—वामी=वाममार्गी । कुपुरुष=कम-पुरुषार्थवाला ।
किंपुरुष=पुरुषार्थहीन । टोहिये=खूब जाँच लेना चाहिये ।
शठ=जो समझाने से भी न समझे । हठी=जो किसी का
कहना न माने । दैववादी=दैव वा किस्मत के भरोसे पर
रहनेवाला । कुवादी=कटुभाषी ।

भावार्थ—सरल है—(तात्पर्य यह कि तुम में इतने दोष हैं,
ये तुम्हें शोभा नहीं देते । इन्हें छोड़ो और मोक्ष साधन करो
तो भला है) ।

मूल—निशिपालिका छंद—घानर न जानु सुर जानु शुभगाय
हैं । मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं ॥ जानकिहि देहु करि
नेहु कुल देह सों । जानु रण साजि पुनि गाजि हँसि मेह सो ॥११॥

भावार्थ—घानरों को वानर मत समझो, वे यशस्वी देवता हैं,
रघुनाथ को केवल मनुष्य मत जानो वे संसार के नाथ
साक्षात् विष्णु भगवान् हैं । अतः अन्याय पक्ष को छोड़ कर
अपने कुल और अपने शरीर पर कृपा करके पहले उन्हें सीता
दे दो (यदि सीता को पाकर फिर भी वे युद्ध करने ही पर
तत्पर हों तो) फिर मेघ की तरह गरज कर हँसते हुए
(प्रसन्नता पूर्वक) वीरों की तरह रण करो (तब तुम्हारा

मूल—पंकजवाटिका छंद—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत
संतति हित रति कोविद गायत ॥ संतति उपजत ही।
यासर । साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अर्थ=धन-सम्पत्ति । सन्तति=श्रीलाद ।
काम-साधन, स्त्री-मुख । कोविद=पण्डित, ज्ञानी ।
=राजा ।

भावार्थ—चारो पदार्थों के साधन का क्रम यह है कि
प्रथम धर्म साधन करे, तदनन्तर अर्थ को बढ़ावे, तब
के लिये स्त्री-मुख भोग, और सन्तान हो जाने पर राजा
चाहिये कि रातोदिन तन मन से लगकर मुक्ति का
करे (तात्पर्य यह कि आप तीन पदार्थ-धर्म, अर्थ और
साधन कर चुके, अब पुत्र को राज-भार देकर
साधन कीजिये) ।

मूल—दोहा—राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र ।
कामी कुटिल न सेइये, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥ ९

शब्दार्थ—कृपण=लोमी, धन-लोलुप ।

भावार्थ—कामी राजा, कुटिल युवराज, लोमी पुरोहित
मन्त्री और हित-विरोधी मित्र का सेवन न करना चाहिये
अलंकार—क्रम ।

मूल—धनाक्षरी छन्द—कामी, वामी, झूट, कोधी, काढ़ी,
झेपी, झण्ड, कातर, कृतघ्नी, मित्र-झेपी, द्विज प्रोहिये ।
किपुरुष, काहली, कलही, कूर, कुटिल कुमन्त्री कुलहीन

न्याय पक्ष होगा और तुम विजयी होगे) ।

अलंकार--अपह्नुति ।

मूल--(रावण)--दोहा--

कुम्भकरण ! करि युद्ध के सोइ रही घर जाय ।

घेगि विभीषण ज्यो मित्यो, गहौ शत्रु के पाय ॥ १२ ॥

भाषार्थ--(रावण डॉटता है) हे कुम्भकर्ण ! तुम बड़ी

बड़ी बातें मत करो, ये सब बातें मैं जानता हूँ--तुम यों तो

जाकर युद्ध करो, या वापस जाकर अपने घर में सो रहो,

या विभीषण की तरह तुम भी जाकर शत्रु के पैरों पड़ो ।

अलंकार--विकल्प ।

मूल--(मंदादेरी)--दोहा--

इन्द्रजीत अतिकाय सुनि, नारान्तक सुखदाइ ।

भयन सौ प्रभु हुकत हैं, क्यों न कहौ समुझाय ॥ १३ ॥

शब्दार्थ--शुकत हैं--खफा होते हैं, रिस करते हैं ।

भाषार्थ--हे इन्द्रजीत, अतिकाय, और सुखदायी नारान्तक !

सुनते हो ? राजा जी भाई पर खफा हो रहे हैं, तुम समझते

क्यों नहीं (कि भाइयों से विगाड़ करना अच्छी बात नहीं है--

शत्रु के आक्रमण के समय भाइयों से अनबन करना पुरी

बात है, समझाते समय विभीषण को लात मारी सो वह शत्रु

से जा मिला, अब इन्हें भी डॉटते हैं । यदि ये भी शत्रु की

ओर चले जायँ वो कैसी विपत्ति की सम्भावना है) ।

मूल—(मंदोदरी) चंचला छंद—देव ! कुंभकर्ण को समान जानिये न आन । इंद्र चंद्र विष्णु रुद्र ब्रह्म को हरै गुमान ॥ राजकाज को कहै जो, मानिये सो प्रेमपालि । कै चली न, को चलै न, काल की कुचाल, चालि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—देव=रावण के लिये संबोधन है (गद्दीधर राजा की देव संज्ञा है) । राजकाज को=राज्य की भलाई के लिये । प्रेमपालि=प्रेमपूर्वक । काल की कुचाल=समय प्रतिकूल होने पर । चालि=निज हितसाधक कार्य करना ।

भावार्थ—(मंदोदरी रावण को समझाती है) हे राजन् ! कुंभकर्ण को अन्य सामान्य वीरों की तरह मत समझिये, ये इंद्र, चन्द्र, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा के भी घमंड तोड़ सकते हैं । जो बात ये राज्य की भलाई के लिये कहते हैं, उसे प्रेमपूर्वक मान लेना चाहिये । समय प्रतिकूल होने पर, निजहित—साधक चाल कौन नहीं चला और कौन नहीं चलता—आगे भी लोग ऐसा ही करते आये हैं और अब भी चतुर लोग ऐसा ही करते हैं (तात्पर्य यह कि इस समय काल तुम्हारे प्रतिकूल है अतः हठ छोड़ कर थोड़ा दब जाओ और जैसा वे कहते हैं वैसा करो—सीता वापस कर दो, सीता लौटा देने से युद्ध बंद हो जायगा) ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

विशेष—आगे के छंद में मंदोदरी उदाहरण देकर दिखलाती है कि समय प्रतिकूल होने पर निज कार्य—साधन—हित बढ़े

बड़े लोग भी दब गये हैं और जा नहीं दवे वे मारे गये हैं ।

मूल—(मंदोदरी) चंचला छंद—विष्णु भाजि भाजि जात
छोड़ि देयता अशेष । जामदग्न्य देखि देखि कै न कीन्ह नारि
वेप ॥ ईश ! राम ते बचे, बचे कि वानरेश वालि । कै बली
न, को चलै न, काल की कुचाल, चालि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—अशेष=सब । जामदग्न्य=परशुराम । कै=किसने ।
ईश=रावण के लिये संबोधन शब्द है । राम ते बचे=वे
राम (परशुराम) समयानुकूल चाल चल कर ही दाशरथी
राम से बचे । कि=न । बचे कि वानरेश वालि=समयानुकूल
चाल न चलने से वानरेश वालि न बचे । काल की कुचाल=
कालकी कुचाल के समय (अर्थात् समय प्रतिकूल होने पर) ।

भावार्थ—(मंदोदरी कहती है—देखिये, समय प्रतिकूल होने
पर) देव दानवों के युद्ध में बहुधा विष्णु महाराज सब
देवताओंको छोड़ कर भाग जाया करते हैं, जिन परशुराम
को देख देख कर बड़े बड़े वीर क्षत्री नारि वेप धारण करते
ये, वही परशुराम, हे राजन् ! (समय प्रतिकूल होने पर)
जुरा सा दबकर (अपना घनुष और बाण देकर) राम से
बचे, और वानरेश वालि (नहीं दबा, इस कारण) नहीं
बच सका । अतः समय प्रतिकूल होने पर निज-हित-साधक
चाल कौन नहीं चला और कौन नहीं चलता !

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(मंदोदरी) मत्तगयंद सवैया—रामहिं चोरन दीन्ही
तिया जेहिको दुख तो तप लीलि लियो है । रामहिं मारन
दीन्हीं सहांदर रामहिं आवन जान दियो है ॥ देह धरी तुमही
लगि, आजु लौं रामहिं के पिय ज्याये जियो है । दूरि करी
द्विजता द्विजदेव हरे ई हरे आतताई कियो है ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—चोरन दीन्ही=चुरा लाने का समय (मौका) दिया ।
सहोदर=विभीषण । द्विजता=ब्राह्मणत्व । द्विजदेव=हे ब्राह्मण
(रावण का संबोधन है) । हरे ई हरे=धीरे धीरे । आतता-
ई=पापी । छ:में से एक प्रकार के पापी को आतताई कहते
हैं, यथा—

अग्निदो गरदक्षैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।

क्षेत्र दारा पहश्चैव पद्भेते आततायिनः ।

१-गाँव में आग लगानेवाला २-जहर देनेवाला ।

३-निर्दोष को शस्त्र से मारनेवाला ४-पर-धन-हर्ता ५-पर

भूमि-हर्ता ६-परस्त्री-हर्ता । शस्त्र की आज्ञा है कि ब्राह्मण

यदि आतताई हो जाय तो उसके मारने से ब्रह्महत्या

नहीं लगती ।

भावार्थ—मंदोदरी कहती है कि राम मनुष्य नहीं हैं, वे
सर्वशक्तिमान् ईश्वर के अवतार हैं, उन्हीं राम ने जानबूझ
कर तुम्हें अपनी स्त्री चुरा लाने दी (मौका दिया कि तुम
चुरा लाओ) जिसके दुःख वे तुम्हारे तप-बल को नष्ट कर

दिया है। रामही ने तुम्हें निर्दोष विभीषण को, लात मारने का मौका ला दिया। राम ही ने तुम्हें रणभूमि तक जाने का और पुनः वहाँ से भाग आने का मौका दिया है (अर्थात् यदि वे चाहते तो तुम्हें पहले ही दिन के रण में मार डालते)। राम ने तुम्हारे ही बंधके लिये अवतार लिया है, और अब तक तुम उन्हीं के जिलाने से जिये हो। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस तरह पर तरह देदेकर राम ने तुम्हारा ब्राह्मणत्व दूर करके तुमको धीरे धीरे आततायी बना डाला है (मर्यादा पुरुषोत्तम होने से ब्राह्मण समझ कर तुम्हें अब तक नहीं मारा, पर अब तुम पूरे आतताई हो चुके हो अतः अब अवश्य मारोगे)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कारण मिस फारज कथन)।

मूल—दोहा—संधि करो विग्रह करगे सीता को तो देह ।

गनो न पिय देहीन में पतिव्रता की देह ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—विग्रह=युद्ध । देह=(१)देहो (२)शरीर ।

भावार्थ—सीता को लौटा दो, फिर चाहे युद्ध करो (मुझे कुछ सोच न होगा) हे प्रियतम ! पतिव्रता स्त्री की देह को साधारण शरीरधारियों की देह मत समझो (दसके शरीर को दुःख पहुँचाने से महान् अनिष्ट हाँता है) ।

मूल—(रावण)—मदिरा सवैया—

हैं सतु छाँड़े मिलीं मृगलोचनि क्यौं छमिदैं अपराध नये ।
नारि हरी, सुत बाँध्यो तिहारै, हैं कालिहि सोदर साँग हये ॥

वामन माँग्यो त्रिपैग धरा दृष्टिना कलि चौदह लोक दये ।
रंचक वैर हुतो, हरि बंचक बाँधि पताल तऊ पठये ॥१८॥

शब्दार्थ—नये=अनोखे, ताजे । हरि=विष्णु (वामनावतार से)।

विशेष—मन्दोदरी ने राम को विष्णु का अवतार बताया है इस पर रावण का उत्तर यह है ।

भावार्थ—हे मृगलोचनी ! तेरे कहने से यदि मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़ कर उनसे मेल भी करना चाहूँ तो वे मेरे ये ताजे और अनोखे अपराध—स्त्री हरण, तुम्हारे पुत्र द्वारा नाग फाँस में बाँधा जाना, कलह ही उनके भाई को शक्ति से मारना—क्यों क्षमा करेंगे, क्योंकि उनकी आदत बड़ी मँसीली है । देखो न, इन्हीं विष्णु ने वामनरूप से (छल से) तीन पग पृथ्वी माँगी थी, और बलि ने चौदहो लोक दे दिये तो भी पुरानी गँस से ज़रा से वैर के बदले इस छलिया विष्णु ने उसे बाँधकर पाताल में भेज दिया (अतः मैं इस छली का विश्वास नहीं करता कि यह मेरे अपराध क्षमा कर देगा)—इस लिये मैं संधि करना उचित नहीं समझता, युद्ध ही होना चाहिये ।

मूल—दोहा—देवर कुम्भकरन्न सो, हरि-अरि सो सुत पाइ ।
रावण सो प्रभु, कौन को, मंदोदरी डराइ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—हरि अरि=इन्द्र का शत्रु, इन्द्रजित (मेघनाद) ।

प्रभु=पति ।

भावार्थ—कुंभकर्ण के समान बली देवर, इन्द्रजीत समान बली पुत्र तथा रावण (जो सबको रलावै) सा महान् प्रतापी और बली पति पाकर मंदोदरी को किससे भय हो सकता है (तू हर मत) ।

(कुंभकर्ण वध)

मूल—चामर छंद—कुंभकर्ण रावणै प्रदक्षिणा सु दै चलयो ।
हाय दाय है रणो अकास आसु ही हल्यो ॥
मध्य क्षुद्रघांटिका किरीट सीस सोभनो ।
लक्ष पक्ष सो कलिन्द इन्द्र पै चह्यो मनो ॥२०॥

भावार्थ—कुंभकर्ण रावण को प्रदक्षिणा देकर रणभूमि को चळ दिया । चारो ओर हाहाकार मच गया और आकाश शीघ्र ही हिल भया (आकाशचारी देवगण इत्यादि हर से विचलित होकर इधर उधर भागने लगे) । कुंभकर्ण कमर में करधनी और सीस पर सुन्दर मुकुट धारण किये है, अतः ऐसा जान पड़ता है मानो लाखों पक्ष धारण करके कलिन्द पर्वत इन्द्र पर चढ़ दौड़ा हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—नराचछंद—उड़ै दिसा दिसा कपीस कोटि कोटि
स्वौस ही । चपै चपेट घाटु जानु जंघ सौ जहाँ तहीं ॥ लिये
लंपटि पेंचि पेंचि पीर घाटु घात ही । भखे ते अन्तरिक्ष प्रस
लक्ष लक्ष जातही ॥ २१ ॥

भावार्थ—कुंभकर्ण जब रणभूमि में आया तब चारो ओर

करोड़ों वानर उसकी स्वाँस की वायु से उड़ने लगे, उसके बाहु, जानु, जंघा की चपेट से जहाँ तहाँ दबने उसने बड़े बड़े वीरों को बात की बात में (अति शीघ्र खींच खींच कर भुजाओं में दबा लिया, और लाखों रीछ जो आकाश को उड़े उन्हें वहीं पकड़ कर खा गया ।

मूल—(कुंभकर्ण) भुजंगप्रयातच्छंद—न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो । न हौं शंभुकोदंड साँची बखानों ॥ न हौं ताल, वाली, खैर, जाहि मारो । न हौं दूषणै सिंधु घुधे निहारो ॥२२॥

भावार्थ—(कुंभकर्ण ललकार कर रामप्रति कहता है) हे राम ! जरा इधर सूधी दृष्टि से देखो—बड़े वीर हो तो सामने आकर मैदान में युद्ध करो—मुझे ताड़का और सुबाहु न समझना, न मैं शिव का घनुष ही हूँ । न मैं सप्तताल, खर और वालिही हूँ जिन्हें तुमने मार लिया । न मैं दूषण ही और न सिंधु ही हूँ (जिसे तुमने सहज ही बाँध लिया)

अलंकार—प्रतिषेध ।

मूल—भुजंगप्रयातच्छंद—सुरीआसुरी सुन्दरी भोग कर्णै ।

महाकाल को काल हौं कुंभकर्णै ॥ सुनौ राम संग्राम को तोहि बोलौं । बढ़ो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं ॥ २३ ॥

भावार्थ—मैं सुरनारी तथा असुरनारियों से भोग करनेवाला, महाकाल का भी काल कुंभकर्ण हूँ । हे राम ! मैं तुम्हें समर के लिये ललकारता हूँ, तुम लंका तक चले आये, इस बात का

तुम्हें अहंकार हो गया है, तो आज मैं प्रकट कर दूंगा कि तुम कैसे बली हो ।

मूल—भुजंग प्रयात—उठों केसरी केसरी जोर छायो । बली बालि को पूत लै नील घायो ॥ हनुमंत सुग्रीव सोभैं समागे । इसैं डाँस से अंग मातंग लागे ॥ २४ ॥

भावार्थ—(कुंभकर्ण की ललकार सुनकर) एक ओर से केशरी नामक बानर सिंह की सी शपेट से चटखौड़ा, एक ओर से अंगद नील को लेकर दौड़ पड़े, एक ओर से मान्यवान हनुमान और सुग्रीव आगये (सबों ने मिल कर उसे तीन तरफ से घेर लिया और मारने काटने लगे । इनको मारना काटना ऐसा ही जान पड़ा मानो मस्त हाथी के अंग में मसां लगे हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो । चलयौ लंक लैकै भले अंक लायो । हनुमंत लातें हरयो देह मूल्यो । छुट्यो कर्ण नासाहि लै, इन्द्र फूल्यो ।

भावार्थ—कुंभकर्ण ने सुग्रीव को पकड़ पाया तो उसकी गोद में चिपका कर लंका को ले चला । तब हनुमान ने कुंभकर्ण को ऐसी लातें मारी कि वह देह की मुधि भूल गया (मूर्च्छित हो गया) तब सुग्रीव उसकी पकड़ से छूट गये और उसके नाक-कान काट लिये, जिसे देख कर इन्द्र को

बड़ा आनन्द हुआ ।

अलंकार—हेतु ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सँभान्यौ घरी एक दू में मरु कै ।
 फिन्यौ रामही सामुहें सो गदा लै ॥ हनुमंत सो पूछ सों
 लाइ लीन्हों । न जान्यो कबै सिंधु में डारि दीन्हों ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—सँभारवौ=हौश सँभाल (चैतन्य हुआ) ।
 मरु कै=मुशकिल से, बड़ी कठिनाई से । लाइ लीन्हो=
 लपेट लिया ।

भावार्थ—मुशकिल से दो एक घड़ी में जब कुंभकर्ण को
 पुनः चेत हुआ तब गदा छे कर राम के सम्मुख चला ।
 यह देख कर हनुमानजी ने उस गदा को पूछ में लपेट लिया
 और ऐसी शीघ्रता से समुद्र में फेंक दिया कि कुंभकर्ण भी
 न जान सका कि कब क्या हुआ ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—जहीं काल के केतु सो ताल लीनो ।
 कन्यौ राम जू हस्त पादादि हीनो ॥ चल्यो लोटतै बाइवकै
 कुचाली । उड़थौ मुंड लै षण त्यों मुंडमाली ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—काल के केतु सो=काल की ध्वजा के समान ।
 ताल=ताड़वृक्ष । बाइ वकै=प्रलाप वचन कहता हुआ (जैसे
 कोई बाई में वकता है) । त्यों=तरफ । मुंडमाली=महादेव ।

भावार्थ—(गदाहीन होने पर) जब कुंभकर्ण पुनः काल

की ध्वजा के समान ताड़वृक्ष लेकर लड़ने को चला, तब तुरंत रामजी ने उसके हाथ पैर काट दिये, तब लुंडपिंड होकर भूमि में लोटता हुआ तथा अंडवंड बातें कहता हुआ वह कुचाली रामकी ओर बढ़ा, तब राम जी ने एक बाण ऐसा मारा कि वह उस का सिर काट कर महादेव की ओर (कैलाश की ओर) उड़ गया ।

मूल—गुजगप्रयात—तहीं स्वर्ग के हुंडुभी दौड़ याजे ।
करी पुष्प की दृष्टि जै देव गाजे ॥ दशमोव शोक प्रस्यो लोक-
हारी । मयो लंक के मध्य आतंक भारी ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—आतंक=हाहाकार (विलाप) । लोकहारी=लोकों को सतानेवाला ।

मूल—दोहा—जवहीं गयो निकुंमिला होम हेत इन्द्रजीत ।
कट्यो तहीं रघुनाथ सों मतो विभीषण मीत ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—निकुंमिला=वह स्थान जहाँ रावण की यज्ञशाला थी । इन्द्रजीत=मेघनाद । मतो=मंत्र (सलाह) ।

मूल—चंचरी छंद—जोरि अंजुलि को विभीषण राम सो प्रिनती करी
इन्द्रजीत निकुंमिला गयो होम को, रिस जी मरी ॥
सिद्ध होम न होय जौलगि ईश तौलगि मारिये ।
सिद्ध होहि प्रसिद्ध है यह सर्वथा हम हारिये ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—जोरि अंजुलि=हाथ जोड़ कर । रिस जी मरी=मन में रिस भर कर ।

अलंकार—संभावना ।

मूल—दोहा—सोई वाहि हतै कि नर वानर रीछ जो कोइ ।
चारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्रा जीते होइ ॥ ३१ ॥

भावार्थ—वही व्यक्ति उस इन्द्रजीत को मार सकता है जो चारह वर्ष तक अन्न, स्त्री और निद्रा को त्यागे रहा हो, चाहे वह नर हो चाहे वानर वा रीछ हो । कामाक्षा देवी का वरदान था कि—दोहा—

जो त्यागी द्वादश वरस नींद नारि अरु अन्न ।

सो सुत मारी तोहि जग अपर न मारी जन्न ॥—(विश्रामसागर)

मूल—चंचरी छंद—

रामचंद्र विदा कन्यो तव वेगि लक्ष्मण वीर को ।

त्यो विभीषण जामवंतहि संग अंगद धीर को ॥

नील लै नल केशरी हनुमंत अंतक ज्यो चले ।

वेगि जाय निकुंमिला थल यक्ष के सिंगरे दले ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—अंतक=यमराज । सिंगरे=सब । दले=नष्ट कर दिये ।

मूल—जामवंतहि मारि द्वै सर तीनि अंगद छेदियो । चारि मारि विभीषणै हनुमंत पंच लु भेदियो ॥ एक एक अनेक वानर जाइ लक्ष्मण सों भिन्यौ । अंध अंधक युद्ध ज्यो भव सों जुन्यो भव ही हन्यौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—अंध=मूर्ख । अंधक=दैत्य विशेष । भव=महादेव । भव=भय, डर । भव ही हन्यौ=भय को हृदय से निकाल

कर, निर्मेय ।

- **भावार्थ**—(अंतिम चरण का) मेघनाद ऐसी निर्मेयता से लक्ष्मण से मिड़ गया जैसे मूर्ख अंधकासुर हृदय से डर छोड़ कर महादेव के साथ युद्ध में मिड़ गया था ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—हरिगीतिका—

रण इन्द्रजात अजीत लक्ष्मण अस्त्र सस्त्रति संहरे ।
सर एक एक अनेक भारत बुंद मंदर ज्यों परै ॥
तव कोपि राघव सत्रु को सिर बाण तीक्ष्ण उद्ध्यौ ।
दसकंध संघ्या करत हो सिर जाय अंजुलि में पन्थो ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—राघव=रघुवंशजात लक्ष्मण । उद्ध्यौ=(उध्+ धर) घड़ से भिन्न कर दिया , घड़ से काट दिया ।

भावार्थ—रण में मेघनाद और अजित लक्ष्मण परस्पर अस्त्र शस्त्र संहार करते हैं एक एक वीर अनेक बाण मारता है पर वे दूसरे पर ऐसे पड़ते हैं । जैसे पर्वत पर वर्षाबुंद (कुछ भी हानि नहीं पहुँचाते) । तब रघुवंश के विकट वीर लक्ष्मण ने शत्रु के सिर को एक अति तीक्ष्ण बाण से घड़ से उड़ा दिया । उस समय रावण संघ्या कर रहा था, वह सिर उसड़ी अंजुली में जा गिरा ।

मूल—रण मारि लक्ष्मण मेघनादाहिं स्वच्छ संघ यजारायो ।
कादि साधु साधु समेत इंद्रहिं देवता सब आरयो ॥

कछु माँगिये वर वीर सत्वर, भक्ति श्री रघुनाथ की ।

पँहिराय माल विशाल अर्चहि कै गये शुभगाथ की ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—साधु साधु=शाबाश । सत्वर=शीघ्र । शुभगाथ=प्रशंसित ।

भावार्थ—लक्ष्मण ने रणमें मेघनाद को मार कर विजय शंख बजाया । शाबाश शाबास कहते इन्द्रसाहित सब देवता आये और कहा कि हे वीर शीघ्र ही कुछ वर माँगो । लक्ष्मण ने कहा मुझे राम-भक्ति दीजिये । तब सब देवता उन प्रशंसित वीर लक्ष्मण की पूजा करके और विशाल विजयमाला पहना कर अपने लोक को चले गये ।

मूल—कलहंस छंद—हति इन्द्रजीत कहँ लक्ष्मण आये । हँसि रामचंद्र बहुधा उर लाये ॥ सुनि मित्र पुत्र सुम सोदर मेरे । कहि कौन कौन सुमिरौँ गुन तेरे ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—बहुधा=बहुत प्रकार से । उर लाये=छाती से लगाया । सोदर=भाई । सुमिरौँ=स्मरण करूँ ।

अलंकार—तुल्ययोगिता (तीसरी) ।

मूल—दोहा—नाद भूस्र अरु काम को ज न साधते वीर ।
सीतहि क्यों हम पावते सुनु लक्ष्मण रणवीर ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—न साधते=जीत न लिया होता ।

उन्नीसवीं प्रकाश

—:०:—

दोहा—उनईसयें प्रकाश में रावण दुःख निदान ।
 जूझैगो मकराक्ष पुनि हैहै दूत विधान ॥
 रावण जैहै गूढ़थल रावर लुटै विशाल ।
 मंदोदरी कढ़ोरिबो अरु रावण को काल ॥

शब्दार्थ—दुःख निदान=दुःख का अन्तिम दर्जा अर्थात् बहुत बड़ा दुःख । दूत विधान=सन्धि का प्रस्ताव । गूढ़थल=गूढ़-स्थल (निकुंभिला) । रावर=रनिवास । कढ़ोरिबो=धिसलाना । काल=मृत्यु ।

मूल—मोदनक छंद—

देख्यो सिर अञ्जलि में जवहीं । हाहा करे भूमि पन्यौ तवहीं ॥
 आये सुत-सोदर मंत्रि तथै । मंदोदरि स्यौ तिय आई सवै ॥ १ ॥
 कोलाहल मंदिर माँझ भयो । मानो प्रभु को उड़ि प्राण गयो ॥
 रोवै दसकंठ विलाप करै । कोऊ न कहूँ तन धीर धरै ॥ २ ॥

शब्दार्थ—(१)सुत-सोदर=सोदरसुत (मकराक्षादि) । स्यौ =सहित । प्रभु=रावण ।

मूल—(रावण)—दंडक छंद (मात्रिक ४० मात्रा का)—
 आज्ञु आदित्य जल, पवन पावक प्रथल, चंद्र आनंद मय, प्रास
 जग को हरौ । गान किन्नर करौ, मृत्यु गंधर्व कुल, यक्ष विधि
 लक्ष उर, यक्षकर्म धरौ ॥ ब्रह्म रुद्रादि दे, देव तिहुँ लोकके,

राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ । आजु सिय राम दे,
लंक कुलदूषणहिं, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु वरौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—यक्षकर्दम=एक प्रकार का लेप जो यक्षों को अति प्रिय है और इसे वे शरीर में लगाते हैं (कर्पूर, अगर, कस्तूरी और कङ्गोल एक साथ पीस कर बनता है, यथा— “कर्पूरा गुरु कस्तूरी कङ्गोलै र्यक्षकर्दमः”) । कुलदूषण=वंश-नाशक (विभीषण) । यज्ञ वरौ=सर्वज्ञ ब्राह्मण गण यज्ञदेव को वरण करें, अर्थात् ब्राह्मण गण अब स्वच्छन्दता से यज्ञादि पुण्य अनुष्ठानादि करें ।

भावार्थ—(रावण अति निराश होकर कहता है कि)—लो भाई, अब मैं भी मरता हूँ, अतः सूर्य, जल, पवन और प्रबल अग्नि इत्यादि देवगण तथा चन्द्रमा आनन्दित हों, क्योंकि जगमें जिससे तुम्हें डर था सो तो हरण किया गया (मारा गया) । किन्नर गण खूब आनन्द से गावें, गन्धर्व नृत्य करें, (मैं तो मरता हूँ) । ब्रह्मा रुद्रादि तीनों लोक के देवता जाकर इन्द्र को राज्याभिषेक करें, और आज सीता और राम कुल-नाशक विभीषण को लङ्का का राज्य दें और ब्राह्मणगण अब निडर होकर यज्ञानुष्ठान करें (मेरे भय से जो कार्य न हो सकते थे वे स्वच्छन्दता पूर्वक हों, मैं पुत्र शोक में अपने प्राण देता हूँ) ।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज मिस कारण कथन) ।

मूल—(महोदर) तोटक छंद—

प्रभु शोक तजो जिय धीर धरो । सक शत्रु बघ्यो सु विचार करौ ।
कुल में अब जीवत जो रहि है । सब शोक समुद्रहि सो बहि है ॥४॥

शब्दार्थ—सक शत्रु बघ्यो=जिससे शत्रु का बध हो सके ।
सु=सो ।

भावार्थ—महोदर समझाता है कि हे प्रभु, शोक को छोड़ो, ज़ी में धीरज धरो (इतने निराश न हो) । अब ऐसी सलाह करो जिससे शत्रु का बध हो सके । कुल में जो जीता बचेगा वह सब के लिये शोक कर लेगा (अर्थात् वीर की तरह बत्साह से समर करो, रणभूमि में प्राण त्यागो, कातर मत हो, जो बचेगा सो रो पीट लेगा) ।

मूल—(मंशोदरी)—चौपाई छंद—

सोदर जूझ्यो सुत हितकारी । को गहि है लंका गढ़ भारी ।
सीतहि दै कं रिपुहि संहारौ । मोदति है विक्रम बल भारे ॥५॥

शब्दार्थ—मोहित है=निष्फल करती है । विक्रम=उद्योग ।

भावार्थ—मंशोदरी रावण से कहती है कि हितकारी भाई (कुम्भकर्ण) और पुत्र (मेघनाद) जूझ गये तो क्या हुआ, लड़ा ऐसा कठिन गढ़ है कि इसे कोई जीत नहीं सकता । सीता को लौटा दो तब शत्रु को मार सकोगे, क्योंकि वही तुम्हारे भारी बल और अनेक उद्योगों को विफल करती है (पर-सौ-हरण के पाप से तुम्हारा उद्योग विफल हो रहा है, उसे लौटा दो तो तुम रण में सफल होगे) ।

मूल—(रावण) चौपाई छंद—

तुम अब सीताहि देहु न देहु । विनु सुत बंधु धरौ नहिं देहु ॥
यहि तन जो तजि लाजहिंरैहौं । वन वसि जाय सबै दुख सैहौं ॥६॥

शब्दार्थ—रैहौं=रहूंगा । सैहौं=सहूंगा ।

मूल—(मकराक्ष) भुजंगप्रयात छंद—

कहा कुम्भकर्णो कहा इन्द्रजीतौ । करै सोइवो वा करै युद्ध भीतौ ॥
सु जौलौं जियो हौं सदा दास तेरो । सिया को सकै लै सुनौ मंत्र मेरो ।
महाराज लंका सदा राज कीजै । करौं युद्ध मोको विदा बेगि दीजै ॥
हतौं राम स्यो बंधु सुग्रीव मारौं । अयोध्याहिं लै राजधानी सुधारौं

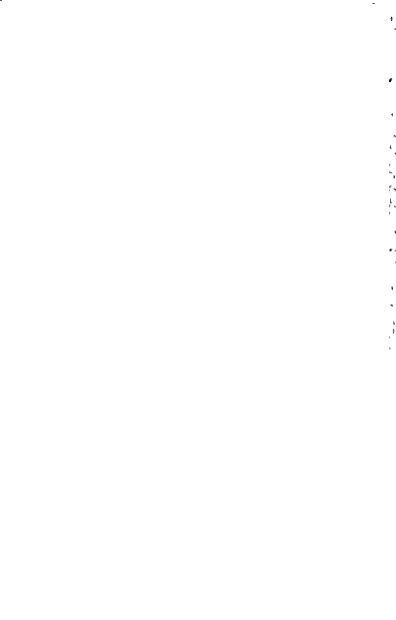
शब्दार्थ—(७) कहा . . . इन्द्रजीतौ = मेरे मुकाबले में
कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत कौन वस्तु हैं । करै . . . । भीतौ=
वह (कुम्भकर्ण) सोया करता था और वह (मेघनाद)
डरता सा लड़ता था ।

(मकराक्ष बंध)

मूल—(विभीषण) वसंततिलका छंद—कोदंड हाथ रघुनाथ
सँभारि लीजै । भागे सबै समर यूथप दृष्टि दीजै ॥ बेटा बलिष्ट
खरको मकराक्ष आयो । संहारकाल जनु काल कराल घायो ॥९॥

सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो । रोक्यो रह्यो नरघुवीर जहीं
चिलोक्यो ॥ मान्यो विभीषण गदा उर जोर ठेली । काली
समान भुज लक्ष्मण कंठ मेली ॥ १० ॥

गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंगभारे । काटे कटें न यहु भाँतिन
काटि हारे ॥ ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै । लै ही
चल्यो समर सिंहाहिं जोर जागै ॥ ११ ॥



रावण पुत्रों और भाइयों सहित कुशल से तो है न ? इस समय वह घर पर क्या काम कर रहा है ?

मूल—(दूत) सवैया—पूजि उठे जबही शिव को तबही विधि
शुक बृहस्पति आये । कै विनती मिस कश्यप के तिन देव
अदेव सबे बकसाये ॥ होम की रीति नई सिखाई कछु मंत्र
दियो श्रुति लागि सिखाये । हों इत को पठयो उनको उत ले
प्रभु मंदिर माँझ सिधाये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अदेव=देवताओं के अतिरिक्त अन्य सब जीव ।
बकसाये=क्षमा कराये । प्रभु=रावण ।

भावार्थ—दूत उत्तर देता है कि हे राम ! रावण शिव की
पूजा करके उठे ही थे कि ब्रह्मा, शुक और बृहस्पति आगये
और कश्यप के मिस विनती करके देवता और उनके अलावा
सब जीवों को (जिनके मारने का संकल्प रावण ने किया
था) क्षमा करा दिया । तब शुक्राचार्य ने यज्ञ की एक
नवीन रीति सिखाई और कान में लगकर कुछ मंत्र सिखाया ।
इसी समय प्रभु ने मुझको यहाँ भेजा और स्वयं उनको लेकर
राजमहल के भीतर चले गये (ओर मेरे द्वारा आपको यह
संदेश भेजा है) ।

मूल—(संदेश) सवैया—

सुपनखा जु विरूप करी तुम ताते कियो हमहू दुख भारो ।
वारिध बंधन कीन्हों छुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो ॥
छोड़ जु होनी सु हैई रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो ।
दे भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगुधारो ॥१७॥

मायांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्हों । प्रस्तास्त मानहुँ
शशी कहँ राहु फीन्हों ॥ हाहादि शब्द सय लोग जहाँ पुकारे ।
बाढ़े अशेष अंग राक्षस के विदारे ॥ १२ ॥

श्री रामचन्द्र पग लागत चित्त हयें । देवाधि देव मिलि
सिद्धन पुष्प वयें ॥ मान्यो बलिष्ट मकराक्ष सुवीर भारी । जाके
हते खत रावन गर्वहारी ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—(९) संहार काल=प्रलय काल में । (१०) काली=
कालीनाग । उरजोर ठेली=छाती के बल उधर को ठेल दी ।
(११) लै जागे=सिंह की तरह बड़े जोर से
लक्ष्मण को पकड़ कर लंका की ओर ले चला । (१२) दिवि=
आकाश । प्रस्तास्त फीन्हों=मानो राहु असित चन्द्रमा
असे ही असे अस्त होगया । बाढ़े=लक्ष्मण जी ने मकराक्ष
के अंग में पड़े हुए अपने अंग को बढ़ाया । अशेष=सय ।
(१३) जाके हारी=जिसके मारे जाने से सबका
गर्व हरनेवाला रावन भी रोने लगा ।

मूल—दोहा—जूझत ही मकराक्ष के रावण अति अकुलाय ।
सत्वर श्री रघुनाथ पै दियो बसीठ पठाय ॥१४४॥

शब्दार्थ—बसीठ=दूत ।

मूल—मोदक छंद—

दूतहि देखत ही रघुनायक । तापहँ थोलि उठे सुख दायक ॥
रावण के कुशली सुत सोदर । कारज कौन करै अपने घर ॥१५॥

भावार्थ—दूत को आया हुआ देख राम जी ने पूछा कि

रावण पुत्रों और भाइयों सहित कुशल से तो है न ? इस समय वह घर पर क्या काम कर रहा है ?

मूल—(दूत) सचैया—पूजि उठे जबही शिव को तबही विधि शुक्र बृहस्पति आये । कै विनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये ॥ होम की रीति नई सिखाई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाये । हौं इत को पठयो उनको उत ले प्रभु मंदिर माँझ सिधाये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अदेव=देवताओं के अतिरिक्त अन्य सब जीव ।

बकसाये=क्षमा कराये । प्रभु=रावण ।

भाषार्थ—दूत उत्तर देता है कि हे राम ! रावण शिव की पूजा करके उठे ही थे कि ब्रह्मा, शुक्र और बृहस्पति आगये और कश्यप के मिस विनती करके देवता और उनके अलावा सब जीवों को (जिनके मारने का संकल्प रावण ने किया था) क्षमा करा दिया । तब शुक्राचार्य ने यज्ञ की एक नवीन रीति सिखाई और कान में लगकर कुछ मंत्र सिखाया । इसी समय प्रभु ने मुझको यहाँ भेजा और स्वयं उनको लेकर राजमहल के भीतर चले गये (ओर मेरे द्वारा आपको यह संदेश भेजा है) ।

मूल—(संदेश) सचैया—

सुपनखा जु विरूप करी तुम ताते कियो हमहू दुख भारो ।
वारिध बंधन कीन्हों द्रुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो ॥
होइ जु होनी सु हैई रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो ।
द्वै भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगुधारो ॥१७॥

मायांघ०
 शशी-ध—विरूप=कुरूप, बदसूरत । होनी=होनहार ।
 यादेचार=उपाय । परसा=परशुराम पर विजय पाने का यत्न ।

श्रीरामचन्द्रिका

हुनाहि दियो यह कहि धी रघुनाथ ।
 ण होहि जय मंदोदरि के साथे ॥ १८ ॥

—प्रस्ताव का जवाब ।

मूल— १८ . . . युता छंद—

केहि धौ विलयं कहा मयो । रघुनाथ पै जय ही गयो ॥
 केहि भाँति तू अवलोकियो । कहु तोहि उत्तर का दियो ॥ १४ ॥

भावार्थ— (दूत के लौट आने पर रावण पूछता है) क्यो
 तुमने देर क्यों की ? जब तुम गये तब श्रीराम क्या करते थे ?
 उन्होंने क्या जवाब दिया है ?

मूल—(दूत) दंडक छंद—भूतल के इन्द्र भूमि पाँदे हुठे
 रामचन्द्र मारिच कनकमृग छालहि विछाये जू । कुंभहर-कुंभ
 कर्ण-नासाहर-गोद सीस चरण अकंप-अक्ष-अरि उर लाये जू ।
 देवान्तक-नारान्तक-अंतक त्यों मुसकात विभीषण बैन तन
 कानन रुखाये जू । मैघनाद-मकराक्ष-महोदर प्राणहर वाप
 त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ॥ २० ॥

शब्दार्थ—कुंभहर=कुंभको मारनेवाला सुग्रीव । कुंभकर्ण-नासा
 हर=सुग्रीव । अकंप-अक्ष-अरि=अकंपन और अक्षयकुमार
 को मारनेवाला हनुमान । देवान्तक-नारान्तक-अंतक=
 अंगद । त्यों=तरफ । तन=तरफ । रुखाये=रुख कियेहुए

लगाये हुए । मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्राणहर=लक्ष्मण ।
भावार्थ—(दूत कहता है कि) जिस समय मैं गया उस
 समय भूमि के इन्द्र श्रीरामचन्द्र मारीच का कनक मृगछाला
 विछाये हुए लेटे थे । सुग्रीव की गोद में उनका सिर था,
 हनुमान उनके चरणों को हृदय से लगाये हुए थे । अंगद
 की ओर देख देख कर मुसकुरा रहे थे, विभीषण की वार्ता
 की ओर कान लगाये हुए थे, और लक्ष्मण के बाणों की
 तरफ देख देख कर परम सुख का अनुभव कर रहे थे ।
 (भाव यह है कि राम को मैंने परम तेजस्वी, परम निर्भय,
 तथा महाबली वीरों से सेवित और परम सुखी देखा, उनके
 शरीर में तनिक भी थकावट वा मन में तनिक भी खेद वा,
 भय वा चिंता नहीं झलकती थी । शत्रु के देश में ऐसी
 निर्भयता और निश्चितता पूर्ण विजय का लक्षण है) ।

अलंकार—रूपक और पर्याय से पुष्ट अत्युक्ति

मूल—(राम का प्रत्युत्तर) सवैया छंद—

भूमि दई भुवदेवन को भृगु नंदन भूपन सों घर लैकै ।
 घामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठै कै ॥
 संधि की वातन को प्रतिउत्तर आपुन ही काहियै हित कै कै ।
 दीन्ही है लंक विभीषण को अब देहि कहा तुमको यह दै कै ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—घर=बलपूर्वक, जबरदस्ती । मघवा=इन्द्र । आपुन
 ही=आपही (बुँदेलखंडी भाषा में 'आप' के स्थान में 'आपुन'
 बोलते हैं) । यह दै कै=यह परसा दे कर (परशुराम

विजय का यश जो तुमने मांगा, उसे देकर तुम्हारे रहने के लिये तुम्हें स्थान कहाँ देंगे—अर्थात् तब तो तुम्हारा घमंड त्रिलोक में न समायगा, अतः ऐसे घमंडों को मारना ही हमारा परम कर्तव्य है, अतः युद्ध में तुम्हें मारेंगे, संधि करना हमें मंजूर नहीं)।

भावार्थ—परशुराम ने बलपूर्वक राजाओं से भूमि छीन कर ब्राह्मणों को दे दी। वामन ने स्वर्ग लोक इन्द्र को दिया और पाताल बलि को दिया (अर्थात् परशुराम और वामन अवतार से तो हमने त्रिलोक का राज्य पहले ही औरों को दे रखा है) अब आपही कृपा कर के बतलाइये कि तुम्हारा संधि—प्रस्ताव मंजूर करके और इस दशा में जब कि लंका भी विभीषण को दे दी है, तो अब तुमको परशु देकर क्या देंगे ?

विशेष—पाठकों को चाहिये कि रावण तथा राम जी के सन्देशों की गूढ़ता खूब समझें:—(रावण के सन्देश की गूढ़ता)—जैसा तुमने किया वैसा हमने किया, हमने कुछ ज्यादाती नहीं की, पहले तुम्होंने अत्याचार किया है, हमारी बहिन पर हाथ घाला है। स्त्री पर हाथ चलाना वीरोचित काम नहीं, वह दाम्पति प्रेम चाहती थी, तुम नामर्द हो, एक विधवा ब्राह्मणी ने तुमसे प्रेम करना चाहा सो तुमसे नहीं हुआ, मुझे देखो मैं तुम्हारी स्त्री हर लाया। तुम्हारी ओर से वीरता के कार्य हुए माने जाते हैं वे होनहार के बल हुए, उनसे तुम्हें घमंड

करने का कोई हक नहीं है अतः अपने हथियार रख दो और अपनी स्त्री लेकर घर चले जाओ ।

(रामके संदेश की गूढ़ता) परशुरामावतार लेकर हमने यह भूमि ब्राह्मणों को दे दी, इन्द्र को स्वर्ग और बलि को पाताल दे दिया, और परशुराम होकर हमने उस सहस्रार्जुन को मारा जिसने तुम्हें बाँध रक्खा था, वामन होकर हमने उस बलि को बाँध लिया जिसकी बूढ़ी दासी ने कान पकड़ कर तुम्हें शहर से बाहर निकाल दिया था । अब रामावतार में भारत से बाहर थोड़ी यह जमीन थी सो विभीषण को दे डाली, अब तुझ ब्राह्मणपर दया करके हम परशा क्या दें ? तुझे मारकर अपना धाम ही (साकेत) देंगे, अतः युद्ध ही होने दो ।

नोट—इन दोनों नं० १७ और नं० २१ के छंदों की कैसी गभीर भाषा है, इसपर पाठक विशेष ध्यान दें ।

अलंकार—

मूल—(मंदोदरी) मालिनी छंद —तब सब कहि हारे राम को दूत आयो । अब समुझ परी जो पुत्र भैया जुझायो ॥ दसमुख सुख जीजै राम सौं हौं लरौं यो ॥ हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यो ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—जुझायो=युद्ध में मरवा डाला । जीजै=जीते रहो ।

भावार्थ—(मंदोदरी रावण को डाँटती है) पहले सब लोग

तुम्हें समझा कर हार गये, पश्चात् रामदूत ने आकर तुम्हें बहुत समझाया पर तुमने नहीं माना । अब जब पुत्र और भाई रण में जूझ गये तब तुम्हें रामवैर की कठिमाई सूझ पड़ी है । लंकेश (दशमुख) आप सुख से जीते रहो, (चैनकरो) अब मैं राम से इस प्रकार युद्ध करूँगी जैसे शिव विष्णु इत्यादि के हार जाने पर शुंभ-निशुंभ से देवी दुर्गा जी लड़ी थीं ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—(रावण) मालिनी—छल करि पठयो तो पायतो जो कुठारे । रघुपति यपुरा को धावतो सिंधु पारै ॥ हति सुरपति भर्ता विष्णु मायाधिलासी । सुनाहि सुमुखि तोको व्यावतो लक्षि दासी ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—भर्ता=रक्षक । लक्षि=लक्ष्मी ।

भावार्थ—(रावण कहता है) हे सुमुखी ! सुन, मैंने दूत भेजकर छल से उनसे परशुराम का आयुध (कुठार) लेना चाहाथा, यदि वह मिल जाता तो राम बेचारा क्या था, मैं सिन्धुपार जाकर इन्द्र के रक्षक मायावी विष्णु को भी मार डालता और लक्ष्मी को पकड़ कर तेरी लौड़ी बनाकर लाता (भाव यह है कि राम में कुछ भी करतूत नहीं, जो है सो केवल परशुराम के दिये शस्त्रों की शक्ति ही उनमें है, और परशुराम शिव के भक्त हैं, अतः मैं उनके लिहाज़ से राम को नहीं मारता) ।

(रावण-मख-भंग)

मूल—चामरछंद—प्रौढरूढ़ि को समूह गूढ़गेह में गयो । शुक्र
मंत्र शोधि शोधि होम को जहीं भयो ॥ वायुपुत्र ॥
जामवंत धाइयो । लंक में निशंक अंक लंकनाथ पाइयो ॥ २

शब्दार्थ—प्रौढ=ढीठ, निर्लज्ज । रूढ़ि=पक्की आदत
प्रौढरूढ़ि=पक्की निर्लज्जता । समूह=पुंज, समूह । गूढ़गेह
को समूह=पक्की निर्लज्जता का पुंज (अति निर्लज्ज), पक्का
वेशरम । गूढ़गेह=यज्ञ-गृह । जहीं यज्ञ को भयो=ज्योंही यज्ञ
करने को उद्यत हुआ । निशंक अंक=निर्मय हृदय, अत्यन्त निर्भय

भावार्थ—पक्का बेहया रावण (निज स्त्रीद्वारा निरादरित
यज्ञस्थल को गया और शुक्रप्रदत्त मंत्र को शुद्ध
पढ़ कर ज्योंही यज्ञ को उद्यत हुआ त्योंही, हनुम
और जामवंतादि वीर गण दौड़े और लंका नगर
जाकर रावण को निशंक मन से यज्ञ करते

अलंकार—वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास ।

मूल—चामर छंद—मत्त दंति पंक्ति वाजिराजि छे
भाँति भाँति पक्षिराजि भाजि भाजि कै गई ॥ आसने
वितान तान तुरियो । यत्र तत्र छत्र चारु चौर चारु

शब्दार्थ—तान=रस्सी । चारु=सुन्दर । चारु=अच्छोत

भावार्थ—(जानसों ने लंका में पहुँच ये उपद्रव किये,
हाथियों तथा घोड़ों के समूहों को बंधन से छोर दिया)

वे इधर उधर उपद्रव करने लगे) माँति माँति के पक्षियों को पिंजड़ों से निकाल दिया (अतः वे जहाँ तहाँ उड़ चले) आसन और विछावन उलट दिये; वितानों की रस्सियाँ तोड़ दीं । जहाँ तहाँ सुन्दर छत्र और चामरों को अच्छी तरह से चूर चूर कर डाला ।

अलंकार—अनुप्रास ।

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—भर्गी देखि कै शंकि लंकेश-वाला ।
दुरी दारि मदीदरी चित्रशाला ॥ तहाँ दौरि गो बालि को
पूत फूल्यो । सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—फूल्यो=आनंदित । चित्र की पुत्रिका=रंगमहल में बने हुए स्त्रियों के चित्र ।

भावार्थ—(जब बहुत से वानर रावण के महलों में घुसगये तब) रावण की रानियाँ डर कर भर्गी और मंदोदरी की चित्रशाला में जा छिपीं । वहाँ आनन्द से दौड़ कर अंगद पहुँचे और वहाँ के चित्रों को देख कर चकित से रह गये (जान न सके कि ये चित्र हैं वा सच्ची स्त्रियाँ हैं) ।

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—गहै दौरि जाको तजै ता दिसा को
तजै जा दिसा को भजै बाम ताको ॥ मले कै निहारी सब
चित्रसारी । लहै सुंदरी क्यो दरी को बिहारी ॥ २७ ॥

भावार्थ—(अंगद मंदोदरी को पहचान नहीं सके) अंगद जिस ओर दौड़ कर किसी चित्रपुतली को पकड़ते हैं, उस दिशा को छोड़ मंदोदरी दूसरी ओर भाग जाती है । जिस

दिशा को अंगद छोड़ देते हैं, उसी दिशा को वह भाग जाती है। समस्त चित्रसारी को अच्छी तरह से देख डाला (पर किसी को पकड़ न सके)—चात ठीक ही है, भल पर्वत-गुफा में विहार करनेवाला (वानर) सुन्दरी स्त्रियों को कैसे पा सकता है (आखिर वानर ही तो ठहरे)।

अलंकार—भ्रम । मीलित ।

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—तजे देखि कै चित्र की श्रेष्ठ धन्या ।
हँसी एक ताको तहीं देवकन्या ॥ तहीं हाससों देवकन्या
दिखाई । गही शक्ति कै लङ्करानी बताई ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—धन्या=स्त्री (यहाँ पुतली) । दिखाई=देख पड़ी ।
लंकरानी=मंदोदरी । बताई=पहचनवा दिया ।

भावार्थ—अंगद पहले किसी चित्र की पुतली को स्त्री समझ कर पकड़ते हैं, पुनः अच्छी तरह देखकर उसे छोड़ देते हैं । यह तमाशा देखकर वहाँ छिपी हुई एक देवकन्या हँस पड़ी, उस हँस से जब अंगद को वह देवकन्या दिखाई पड़ी तब अंगद ने उसी को पकड़ लिया, उसने डर कर मंदोदरी को पहचनवा दिया (बता दिया कि यह मंदोदरी है) ।

अलंकार—भ्रम । विशेषकोन्मीलित

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—सु आनो गहे केश लङ्केश रानी
तमश्री मनो सूर शोभानि सानी ॥ गहे बाँह पँचें चहूँ ओं
ताको । मनो हंस लीन्हें सृणालीलता को ॥ २९ ॥

वे इधर उधर उपद्रव करने लगे) भाँति भाँति को पिंजड़ों से निकाल दिया (अतः वे जहाँ तहाँ आसन और बिछावन उलट दिये; बितानों की दीं । जहाँ तहाँ सुन्दर छत्र और चामरों को धुँ चूर चूर कर डाला ।

अलंकार—अनुपास ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—भर्गी देखि कै शंकि
दुरी दारि मंदोदरी चित्रशाला ॥ तहाँ दौरि
पूत फूल्यो । सधै चित्र की पुत्रिका देखि

शब्दार्थ—फूल्यो=आनंदित । चित्र की
में बने हुए स्त्रियों के चित्र ।

भाषार्थ—(जध बहुत से वानर रावण के
तब) रावण की रानियाँ डर कर भार्गी
चित्रशाला में जा छिपीं । वहाँ आनन्द से
पहुँचे और वहाँ के चित्रों को देख कर
(जान न सके कि ये चित्र हैं वा सच्ची)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—गहै दौरि
सजै जा दिशा को मजै याम ताको ॥
चित्रसारी । लहै मुंदरी क्यो दरी को

भाषार्थ—(अंगद मंदोदरी को
जिस ओर दौड़ कर किसी चित्र
दिशा को छोड़ मंदोदरी दूमरी ओर

(मंदोदरी के कंचुकीरहित उरोज)

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राज । किधौ साँचहू श्रीफलै सोभ साज ॥ किधौ स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे । वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—वक्षोज=कुच । श्रीफल=बेल फल । लावण्यपूरे=अति सुन्दर । पूरे=भरे हुए ।

भावार्थ—मंदोदरी के कंचुकीरहित कुच राजते हैं या सममुच बेल फल ही शोभा दे रहे हैं, या सुन्दर सोने के कलश वशीकरण के चूर्ण से लवालब भरे हुए हैं ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

किधौ इष्टदेव सदा इष्ट ही के । किधौ गुच्छ द्वै काम संजीवनी के किधौ चित्तचौगान के मूल सो हौ ॥ हिय हेम के हालगोला विभौ है

शब्दार्थ—सदा इष्ट=पति । चित्तचौगान के मूल=(ये शब्द 'हालगोला' के विशेषण है) चित्त के चौगान खेल के मूल कारण । हाल गोला=गेंद ।

भावार्थ—किधौ मंदोदरी के पति (रावण) के इष्टदेव ही हैं, या काम-संजीवनी लता के दो पुष्पगुच्छ हैं, या देखनेवालों के चित्तों को चौगान खेल खिलाने के मूलकारण मंदोदरी के कुच सोने के दो गेंद हैं जो देखनेवालों के हृदय को विमोहित करते हैं (जिस प्रकार चौगान खेल में जिस

शब्दार्थ—तमश्री=अंधकार । सूर शोमानिसानी=सूर्य किरणों से जटित (रत्नजटित आभूषणों के कारण) । मृणाली लता =पुरइन ।

भावार्थ—अंगद मंदोदरी के बाल पकड़ कर उसे चित्रशाला से बाहर लाये, उस समय वह ऐसी जान पड़ी मानो सूर्य-किरणों से जटित अंधेरी रात हो (काली मंदोदरी, रत्नजटित स्वर्णभूषण युक्त) पुनः अंगद उसकी बाँहें पकड़ कर इधर उधर खँचते हैं, ऐसा जान पड़ता है मानो हंस पुरइन को खँच खँच कर अस्त व्यस्त कर रहा है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

छूटी कण्ठमाला लुरें हार टूटे । खसैं फूल फैलें लसैं केश छूटे
फटी कंचुकी किंकिणी चार छूटी।पुरी काम की सी मनो रुद्र छूटी

शब्दार्थ—लुरें=लटकते हैं । फैलें=विस्तारते हैं ।

भावार्थ—इस समय मंदोदरी की यह दशा हुई कि गले की कंठियाँ छूट पड़ीं, हार टूट कर इधर उधर लटकने लगे, बेशी के फूल गिर गिर कर इधर उधर विस्तार रहे हैं, बाल छूट गये हैं, कंचुकी फट गई है, किंकिणी भी छूट गई है, ऐसा जान पड़ता है मानो शिव ने कामपुरी को लूट लिया है ।

(मंदोदरी के कंचुकीरहित उरोज)

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राज । किधौँ साँचहू श्रीफलै सोभ साज ॥ किधौँ स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे । वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—वक्षोज=कुच । श्रीफल=बेल फल । लावण्यपूरे= अति सुन्दर । पूरे=भरे हुए ।

भावार्थ—मंदोदरी के कंचुकीरहित कुच राजते हैं या सममुच बेल फल ही शोभा दे रहे हैं, या सुन्दर सोने के कलश वशीकरण के चूर्ण से लवालव भरे हुए हैं ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

किधौँ इष्टदेव सदा इष्ट ही के । किधौँ गुच्छ द्वै काम संजीवनी व
किधौँ चित्त चौगान के मूल सो हैं ॥ हिय हेम के हाल गोला विमोहित

शब्दार्थ—सदा इष्ट=पति । चित्तचौगान के मूल=(ये शब्द 'हालगोला' के विशेषण है) चित्त के चौगान खेल के मूल कारण । हाल गोला=गेंद ।

भावार्थ—किधौँ मंदोदरी के पति (रावण) के इष्टदेव ही है, या काम-संजीवनी लता के दो पुष्पगुच्छ हैं, या देखनेवालों के चित्तों को चौगान खेल खिलाने के मूलकारण मंदोदरी के कुच सोने के दो गेंद हैं जो देखनेवालों के हृदय को विमोहित करते हैं (जिस प्रकार चौगान खेल में जिस

ओर मंद जाता है उसी ओर सब खेलाड़ी दौड़ते हैं, इसी प्रकार जिस ओर मंदोदरी के कुच होजाते हैं उसी ओर दर्शकों के चित्त चले जाते हैं) ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

सुनी लङ्करानीन की दीन वानी । तहीं छाँड़ि दीन्हों महा मौन मा
उछ्यो सो गदा लै यदा लङ्कयासी।गये भागि कै सर्व साखाबिलास

शब्दार्थ—महामौन=मंत्र जपते समय का संकल्पित मौनाव-
लम्बन । मानी=अभिमानी रावण । यदा=जब । लंकवासी=
रावण । साखाबिलासी=वानर ।

भावार्थ—जब रावण ने अपनी रानियों के रोने चिल्लाने की दीन वाणी सुनी तब यह अभिमानी लंकापति रावण संकल्पित मौन छोड़ कर गदा लेकर यज्ञासन से उठ खड़ा हुआ, और वानरों को मारने दौड़ा । यह देख सब वानर-भाग खड़े हुए (वस रावण का यज्ञ-भंग होगया, यही तो करना ही था) ।

मूल—(मंदोदरी)—दोहा—

सीताहि दीन्हौ दुख वृथा साँचो देखौ आहु
करै जु जैसी त्यों लहे कहा रंक कह राहु

भावार्थ—मंदोदरी रावण से कहती है कि तुमने परसी सीता को मृठा दुःख दिया है (जबरदस्ती उसका पातिव्रत भंग करने की चेष्टामात्र की है, व्रत भंग नहीं किया) पर उसका कह

हमारी सच्ची दुर्दशा देख लो, क्योंकि प्रकृति का नियम है कि जो जैसा करता है सो तैसा भोगता है, चाहे वह रंक हो चाहे राजा हो ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (विशेष से साधारण सिद्धान्त की 'पुष्टि') ।

मूल—(रावण) मत्तगयन्द सवैया—

को वपुरा जो मिल्यो है विभीषण है कुलदूपन जीवैगो कौ लौं ।
कुम्भकरन्न मन्यो मघवारिपु तौ री ? कहा न डरौं यम सौ लौं ।
श्री रघुनाथ के गातनि सुन्दरि ? जानै न तू कुशली तनु तौ लौं ।
शाल सधै दिगपालन को कर रावण के करवाल है जौ लौं ॥३५

शब्दार्थ—वपुरा=बेचारा, निकम्मा । कुलदूपन=वंश नाशक ।
कौलौं=कब तक । यम सौ लौं=सौ यमराजों को भी ।
कुशली=कुशलपूर्वक । तनु=जरा भी । शाल=दुःखदायी ।
करवाल=तलवार (करवाल शब्द पुल्लिंग है) ।

भावार्थ—(रावण निज स्त्रियों को धीरज देता है) यदि निकम्मा विभीषण उधर जा मिला तो क्या हुआ, वह कुलनाशक कब तक जीता रहेगा । कुम्भकर्ण और मेघनाद मारे गये तो क्या हुआ, मैं (एक नहीं) सौ यमराजों से भी नहीं डरता । हे सुन्दरी ! तू तब तक राम की कुशल जरा भी न समझना जब तक दिग्पालों को सतानेवाली तलवार रावण के हाथ में है । (बाहरे द्विजेन्द्र रावण ! शत्रुभाव की

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ । सारथी आज्ञा पाकर अक्षयवाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा ।

मूल—कोटि भाँतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै ।
 वैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यो हँसै ॥
 रामचंद्र प्रदक्षिणा करि दक्ष है जवहीं चढ़े ।
 पुष्पवर्षि वजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—लघुता=(लाघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता
 अन्तक=यमराज । दक्ष है=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने
 द्वार से) ।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था)
 पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला
 था । उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान
 अट्टहास करते हैं । रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके
 जब दाहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं
 ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की
 सहायता करने को आगे आये ।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यौ ।
 बीस बाहुन की सरावालि ज्योम भूतल स्यो मढ़्यौ ॥
 शैल है सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे ।
 ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षणा छतना करे ॥ ३९ ॥

(X)

उपासना ऐसे ही धार वीर और अहङ्कारी जीव से हो सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वभावांक्ति ।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-वध)

मूल—चामर छन्द—रावण चले चले ते धाम धाम ते सब ।
साजि साजि साजि सूर गाजि गाजि कै तबै ॥ दीह दुंदुभी
अपार भाँति भाँति थाजहीं । युद्धभूमि मध्य कुन्द मत्त दंति
थाजहीं ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—रावण चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी चले । सबै=सब वीर लोग । दीह दुंदुभी=बड़े बड़े नगाड़े । दंति=हाथी ।

मूल—चंवरी छंद—इन्द्र धीरघुनाथ को रथहीन मृतल देखि कै ।
वेगि सारथि सों कछौ रथ साजि जाहि विशेषि कै ॥
तूण अक्षय वाण, स्वच्छ अमेद लै तनत्राण को ।
आइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—विशेषिकै=विशेष रूप से । तूण अक्षयवाण के=ऐसा तरकस जिसके वाण कमी कम न हों । अमेद तनत्राण=ऐसा कवच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके । अप्रमेय प्रमाण को केरि=रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर (बहुत बड़ा रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से सजाकर) ।

भावार्थ—इन्द्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये सज्जित, पर रथहीन, देख कर अति शीघ्र अपने सारथि से

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ । सारथी आज्ञा पाकर अक्षयवाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा ।

मूल—कोटि भाँतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै ।
बैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यो हँसै ॥
रामचंद्र प्रदाक्षिणा करि दक्ष है जबहीं चढ़े ।
पुष्पत्रपि वजाय तुंडुभि देवता बहुधा बढ़े ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—लघुता=(लघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता
अन्तक=यमराज । दक्ष है=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने द्वार से) ।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था) पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला था । उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान अट्टहास करते हैं । रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके जब दाहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की सहायता करने को आगे आये ।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रांघ रावण के बद्धयौ ।
बोस बाहुन की सराबलि व्योम भूतल स्यो मद्धयौ ॥
शैल है सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे ।
क्रक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे ॥ ३९ ॥

उपासना ऐसे ही धीर वीर और अहङ्कारी जीव से हो सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वभावाक्ति ।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-वध)

मूल—चामर छन्द—रावण चले चले ते घाम घाम ते सँभ ।
साजि साजि साजि सूर गाजि गाजि कै तवै ॥ दीह दुंदुभी
अपार भाँति भाँति थाजही । युद्धभूमि मध्य युद्ध मत्त दंति
गाजही ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—रावण चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी
चले । सँभे=सब वीर लोग । दीह-दुंदुभी=बड़े बड़े नगाड़े ।
दंति=हाथी ।

मूल—चंचरी छन्द—रुद्र धीरघुनाथ को रथहीन मृतल देखि कै ।
येगि सारथि सों कहौ रथ साजि जाहि विशेषि कै ॥
तूण अक्षय वाण, स्वच्छ अमेद लै तनप्राण को ।
आइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को ॥ ३७ ॥

रूप से । तूण अक्षयवाण के=
तरफस जिसके घाण कमी कम न हों । अमेद तनप्राण=
कषच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके । अप्रमेय
को करि=रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर
रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से सजाकर) ।

रुद्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये
सज्जित, पर रथहीन, देख कर अति शीघ्र अपने सारथि से-

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ। सारथी आज्ञा पाकर अक्षयवाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा।

मूल—कोटि भौंतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै ।
वैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यो हँसै ॥
रामचंद्र प्रदाक्षिणा करि दक्ष है जवहीं चढ़े ।
पुष्पत्रपि वजाय तुंडुभि देवता बहुधा बड़े ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—लघुता=(लाघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता
अन्तक=यमराज । दक्ष है=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने द्वार से) ।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था) पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला था । उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान अट्टहास करते हैं । रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके जब दाहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की सहायता करने को आगे आये ।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़यो ।
वीस बाहुन की सराबलि व्योम भूतल स्यो मढ़यो ॥
शूल है सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे ।
ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे ॥ ३९ ॥

उपासना ऐसे ही घोर वीर और अहङ्कारी जीव से हो सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वमावांक्ति ।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-बध)

मूल—चामर छन्द—रावण चले चले ते धाम धाम ते सब ।
साजि साजि साजि सूर गाजि गाजि के तबै ॥ दीह दुंदुभी
अपार भाँति भाँति याजहीं । युद्धभूमि मध्य कुद्ध मत्त दंति
गाजहीं ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—रावण चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी चले । सबै = सब वीर लोग । दीह दुंदुभी = बड़े-बड़े नगाड़े । दंति = हाथी ।

मूल—चंद्रोत्तं हंद्—इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखि कै ।
बेगि साराधि सों कछौ रथ साजि जाहि विशेषि कै ॥
तूण अक्षय वाण, स्वच्छ अमेद् लै तनत्राण को ।
धाइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को ॥ ३७ ॥

—विशेषिकै = विशेष रूप से । तूण अक्षयवाण के = तरकस जिसके वाण कमी कम न हों । अमेद् तनत्राण = कवच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके । अप्रमेय को करि = रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर (बड़ा रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से सजाकर) ।

इन्द्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये गंगा, पर रथहीन, देस कर अति शीघ्र अपने साराधि से



शब्दार्थ—सरावलि=शर समूह । सिकता=बालू । दृष्टि के बल संहरे=दृष्टि का बल जाता रहा अर्थात् ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पढ़ने लगा । छतनाः करे=शरीरों को छेद कर मधुमक्षिका के छाते की तरह कर दिया ।

भावार्थ—श्री राम जी को रथ पर सवार देखकर रावण का क्रोध बढ़ा, बीस भुजाओं के शर-समूह से जमीन आसमान को भर दिया । पर्वत बालू होगये, ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पढ़ने लगा । रीछों वानरों के शरीर बाणों से छेद कर छतना कर डाले ।

अलंकार—अत्युक्ति

मूल—मोदक छंद—

यानन साथ विधे सय धानर । जाय परे मलय चळ की घर ॥
सुरज मंडल में एक रोवत । एक अकाशनदी मुख धोयता ॥४०॥
एक गये यम लोक सहे दुख । एक कहें भव-भूतन सों सुख ॥
एक ते सागर माँझ परे मरि । एक गये बड़वानल में जरि ॥४१॥

शब्दार्थ—(४०)—धर=(धरा) पृथ्वी । आकाशनदी=आकाशगंगा । (४१)—भव-भूत=सांसारिक पंचभूत अर्थात् पवन अग्नि इत्यादि ।

(४०)—रावण ने सब वानरों को बाणों से बेध दिया । बहुत से वानर तो मलयगिरि पर जा गिरे, कुछ सूर्यमंडल में जा पड़े, कुछ आकाशगंगा में सुख घोते हैं ।—(४१)—कोई

ख सहकर (मरकर) यमलोक को गये, कोई पंचभूतों से
॥ मिले, कोई मर कर समुद्र में वहे जाते हैं, कोई बड़वानल
जल गये हैं ।

४—मोटनक छंद—श्री लक्ष्मण कोप कन्यो जवहीं । छोड़यो
शर पावक को तवहीं ॥ जान्यो शर पंजर छार कन्यो ।
नैक्रत्यन को अति चित्त डन्यो ॥ ४२ ॥

वदार्थ—शरपंजर=शर-कोट (वीर लोग वाण फेंक कर
सेना के चारों ओर दीवार सी बना देते हैं जिससे कोई योद्धा
उससे बाहर न जा सके, इसे शर-पंजर कहते हैं) ।
नैक्रत्य=राक्षस ।

भावार्थ—अपना दल विकल देख कर जब श्री लक्ष्मण जी
ने क्रोध किया तब अग्निवाण छोड़ा और शर-पंजर को
जला कर खाक कर दिया, यह देख कर राक्षसों के चित्त-
बहुत ही भयभीत हुए ।

मूल—दौरे हनुमंत बली बल स्यो । लै अंगद संग सवै दल स्यो ॥
मानो गिरि राज तजे डर को । घेरें चहुँ ओर पुरंदर को ॥ ४३ ॥

भावार्थ—इस के बाद श्रीहनुमान और अंगद सेना को समेट
कर बलपूर्वक रावण को घेर लेने के लिये दौड़े । यह
धावा ऐसा मालूम हुआ मानो बड़े बड़े पर्वत निडर होकर
इन्द्र को घेर रहे हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

शब्दार्थ—सरावलि=शर समूह । सिकता=बालू । दृष्टि के बल संहरे=दृष्टि का बल जाता रहा अर्थात् ऐसा, अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पढ़ने लगा । छतना करे=शरीरों को छेद कर मधुमक्षिका के छाते की तरह कर दिया ।

भावार्थ—श्री राम जी को रथ पर सवार देखकर रावण का क्रोध बढ़ा, बीस मुजाओं के शर-समूह से ज़मीन आसमान को भर दिया । पर्वत बालू होगये, ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पढ़ने लगा । रीछों वानरों के शरीर बाणों से छेद कर छतना कर डाले ।

अलंकार—अत्युक्ति

मूल—मोदक छंद—

धानन साय विधे सय धानर । जाय परे मलय मंडल की धर ॥
 मंडल में एक रोचत । एक अकाशमदी मुख धोयता ॥
 एक गये यम लोक सहे दुख । एक कहँ भव-भूतन सों मुख ॥
 एक ते सागर माँझ परे मरि । एक गये बड़वानल में जरि ॥४१॥

शब्दार्थ—(४०)—धर=(धरा) पृथ्वी । आकाशमदी=आकाशगंगा । (४१)—भव-भूत=सांसारिक पंचभूत अर्थात् पवन अग्नि इत्यादि ।

(४०)—रावण ने सब वानरों को बाणों से बेध दिया ।
 से वानर तो मलयगिरि पर जा गिरे, कुछ सूर्यमंडल में जा पड़े, कुछ आकाशगंगा में मुख धोते हैं । (४१)—कोई

ला कर । चर्म=ढाल । वर्म=कवच । अशेष=सम्पूर्ण । अशेष-
कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर ।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर धनुषवाण तान
कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर वीर लक्ष्मण
ने एक वाण छोड़दिया । वह वाण ध्वजा को काट कर, रावण
के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर, और सब
सिरों को काट कर, रसातल को

मूल—दंडक छंद—सूरज सु
जामवंत असि, हनू तोमर सु
केशरी, गवय शूल, विभीषण गदा,
मोगरा द्विविद, तार
गवाक्ष विटप विदार
शक्ति, वाण तीन

शब्दार्थ—सूर—
चार हाथ लंबा होता है
तोमर=शापला । कुत=व
मोगरा=मुद्गर ।
लक्ष्मण । शक्ति=साँग, व
भावार्थ—रावण ने सुग्रीव
को लोहोंगी से, जामवंत
मारा । सुशेन को फरसा
शूल से, विभीषण को

मूल—धीर छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के ।
 ऋक्षपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्ष गति रिझाय के ॥
 वानर गण वारन सम केशव सबही मुन्चौ ।
 रावण दुखदावन जग पावन समुहें जुचौ ॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि । मुरझायके= शिथिलकरके । ऋक्षपति=जामवंत । अक्षरिपु=हनुमान । लक्ष गति रिझाईके=निशानेवाजी से खुश करके अर्थात् धाणों से बेधकर । वारनसम=हाथी समान बलवान । मुन्चौ=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये । दुखदावन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी । जगपावन=श्रीराम जी । समुहें=सामने ।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशानेवाजी से खुश कर दिया (धायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान वानरों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने आकर उनसे भिड़ गया ।

छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि शोकियो सु वान
 । छौंदि दीन धीर यान कान के प्रमाण आनि ॥ सो
 फाटि चाप धर्म धर्म धर्म छेदि । जात भो रसातल
 कंठमाल भेदि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी । आनि=आकर । आनि=

ला कर । चर्म=ढाल । वर्म=कवच । अशेष=सम्पूर्ण
कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर ।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर
कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर
ने एक वाण छोड़ दिया । वह वाण ध्वजा को काट
के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर
सिरों को काट कर, रसातल को चला गया ।

मूल—दंडक छंद—सूरज मुसल, नील पट्टिश, रि
जामवंत असि, हनु तोमर सँहारे हैं । परसा सु
केशरी, गवय शूल, विभीषण गदा, गज भिदिपाल
मोगरा हिविद, तार कटरा, कुमुद नेजा, अंगरा
गवाक्ष विटप विदारे हैं । अंकुश शरभ, चक्र दधिमुख,
शक्ति, वाण तीन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—सूरज=सुग्रीव । पट्टिश=खाँड़ा (दोधारा
चार हाथ लंबा होता है) । परिघ=गँडासा वा लोहँगी
तोमर=शापला । कुंत=वरछी । भिदिपाल=ढेलवाँस,
मोगरा=मुद्गर । कटरा=कटार । नेजा=भाला । शेष
लक्ष्मण । शक्ति=साँग, वाना ।

भावार्थ—रावण ने सुग्रीव को मुसल से, नील को खौड़े से,
को लोहँगी से, जामवंत को तलवार से और हनुमान को शापले से
मारा । सुखेन को फरसा से, केशरी को वरछी से, गवय को
शूल से, विभीषण को गदा से, और गज को गोफने से मार

मूल—हीर छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के ।
 ऋक्षपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्ष गति रिझाय के ॥
 धानर गण धारन सम केशव सबही मुन्यौ ।
 रावण दुखदावन जग पावन समुहै जुन्यौ ॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि । मुरझायके= शिथिलकरके । ऋक्षपति=जामवंत । अक्षरिपु=हनुमान । लक्ष-गति रिझाईके=निशानेवाजी से खुश करके अर्थात् धारणों से बेधकर । धारनसम=हाथी समान बलवान । मुरघो=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये । दुखदावन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी । जगपावन=श्रीराम जी । समुहै=सामने ।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशाने वाजी से खुश कर दिया (घायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान धारणों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने आकर उनसे भिड़ गया ।

—चंचला छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि रोकियो मु धान
 । छौंड़ि दीन धीर धान फान के प्रमाण आनि ॥ सो
 काटि चाप चर्म धर्म मर्म छेदि । जात मो रसातल
 कंठमाल भेदि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी । आनि=आकर । आनि=

ला कर । चर्म=ढाल । वर्म=कवच । अशेष=सम्पूर्ण । अशेष-
कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर ।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर धनुषवाण तान
कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर वीर लक्ष्मण
ने एक वाण छोड़दिया । वह वाण ध्वजा को काट कर, रावण
के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर, और सब
सिरों को काट कर, रसातल को चला गया ।

मूल—दंडक छंद—सूरज मुसल, नील पट्टिश, परिघ नल,
जामवंत असि, हनु तोमर सँहारे हैं । परसा सुखेन, कुंत
केशरी, गवय शूल, विभीषण गदा, गज भिदिपाल टारे हैं ॥
मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा, अंगदशिला,
गवाक्ष चिटप विदारे हैं । अंकुश शरभ, चक्र दधिमुख, शेष
शक्ति, वाण तीन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—सूरज=सुग्रीव । पट्टिश=खाँड़ा (दोधारा और
चार हाथ लंबा होता है) । परिघ=गँड़ासा वा लोहँगी ।
तोमर=शापला । कुंत=वरछी । भिदिपाल=ढेलवाँस, गोफना ।
मोगरा=मुद्गर । कटरा=कटार । नेजा=भाल । शेष=
लक्ष्मण । शक्ति=साँग, वाना ।

भावार्थ—रावण ने सुग्रीव को मूसल से, नील को खाँड़े से, नल
को लोहँगी से, जामवंत को तलवार से और हनुमान को शापले से
मारा । सुखेन को फरसा से, केशरी को वरछी से, गवय को
शूल से, विभीषण को गदा से, और गज को गोफने से मार

मूल—हार छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के ।
 ऋक्षपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्ष गति रिझाय के ॥
 वानर गण वारन सम केशव सबही मुन्यौ ।
 रावण दुखदायन जग पावन समुहें जुन्यौ ॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि । मुरझायकै= शिथिलकरके । ऋक्षपति=जामवंत । अक्षरिपु=हनुमान । लक्ष गति रिझाकै=निशानेवाजी से खुश करके अर्थात् बाणों से बेधकर । वारनसम=हाथी समान बलवान । मुन्यौ=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये । दुखदायन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी । जगपावन=श्रीराम जी । समुहें=सामने ।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशानेवाजी से खुश कर दिया (घायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान वानरों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने उनसे भिड़ गया ।

छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि रोकियो सु वान
 । छौंड़ दीन धीर वान कान के प्रमाण आनि ॥ सो
 काटि चाप धर्म धर्म मर्म छेदि । जात भो रसातल
 कंठमाल भेदि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी । आनि=आकर । आनि=

कर हटा दिया । द्विविद को मुद्गर से, तारा को फटार से, कुमुद को नेत्र से, अंगद को शिला और गवाक्ष को पेड़ से विदीर्ण कर दिया । शरभ को अंकुश, दाधेमुख को चक्र, लक्ष्मण को साँग और धनुषसे तीन बाण रामजी को मारे (तात्पर्य यह कि रावण अपने अठारह हाथों से अन्य अठारह वारों से लड़ता है और दो हाथों से राम से लड़ रहा है)

मूल—दोहा—द्वैभुज श्री रघुनाथ सौ विरचे युद्ध विलास
वाहु अठारह यूथपनि मारे केशवदास ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—युद्ध विलास=युद्ध क्रोड़ा (तात्पर्य यह कि रावण युद्ध को एक खेल समझता है) ।

मूल—गंगोदक छंद—

युद्ध जोई जहाँ मौति तैसी करै ताहि ताही दिसा रोकि राखैतहाँ
आपने अस्त्र ले शस्त्र काटे सब ताहि केहुँ कहुँ घाव लागै नहीं ॥
दौरि सौमित्र लघाण कोइँड उयो खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रायली
शैल शृंगावली छोड़ि मानो उड़ी एक ही धेर कै हंस घंशावली ॥४८॥

शब्दार्थ—सौमित्र=लक्ष्मण । खंडखंडी=खंडखंड कर डाली ।
अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

—त्रिसंगी छंद—

शुभ लक्षण युद्धि विचक्षण रावण सौ रिस छोड़ि दर्द ।
५७ ५१ छंडे जे सिर छंडे ते फिरि मंडे शोभ नई ॥
येद्यपि रण-पंडित गुन गन मंडित रिपुबल खंडित भूलि रहे ।
ताजे मन बच कायक, सुरसहायक, रघुनायक सौ यचन कोहे ॥४९॥

शब्दार्थ—रिस=(पंजाबी 'रीस') वरावरी, युद्ध। रावण. सों रिस छोड़दई=रावण से युद्धकरना छोड़ दिया अर्थात् वंद कर दिया। रिपुवल खंडित=(ये शब्द लक्ष्मण के विशेषण हैं) रिपुवल द्वारा खंडित हुआ है रणपांडित्य जिनका (अर्थात् लक्ष्मण जी) भूलि रहे=चकित हो रहे हैं। तजि मन वच कायक =मन वचन और कर्म से अपने रणपांडित्यका अहंकार छोड़कर। सूरसहायक=(रघुनायक का विशेषण है)।

भावार्थ—जब लक्ष्मण ने देखा कि बहुत से वाण छोड़ कर जो रावण के सिर हम काटते हैं, वे फिर नवीन शोभा धारण करते हैं (नवीन सिर निकल आते हैं) तब शुभलक्षण तथा बुद्धिमान लक्ष्मण ने रावण से युद्ध करना वंद कर दिया। यद्यपि लक्ष्मण जी बड़े रणपांडित और वीरोचित गुणयुक्त हैं, तथापि रिपुवल से भग्न मनोरथ होकर (मारने में असफल होकर) चकित हो रहे, और मन-वचन कर्म से रणपांडित्य का अभिमान छोड़ कर शूरवीरों के सच्चे सहायक रामजी से यों बोले।

मूल—(लक्ष्मण)—

ठाढो रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्री रघुनंदन मुनि जन वंदन दुष्ट निकंदन सुख दायक ॥
अव टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धारि शायक।
रावणहि न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक ॥५०॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि मेरे लिये ---

कर हटा दिया । द्विविद को मुद्गर से, तारा को कटार से, कुमुद को नेजे से, अंगद को शिला और गवाक्ष को पेड़ से विदीर्ण कर दिया । शरभ को अंकुश, दधिमुसु को चक्र, लक्ष्मण को साँग और धनुषसे तीन बाण रामजी को मारे (तात्पर्य यह कि रावण अपने अठारह हाथों से अन्य अठारह वारों से लड़ता है और दो हाथों से राम से लड़ रहा है)

मूल—दोहा—द्वैभुज धी रघुनाथ सौं विरचे युद्ध विलास
बाहु अठारह यूथपनि मारे केशवदास ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—युद्ध विलास=युद्ध क्रोड़ा (तात्पर्य यह कि रावण युद्ध को एक खेल समझता है) ।

मूल—गंगोदक छंद—

युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करे ताहि ताही दिसा रोकि राखैतहाँ
आपने अख छे शख काटे सयँ ताहि केहुँ कहुँ घाव लागै नहीं ॥
दौरि सौमित्र लंघण कोदंड ज्यों खंड खंडी घ्वजा धीर छत्रावली
शैल शृगावली छोड़ि मानो उड़ी एक ही धर कै हंस धंशावली ॥४८॥

शब्दार्थ—सौमित्र=लक्ष्मण । खंडखंडी=खंडखंड कर डाली ।
अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—त्रिमंगी छंद—

लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण रावण सौं रिख छोड़ि दर्द ।
बहु दाननि छंडे जे सिर खंडे ते फिर मंडे शोभ नई ॥
यद्यपि रण-पंडित गुन गन मंडित रिपुवल खंडित भूलि रहे ।
तजि मन बच कायक, सूरसहायक, रघुनायक सौं यचन कहे ॥४९॥

शब्दार्थ—रिस=(पंजाबी 'रीस') बराबरी, युद्ध। रावण सों रिस छोड़दई=रावण से युद्धकरना छोड़ दिया अर्थात् बंद कर दिया। रिपुबल खंडित=(ये शब्द लक्ष्मण के विशेषण हैं) रिपुबल द्वारा खंडित हुआ है रणपांडित्य जिनका (अर्थात् लक्ष्मण जी) भूलि रहे=चकित हो रहे हैं। तजिमन वच कायक =मन-वचन और कर्म से अपने रणपांडित्यका अहंकार छोड़कर। सूरसहायक=(रघुनायक का विशेषण है)।

भावार्थ—जब लक्ष्मण ने देखा कि बहुत से बाण छोड़ कर जो रावण के सिर हम काटते हैं, वे फिर नवीन शोभा धारण करते हैं (नवीन सिर निकल आते हैं) तब बुद्धिमान लक्ष्मण ने रावण से युद्ध करना बंद कर दिया। यद्यपि लक्ष्मण जी बड़े रणपंडित और वीरोचित गुणयुक्त हैं, तथापि रिपुबल से भग्न मनोरथ होकर (मारने में असफल होकर) चकित हो रहे, और मन-वचन कर्म से रणपांडित्य का अभिमान छोड़ कर शूरीयों के सच्चे सहायक रामजी से यों बोले ।

मूल—लक्ष्मण) —

टाढो रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक ।
सुनि श्री रघुनंदन मुनि जन बंदन दुष्ट निकंदन सुख दायक ॥
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि शायक ।
रावणहि न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक ॥५०॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि देखिये महा-

राज ! रावण खड़ा रण में गरज रहा है, किसी प्रकार भागता नहीं । इस सर्व प्रकार से योग्य योद्धा को देखकर मैं तन मन से लज्जित हो रहा हूँ । हे मुनिबंध, दुष्टदलन सुखदायक राम जी सुनिये, यह रावण न टाले टलता है, न मारे मरता है, मैं बगवरी करते करते थक गया हूँ । हे जगनायक ! आप रावण को क्यों नहीं मारते, सुनते नहीं कि सब देवता अति आर्त बाणी से पुकार कर रह हैं ।

मूल—(राम) छप्पयछंद—जेहि शर मधु-मद मरदि महा मुर मर्दन कोनो । मान्यो कर्कस नरक शंख हति शंख हु लीनो ॥ निष्कंटक सुर कटक कन्यो कैटभ यपु खंड्यो । खरदूषण त्रिशिरा कबंध तर खंड विहंड्यो ॥ कुंभकरण जेहि संहन्यो पल न प्रतिष्ठा ते टरी । तेहि याण प्राण दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—कर्कस=कठोर । मधु, मुर, नरक, शंख, कैटभ=ये सब उन बड़े बड़े दैत्यों के नाम हैं जिन्हें विष्णु ने मारा है । तरुखंड=सातो लाल वृक्ष जिन्हें राम जी ने सुग्रीव के फहने से बिछ किया था । विहंड्यौ=(बिखंड्यौ) विशेष प्रकार से खंडित किया है ।

भावार्थ—राम जी लक्ष्मण सरीखे वीर को घबराया हुआ जान कर दिलासा देने हेतु कहते हैं कि घबराओ नहीं, जिस बाण से मैंने ये दैत्य राक्षसादि मारे हैं उसी बाण से रावण को भी मारूँगा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

मूल—दोहा—रघुपति पठयो आसुही असुहर बुद्धि निधान ।
दससिर दसहू दिसन को बलि दै आयो वान ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—आसुही=शीघ्रही । असुहर=प्राणनाशक । बुद्धि
निधान=राम जी ।

भावार्थ—बुद्धिनिधान राम ने तुरन्त एक प्राणहर वाण छोड़ा
जो रावण के दसो सिर काट कर दसो दिसाओं को बलि
देकर पुनः तरकस में आगया ।

मूल—सुन्दरी सवेया—

भुवभारहि संयुत राकस को गण जाय रसातल में अनुशाग्यो
जग में जय शब्द समेतहि केशव राज विभीषणके सिर जाग्यो
मयदानव नंदिनिके सुख सौ मिलिके सियके हिय को दुख भाग्यो
सुर दुंदुभि सीस गजा सर राम को रावण के सिर साथहि लाग्ये

शब्दार्थ—मयदानवनंदिनी=मंदोदरी । गजा=(गज) नगाड़े
को चोव, वह लकड़ी जिसेसे नगाड़ा बजाया जाता है ।

भावार्थ—भूमिभार सहित राक्षसों का समूह पाताल को चला
गया । राम की जयका शब्द और विभीषण की राज्यप्राप्ति का
सौभाग्य एकसाथही उदय हुआ । मंदोदरी का सुख और सीता
का दुख साथ ही भाग गये । रावण के सिर में राम का वाण
और देव-दुंदुभी पर दंडा एक साथ ही लगे ।

अलंकार—अक्रमाविशयोक्ति, सहोक्ति ।

मूल—(मंदोदरी)—मत्तगयन्द सधैया—

जीति लिये दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी ।
 वासरहू निसिदेवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी ॥
 तीनहुँ लोकन की तरुनीन की चारी बँधी हुती दंडहि दू की ।
 सेवित स्वान सियार सो रावण सोवत सेज परे भव भूकी ॥४४

शब्दार्थ—देवनदी = आकाशगंगा । सूकी = (बुँदेलखंडी
 उच्चारण) सूख गई । संपति हूकी रहै = संपत्ति को पीड़ा
 होती थी । दू = दो । मू = पृथ्वी ।

भावार्थ—(मंदोदरी विलाप करती है) हे पतिदेव ! तुम
 ने दिगपालों को जीत लिया था, तुम्हारे डर से स्वर्ग से भगे
 हुए इन्द्र की वियोगिनी पत्नी शची की गर्म स्वाँधों से सारी
 आकाशगंगा सूख गई थी, तुम्हारे कारण रातोदिन देवताओं
 और राजाओं की संपत्ति को पीड़ा रहती थी । तीनो लोकों
 की स्त्रियों की तुम्हारी सेवा करने के लिये दो दो दंड
 की पारी बँधी हुई थी, वेही तुम आज कुत्तों और सियारों से
 सेवित भूमि पर सो रहे हो ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—(राम)—तारकछन्द—भव जाहु विभीषण रावण
 लैके । सकलत्र सधेधु क्रिया सब फेके ॥ जन सेवक संपति
 कोश सँभारो । मयनंदिनि के सिंगरे दुख टारो ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—सकलत्र = स्त्री-सहित । जन = परिजन, कुटुंबी ।
 कोश = खजाना । मयनंदिनी = मंदोदरी ।

भावार्थ—(राम जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि) हे विभीषण ! रावण का शव उठा ले जाओ और स्त्रियों तथा बंधुजनों सहित सब मृतक्रिया यथाविधि करके, सब परिवार, सेवक, सम्पत्ति और खजाने को सँभालो (जाँच कर अपने अधिकार में लो) और मंदोदरी के सब दुःख निवारण करो ।

विशेष—‘भयनंदिनि के सिगरे’ दुख टारो’—इस के दो भाव हो सकते हैं:—(१) हमारे तुम्हारे शत्रु की स्त्री समझ कर इसे आजीवन कदापि कोई दुःख न देना, यथाविधि इसकी सेवा-शुश्रूषा करना । (२) इसे अपनी स्त्री बनालो जिससे इसका सौभाग्य बना रहे और यह सीता की तरह पतिवियोग से दुखित न हो ।

नोट—इस छंदसे रामजी की नीतिज्ञता, दयालुता सहानुभूति, उदारता आदि क्षत्रियोचित गुण प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं ।

उत्तीसवाँ प्रकाश समाप्त



मूल—(मंदोदरी)—मत्तगयन्द सवैया—
 जीति लिये दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी ।
 वासरहु निसिदेवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी ॥
 तीनहुँ लोकन को तरनीन की बारी बँधी हुती दंडहि दू की ।
 सेवित स्थान सियार सो रावण सोवत सेज परे अब भूकी ॥४॥

शब्दार्थ—देवनदी = आकाशगंगा । सूकी = (उच्चारण) सूख गई । संपति हूकी रहै = संपत्ति होती थी । दू = दो । भू = पृथ्वी ।

भावार्थ—(मंदोदरी विलाप करती है) हे
 ने दिगपालों को जीत लिया था, तुम्हारे डर
 हुए इन्द्र की वियोगिनी पत्नी शची की गर्म
 आकाशगंगा सूख गई थी, तुम्हारे कारण
 और राजाओं की संपत्ति को पीड़ा रहती थी ।
 की स्त्रियों की तुम्हारी सेवा करने के लिये दो
 को पारी बँधी हुई थी, वेही तुम आज कुर्छों और
 सेवित भूमि पर सो रहे हो ।

अलंकार—निदर्शना ।

मूल—(राम)—तारकछंद—थव जाहु विभीषण
 लैकै । सकलत्र संधधु क्रिया सब कैकै ॥ जन सेवक
 कोश सँभारो । मयनंदिनि के सिंगरे दुख टारो ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—सकलत्र = स्त्री-सहित । जन = परिजन, कुटुंबी ।
 कोश = सजाना । मयनंदिनी = मंदोदरी ।

और नवीन आनंदित अंगों में फूलमालायें धारण कीं ।
ब्राह्मणों और देवताओं ने प्रशंसासूचक विरुदावली पढ़ी,
तदनंतर अग्निदेव की गोद में चढ़कर सीता जी राम की
ओर चली ।

(सीता की अग्नि-परीक्षा)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सबखा सबै अंग सिंगार सोहैं ।
बिलोके रमा देव देवी विमोहैं ॥ पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र
गीता । लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कन्यका=पुत्री । शुभ्रगीता=पवित्राचरणवाली ।

भावार्थ—सीता जी वस्त्राभूषणों से शृंगारित हैं, जिनका रूप
देख कर लक्ष्मी सहित देव-देवियाँ विमोहित होती हैं । जैसे
पिता की गोद में कोई पवित्राचरणी कन्या हो वैसे ही
अग्नि की गोद में शुद्ध सीता विराजती हैं ।

अलंकार—देहरीदीपकसे पुष्ट उपमा ।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—

महादेव के नेत्र की पुत्रिकासी । कि संग्राम की भूमि में चंडिका
मनो रत्न सिंहासनस्था सची है । किधों रागिनी रागपूरे रची

शब्दार्थ—पुत्रिका=पुतली । सची=इन्द्राणी । राग=अनुराग ।

रची है=रंगी है ।

भावार्थ—(सीताजी उस समय कैसी जान पड़ती हैं)
महादेव के नेत्र की पुतली हैं, या रणभूमि की चंडिका हैं,



बीसवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या बीसवें प्रकाश में सीता मिलन विशेषि ।
 ब्रह्मादिक अस्तुति गमन अवघपुरी को लेपि ॥
 प्राग वरणि अरु बाटिका भरद्वाज की जानि ।
 ऋषि रघुनाथ मिलाप कहि पूजा करि सुख मानि ॥

मूल—(श्रीराम) तारक छंद—

जय जाय कही हनुमंत हमारो । सुख देवहु दीरघ दुःख विदारो ।
 सय भूषण भूपित कै शुभगीता । हमको तुम बेगि दिखावहु सीता ।

शब्दार्थ—जय=(केशव यहाँ पुंलिंग मानते हैं) जीत । देवहु=
 सीजिये । शुभगीता=सर्व-प्रशंसित ।

मूल—तारक छंद—

हनुमंत गये तहहीं जहँ सीता । अरु जाय कही जय की सय गीत ।
 पगलागि कही जननी पशु धारो । मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो ।

शब्दार्थ—गीता=वर्णन । पशुधारो=चलिये । मग चाहत हैं=
 रास्ता देख रहे हैं, बात जोहते हैं ।

छंद—

१. घरिकै कुसुमावलि अंग नवीने ।
 २. पढ़ी शुभगीता । तव पायक अंक चली चदि सीता ।
 ३. ने सर्वे शरीर को भूषणों से भूपित किया

और नवीन आनंदित अंगों में फूलमालायें धारण कीं ।
ब्राह्मणों और देवताओं ने प्रशंसासूचक विरुदावली पढ़ी,
तदनंतर अग्निदेव की गोद में चढ़कर सीता जी राम की
ओर चली ।

(सीता की अग्नि-परीक्षा)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सबखा सबै अंग सिंगार सोहैं ।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं ॥ पिता अंक ज्यों कन्यका
गीता । लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कन्यका=पुत्री । शुभ्रगीता=पवित्राचरणवाली ।

भावार्थ—सीता जी वस्त्राभूषणों से शृंगारित हैं, जिनका रूप
देख कर लक्ष्मी सहित देव-देवियाँ विमोहित होती हैं ।
पिता की गोद में कोई पवित्राचरणी कन्या हो वैसे
अग्नि की गोद में शुद्ध सीता विराजती हैं ।

अलंकार—देहरीदीपकसे पुष्ट उपमा ।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—

महादेव के नेत्र की पुत्रिकासी । कि संग्राम की भूमि में
मनो रत्न सिंहासनस्था सची है । किधौं रागिनी रागपूरे

शब्दार्थ—पुत्रिका=पुतली । सची=इन्द्राणी । राग=जगुरा
रची है=रंगी है ।

भावार्थ—(सीताजी उस समय कैसी जान पड़ती हैं)
महादेव के नेत्र की पतली हैं, या रागभूमि की चंकि

या मानो रत्न सिंहासन में बैठी हुई इन्द्राणी है, या पूरे अनुराग से रंगी हुई कोई रागिनी है ।
 अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—गिरापुर में है पयोदेवता स्त्री । किर्घी कंज की मंजु शोभा प्रकासी । किर्घी पद्म ही में सिफाकंद सोई । किर्घी पद्म के कोप पद्मा विमोह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती । पूर=समूह । गिरापूर=सरस्वती नदी का जलसमूह । पयोदेवता=जल-देवी । सिफाकंद=कमलकंद । कोप=कमल की छतरी, कमल के मध्यभाग का बीज-कोप । पद्मा=लक्ष्मी ।

भावार्थ—या सरस्वती के जलसमूह में कोई जलदेवी है, या उसी में कोई सुन्दर कमल खिला हुआ है, या कमल में कमलकंद है, या कमल के बीजकोप पर लक्ष्मी जो बैठी शोभा दे रही है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

कि सिंदूर शैलाग्र में सिद्धकन्या । किर्घी पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या । सरंजासना है मनो चारु धानी । जपापुष्प के धोच बैठी भवानी ॥

भावार्थ—या सिंदूर शैल के अग्रभाग में कोई सिद्ध-कन्या बैठी है, या सूर्य मंडल में कोई कमलिनी है, या सुन्दर सरस्वती ही कमल पर बैठी है, या जपापुष्प पर भवानी है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—किधौँ औषधी वृन्द में रोहिणी सी ।
कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी ॥ धरा पुत्र ज्यों स्वर्णमाला
प्रकासै । किधौँ ज्योति सी तक्षकाभोग भासै ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—तक्षकाभोग=(तक्षक+आभोग)तक्षक का फण ।

भावार्थ—या दिव्यौषधियों के समूह में रोहिणी वैठी है, या
दिग्दाह में कोई योगिनी है, या मंगल-मंडल में स्वर्णमाला
है, या तक्षक के फण पर मणिज्योति प्रकाशित है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—उपेन्द्रवज्रा—आसावरी माणिककुंभ सोमै । अशोक
लसा वन देवता सी ॥ पलाशमाला कुसुमालि मध्ये । वसंत
लक्ष्मी सुभ लक्षणा सी ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—आसावरी=एक रागिनी विशेष । लना=स्थित, वैठी
हुई ।

भावार्थ—(सीता जी अग्नि पर वैठी कैसी जान पड़ती हैं
मानो) आसावरी रागिनी माणिक का कुंभ लिये हो (अग्नि
समूह आसावरी रागिनी है, सीता माणिककुंभ हैं) या अ-
शोक वृक्षपर स्थित कोई वनदेवी है, अथवा शुभलक्षणा वसन्त-
श्री (वसंत की शोभा) पलाश-कुसुम के समूह में शोभित है ।

अलंकार—उपमागर्भित संदेह ।

मूल—आरक्तपत्रा सुभ चित्रपुत्री । मनो विराजै अति चारु घेषा ॥
संपूणे सिंहर प्रभा घसै धौँ । गणेश भालस्थल चन्द्ररेखा ॥१०॥

शब्दार्थ—आरक्तपत्रा=लाल बेलवृटों से सजाई हुई । चित्र-

पुत्री=चित्रकी पुतली । चन्दरेखा=चंद्रमा की कला (जो गणेश के मस्तक पर है) ।

भावार्थ—या मानो कोई चित्रपुतली लाल बेलवटों के मध्य सुन्दर भेष से सजाई गई हो (अग्नि लाल बेलवटों के मध्य सीता जी चित्रपुतरी हैं) या संपूर्ण सिंदूर की प्रभा में गणेश के माल पर की चन्द्रफला है ।

अलंकार—व्येक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—मत्तगण्ड सयैया—

है मणि दर्पण में प्रतिबिम्ब कि प्रीति दिये अनुरक्त अभीता ।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप तेजन में मनु सिद्धि विनीता ॥
ज्यो रघुनाथ तिहारि मक्ति लखैं उर केशव के शुभ गीता ।
स्यो अयलोकिय आनंद कंद हुतासन मध्य सबासन सीता ॥

शब्दार्थ—अनुरक्त अभीता=निश्चल अनुरागी जन । विनीता
=अति उत्तम । हुतासन=अग्नि । सबासन=बसों सहित ।

भावार्थ—(सीता जी अग्नि-मध्य में बैठी कैसी शोभित हैं कि) मणिदर्पण में किसी का प्रतिबिम्ब है, या किसी निश्चल अनुरागी के हृदय में सशब्द प्रीति ही मूर्तिमान है, या प्रताप के ढेर में कीर्ति है, या तपतेज में उत्तमा सिद्धि है, या जैसे केशव के हृदय में राम-भक्ति बसती है वैसे ही सीता अग्नि में सबसा विराजी हैं (यत्न तक नहीं बलते) ।

अलंकार—उपमा से पुष्ट संदेह ।

नोट—इस प्रसंग से केशव की उर्वरा प्रतिभा का पता अच्छी भाँति लगता है। अग्नि में बैठी जानकी के लिये कितनी अधिक उपमाएँ धाराप्रवाहवत् कहते चले गये हैं। यह आसान बात नहीं है। केशव में प्रतिभा का ऐसा विकास इसी पुस्तक में अनेक ठौर देखा जाता है।

ल—दोहा—इन्द्र वरुण यम सिद्ध सब धर्म सहित धनपाल । ॐ
ब्रह्म रुद्र लै दशरथहिं आय गये तेहि काल ॥१२॥

शब्दार्थ—धर्म=धर्मराज । धनपाल=कुवेर । लै दशरथहिं=दशरथ को लेकर ।

भावार्थ—इन्द्र, वरुण, यमराज, सिद्धगण, कुवेर, ब्रह्मा, रुद्र, राजा दशरथ को साथ लिये हुए वहाँ आगये ।

मूल—(अग्नि)वसन्ततिलकाखंड—श्री रामचन्द्र यह संतत शुद्ध सीता । ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्रगीता ॥ हजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या । योगीश ईश तुम हौ यह योग माया १३ ॐ

शब्दार्थ—शुभ्रगीता=प्रशंसा । गहिजै=(गहिये) ग्रहण कीजिये । जनकात्मजा=जानकी । योगीश=(योगी=शङ्कर+ईश=इष्टदेव) राम ।

भावार्थ—(अग्निदेव सीता की शुद्धता की साक्षी देते हैं) हे श्रीरामचन्द्र ! सुनिये, यह सीता सदैव शुद्ध है, ब्रह्मादि देवता इसकी प्रशंसा करते हैं, अब कृपा कीजिये और इस जनककन्या (जानकी) को ग्रहण कीजिये—अङ्गीकार कीजिये ।

(भाव यह कि सीता इतनी पवित्र हैं जितनी कि एक सद्यः प्रसूता कन्या होती है) । हे शङ्कर के इष्टदेव ! तुम ईश्वर हो और यह सीता योगमाया है ।

मूल—यसन्ततिलकाच्छन्द—श्री रामचन्द्र हौंसि अंक लगाइ लीन्हों ।
संसार साक्षि शुभ पावक आनि दीन्हों ॥ देवानि दुंदुभि
बजाय मुगीत गाये । त्रिलोक-लोचन-चकोरनि-चित्त भाये ॥ १४॥

भाषार्थ—(अग्निदेव की साक्षी पर) श्रीरामजी ने सीता को आलिङ्गन करके अङ्गीकार किया क्योंकि संसार के साक्षीस्वरूप पवित्र अग्निदेव ने उन्हें लाकर दिया था, (यह देख) देवताओं ने नगाड़े बजा कर स्तुति की । इस समय की शोभा त्रिलोक-निवासियों के नेत्र-चकोरों के चित्त में आनन्ददायक लगी (सीता राम के मिलन की शोभा देखकर त्रिलोकनिवासियों को आनन्द हुआ) ।

अलंकार—परंपरित रूपक—(श्रीराम को चन्द्र कहा अतः त्रिलोक-वासियों के नेत्रों को चकोर कहना ही उचित है) ।

(श्रीराम-स्तुति)

मूल—(ब्रह्मा) दोषकच्छन्द—

सम सदा तुम अंतर्यामी । लोक चतुर्दश के आभिरामी ॥
निगुण एक तुम्हें जग जानें । एक सदा गुणवंत चखानें ।

शब्दार्थ—अंतर्यामी=(अन्तर्यामी) सबके हृदय में बसने-वाले । अभिरामी=आनन्द-दायक । गुणवंत=सगुणरूप ।

बीसवाँ प्रकाश

५

भावार्थ—(ब्रह्मा कहते हैं) हे राम ! तुम सबके हृदय में बसते हो (सबके छल-कपट तथा सत्यभाव को जानते हो) चौदहों लोकों को आनंद देते हो, जग में कुछ लोग तुम्हें निर्गुण मानते हैं कुछ सगुणरूप कहते हैं ।

ल—ज्योति जगै जग मध्य तिहारी । जाइ कही न सुनी न निहारी
तोउ कहै परिमान न ताको । आदि न अंत न रूप न जाको ॥

वदार्थ—ज्योति=प्रकाश । परिमान=अंदाज, मात्रा ।

भावार्थ—सरल है (ईश्वर के निर्गुण रूप का वर्णन है) ।

लंकार—अतिशयोक्ति ।

ल—तारकछंद—तुम हो गुण रूप गुणी तुम ठाये । तुम एक
रूप अनेक बनाये ॥ एक है जो रजोगुण रूप तिहारो । तेई
सृष्टि रची विधि नाम विहारो ॥ १७ ॥

वदार्थ—ठाये=स्थित हो, बनाये हो । विधि नाम विहारो=ब्रह्मा
राम से प्रसिद्ध हो ।

भावार्थ—तुम्हीं गुणरूप हो, तुम्हीं सगुणरूप (प्रकृत नर
रूप) बनाये हुए हो—(अर्थात् तुम साधारण सृष्टि की
गति मेरे रचे हुए नहीं हो) । तुम्हारा जो एक रजोगुणमय
रूप है, उसीने सारी सृष्टि की रचना की है और ब्रह्मा
राम से प्रसिद्ध है ।

लंकार—उल्लेख ।

मूल—तारक छंद—गुण सत्व धरे तुम रक्षत जाको। अब
कहे सिंगरो जग ताको ॥ तुमही जग रुद्र सख्य सँहारो ॥
कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो ॥ १८ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण सतोगुण धारण किये हुए जिस रूप की
तुम रक्षा करते हो (जिस रूप से स्थित हो) उसी रूप को
सारा संसार 'विष्णु' कहता है । तुम्हीं रुद्ररूप से संसार को
संहार करते हो, और उस रूप में समस्त तमोगुण ही तमोगुण है ।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—तारक छंद—

तुमही जग ही जग है तुमही में । तुमही पिरची मरजाद दुनीमें
मरजादहि छोड़त जानत जाको । तयही अवतार धरो तुम ताको ॥

शब्दार्थ—मरजाद=(मर्याद) सीमा । दुनी=(दुनियाँ)
संसार । ताको=उसके बध या विनाश के लिये ।

भावार्थ—तुम्हीं संसार हो और सब संसार तुम्हीं में स्थित
है । तुम्हीं ने संसार में सब जीवों के कृत्यों की सीमा
बाँध दी है । जब जिस जीव को सीमा छल्लयन करते देखते
हो तब उसको नष्ट करने के लिये तुम कोई अवतार लेते हो ।

मूल—तारक छंद—

तुमही घर कच्छप बेध धरो जू । तुम मीनहै वेदन को उधरो जू
तुमही जग यज्ञवराह भये जू । छिति छीनि लई हिरनाल हयेजू
तुमही नरसिंह को रूप सँवारो । प्रह्लाद को वीरघ दुःख विदारो ॥
तुमही यलि धायन धेप छलोजू । भृगुनंदनहै छिति छत्र दलोजू ॥

तुमही यह रायण दुष्ट सँहाय्यो । धरणी महँ बूढ़त धर्म उबान्यौ
तुमही पुनि कृष्ण को रूप धरोगे । हति दुष्टन को भुवभार हरोगे ॥
तुमबोध सरूप दयाहि धरोगे । पुनि कलिकहँ म्लच्छसमूह हरोगे ।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे । अपनी गरजाद के काज सँवारे ।

शब्दार्थ—धर=(यहाँपर) पर्वत, मंदराचल । छत्र=क्षत्री समूह ।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—(महादेव)पंकजवाटिका छंद—श्री रघुवर तुम हौ जग-
नायक । देखहु दशरथ को सुख दायक ॥ सोदर साहित पिता
पद पावन । बंदन किय तव ही मनभावन ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—सुखदायक=रामजी का संबोधन है । मनभावन=
श्रीराम जी ।

मूल—(दशरथ) निशिपालिका छंद—राम ! सुत ! धर्मयुत
सीय मन मानिये । बन्धुजन मातृगण प्राण सम जानिये ॥
ईश, सुरईश, जगदीश सम देखिये । राम कहँ लक्ष्मण ! विशेष
प्रभु लेखिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—(दशरथ जी राम से कहते हैं) हे पुत्र राम !
सीता को मन में धर्मयुत समाक्षिये (सीता निर्दोष हैं, अतः
इसे अंगीकार करो । ऐसा करने से यदि तुम्हें शंका हो कि
बन्धु-बान्धवादि कैसे मानेंगे तो) यह समझो कि सीता तुम्हारे
बन्धुजनों तथा मातृगण की प्राण है—प्राणों को कोई छोड़ना
पसंद नहीं करता । (तदनंतर लक्ष्मण से कहते हैं कि) हे
लक्ष्मण ! तुम राम को शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान

देखो और अपना विशेष प्रभु समझो (भाई-मत समझो) ।

अलंकार—उपमा ।

मूल—(इन्द्रप्रति राम कहते हैं) अंचलाछंद—जूझि जूझि
के गर्भो जे वानरालि ऋक्षराजि । कुंभकर्ण लोकहर्ण भासि-
यो जे गाजि गाजि ॥ रूपरेख स्यो विशेषि जी उठै करो सु
आज । आनि पायँ लागियो तिन्हें समेत देवराज ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—वानरालि=वानरों के समूह । ऋक्षराजि=रीछों
के समूह । लोकहर्ण=(लोकहरण) लोगों को नाश करनेवाला ।
गाजिगाजि=गरज गरज कर । रूपरेख स्यो विशेषि=जैसा
उनका विशेष रूप रंग था ठीक वैसेही । देवराज=इन्द्र ।

भावार्थ—(श्री राम जी इन्द्रप्रति कहते हैं) हे इन्द्र !
तुम यह काम करो कि हमारे जितने वानर और रीछ इस
सुद्ध में (जो तुम्हारे हित के लिये किया गया है) जूझ
गये है, तथा जिनको गरज गरज कर सर्वलोक-भक्षक कुंभकर्ण
भक्षण करगया है, वे सब अपने विशेष रूप-रंग सहित (जैसे
थे वैसे ही) जी उठें । राम जी की यह आज्ञा सुन इन्द्र ने
उनको जिलाकर अपने साथ लाकर राम के सम्मुख उपस्थित
कर दिया और चरण छुप ।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति (आज्ञा सुनते ही कार्य होगया) ।

मूल—दोहा—वानर राक्षस ऋक्ष सय, मित्र कलत्र समेत ।

पुष्पक चढ़ि रघुनाथ जू, चले अवधि के हेत ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—अवधि के हेतु=चौदह वर्ष की अवधि का उल्लंघन होने से भरतजी प्राण त्याग करेंगे, यह विचार कर शीघ्रता के लिये पुष्पक पर चले ।

ल—चंचरीछंद—सेतु सीतहि शोभना दरसाय पंचवटी गये ।
पाँय लागि अगस्त के पुनि अत्रियौ ते विदा भये ॥
चित्रकूट विलोकि कै तब ही प्रयाग विलोकियो ।
भारद्वाज वसैं जहाँ जिन ते न पावन है वियो ॥२८॥

शब्दार्थ—शोभना=सुन्दर । अत्रियौते=अत्रिमुनि से भी ।
भारद्वाज=(छंद के लिये ऐसा किया है) । वियो=दूसरा ।

(त्रिवेणी-वर्णन)

ल—(राम)—तारक छंद—चिलके द्रुति सूछम सोभति चारू । तनु द्वे जनु सेवत हैं सुर चारू ॥ प्रतिविंबित दीप दिपें जल माहीं । जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—चिलकै=चमकती है । सूक्ष्म=वारीक । तनु=अति छोटारूप । ज्वालमुखी=देवनारियाँ, देवियाँ । जाल=समूह । नहाहीं=स्नान करती हैं ।

भावार्थ—(राम जी कहते हैं)—बहुत वारीक बालू में जो छोटे कण चमकते हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो अति छोटा रूप धर कर दिव्य देवता ही त्रिवेणी की सेवा करते हैं । दीपकों के प्रतिविंब जो त्रिवेणजिल पर पड़ते हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानो दिव्य देवियों के समूह त्रिवेणजिल में स्नान कर रहे हैं ।

नोट—इस छंद से ऐसा अनुमान होता है कि राम जी शाम को चिराग जलने के बाद प्रयाग में पहुँचे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—जल की बुति पीत सितासित सोहै । यति पातक घात करै जग को है ॥ मदएण मलै घसि कुंकुम नीको । नृप भारतसंड दियो जनु टीको ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—पीत=पीली (सरस्वती के जल की) । सित=सफेद (गंगा जल की) । असित=काली (यमुना जल की) । अतिपातक=महापाप । मदएण=(एण-मद) कस्तूरी । मलै=चंदन । कुंकुम=केसर । टीको=तिलक ।

भावार्थ—त्रिवेणी जल की चमक पीली, सफेद और काली झलक देती है, और जग के महापापों को नाश कर देती है। यह त्रिवेणी ऐसी जान पड़ती है मानो राजा भारतसंड ने कस्तूरी, चंदन और केसर घसकर मस्तक पर तिलक लगाया हो।

अलंकार—विपरीत क्रम से पुष्ट उत्प्रेक्षा (पहले पीत, सित, असित कहा, पुनः क्रम उलट कर एणमद, मलय और कुंकुम लिखा)।

मूल—(लक्ष्मण) दंडक छंद—चतुरयदन पंचयदन षटयदन, सहस्रपदन हूँ सहस्र गति गार्ह है । सात लोक सात दीप सात हूँ रसातलन, गंगा जी की शोभा सब ही को सुखदाई है ॥ जमुना को जल रहो फैलि के प्रयाह पर, केशोदास धीच धीच गिरा की गोराई है । शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन के स्यामल दुकूल क्षीन झलकत झार्ह है ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—चतुरवदन=ब्रह्मा । पंचवदन=शिव । षट्पद=कार्तिकेय । सहस्रवदन=शेष । सहस्र गति=हजारों भाँति से । प्रवाह=धारा । गिरा=सरस्वती । शोभन=सुन्दर । विलेपन कै=लेप लगा कर । दुकूल=साड़ी । शीन=बारीक । शार्ङ्ग=आभा, शरीर की कान्ति ।

अलंकार— गम्योत्प्रेक्षा ।

मूल—(सुग्रीव) चन्द्रकला सवैया—

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुंदरता सिगरी बख की ।
तिहुँ देवन की दुति सी दरसै गति सोखै त्रिदोषन के रस की ॥
कहि केशव वेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल को मसकी ।
सय वंदै त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहि केतु त्रिविक्रम के जसकी ॥३२॥

शब्दार्थ—उजागर=प्रगट । त्रिदोष=बात, कफ, पित्त । त्रिदोषन के रस की गति=मृत्यु समय के दुःख । वेदत्रयी=ऋगु, यजुर, और सामवेद । परितापत्रयी=दैहिक, दैविक, भौतिक ताप । मसकी=दबादी । त्रिकाल=भूत, भविष्य, वर्तमान । त्रिलोक=मर्त्य, स्वर्ग, पाताल । त्रिविक्रम=वामन जी का दीर्घ स्वरूप ।

भावार्थ—(सुग्रीव कहते हैं कि) यह त्रिवेणी कैसी है कि मानो भवसागर के लिये प्रगट सेतुरूप है, इसने समस्त शोभा को अपने वश में कर लिया है । यह तीनों देवों की दुति सी देख पड़ती है (ब्रह्मा की दुति पीली सो सरस्वती, विष्णु की दुति कृष्ण सो यमुना, शिव की दुति सपेद सो

गंगा हैं), और वात, पित और कफ जनित दोषों से पैदां मृत्यु-दुःख की गति को सोखती है (अर्थात् त्रिवेणी-सेवन से त्रिदोष में पड़कर नहीं मरना पड़ता, इसका सेवक सदेह स्वर्ग को जाता है) । केशव कहते हैं कि यह त्रिवेणी तीनों वेदों की मति सी पवित्र है, और तीनों तापों को दबा कर पाताल को भेज देती है । त्रिलोक के लोग तीनों कालों में इस त्रिवेणी की वंदना करते हैं, क्योंकि यह (गंगा के संबंध से) त्रिविक्रम के यश की पताका है ।

अलंकार—रूपक, उपमा से पुष्ट सम ।

मूल—(विभीषण) दंडक छंद—भूतल की वेणी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजति एकै कहैं सुरपुर मारग विभात है । एकै कहैं पूरण अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह केशोदास द्रवरूप गात है ॥ सब सुरत कर सब शोभाकर मेरे जान कौनो यह अद्भुत सुगंधि-धवदात है । दरस परस ही ते घिर घर जीवन की कोटि कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात है ॥३३॥

शब्दार्थ—वेणी=चोटी । शोभिजति=सोहती है । विभात है=देख पड़ता है । द्रवरूप गात=जलमय शरीर । धवदात=शुद्ध और निर्मल । कुगंधि=पाप ।

भावार्थ—यह त्रिवेणी पृथ्वीतल की वेणी (चोटी) सी सोहती है, और कोई कोई कहते हैं कि यह सुरपुर की सड़क सी है । कोई-२ कहते हैं कि यह परिपूर्ण, अनादि और

अनंत
सुख और
ज्ञान पर
सुगंध है
जन्मों के
अलंकार

मूल—भु

भरद्वाज
सवै वृक्ष

शब्दार्थ—

कल्पवृक्ष

भावार्थ—

देखी उदार उदार शय्या का हा पाटका समझा, क्योंकि वहाँ
के सबही वृक्ष मंदारवृक्ष से भी अति उदार और सुन्दर हैं
(महादेव की वाटिका में मंदार वृक्ष का होना उचित ही है,
और यहाँ के वृक्ष मंदार अर्थात् कल्पवृक्ष से भी अधिक
उदार और सुन्दर हैं) अतः छोटे ऋतुओं के फूल फल
वहाँ हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा । संबंधातिशयोक्ति ।

मूल—फहँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरै । चुनै ओस के बुंद

गंगा हैं), और वात, पित और कफ जनित दोषों से पैदा मृत्यु-दुःख की गति को सोखती है (अर्थात् त्रिवेणी-सेवन से त्रिदोष में पड़कर नहीं मरना पड़ता, इसका सेवक सदेह स्वर्ग को जाता है) । केशव कहते हैं कि यह त्रिवेणी तीनों वेदों की मति सी पवित्र है, और तीनों तापों को दबा कर पाताल को भेज देती है । त्रिलोक के लोग तीनों कालों में इस त्रिवेणी की वंदना करते हैं, क्योंकि यह (गंगा के संबंध से) त्रिविक्रम के यश की पताका है ।

अलंकार—रूपक, उपमा से पुष्ट सम ।

मूल—(विभीषण) दंडक छंद—भूतल की वेणी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजति एकै कहैं सुरपुर मारग विभात है । एकै कहैं पूरण अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह केशोदास द्रवरूप गात है ॥ सब मुत्त कर सब शोभाकर मेरे जान कौनो यह अद्भुत सुगंधि अवदात है । दरस परस ही ते धिर-धर जीवन की कोटि कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात है ॥३३॥

शब्दार्थ—वेणी=चोटी । शोभिजति=सोहती है । विभात है= देख पड़ता है । द्रवरूप गात=जलमय शरीर । अवदात= शुद्ध और निर्मल । कुगंधि=पाप ।

भावार्थ—यह त्रिवेणी पृथ्वील की वेणी (चोटी) सी सोहती है, और कोई कोई कहते हैं कि यह सुरपुर की सड़क सी है । कोई-२ कहते हैं कि यह परिपूर्ण, अनादि और

वीसवाँ प्रकाश

अनंत ईश्वर का जलमय शरीर ही है। यह त्रिवेणी सब सुख और सब शोभा को पैदा करनेवाली है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह कोई अद्भुत और शुद्ध निर्मलकारी सुगंध है, जिसके दरस परस मात्र से चराचर जीवों के असंख्य जन्मों की गंदगी (पाप) मिट जाती है।

अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा।

(भरद्वाजाश्रम-वर्णन)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

भरद्वाज की वाटिका रामदेखी। महादेव कीसी बनी चित्तलेखी
सबै वृक्ष मंदारहू ते भले हैं। छहूँ काल के फूल फूले फले हैं ॥

शब्दार्थ—वनी=वाटिका। मंदार=(१) मदार, अकौवा(२)
कल्पवृक्ष। छहूँकाल=षट् ऋतु।

भावार्थ—श्रीराम ने ससमाज भरद्वाज जी की वाटिका देखी और उसे शिवजी की ही वाटिका समझी, क्योंकि वहाँ के सबही वृक्ष मंदारवृक्ष से भी अति उदार और सुन्दर हैं (महादेव की वाटिका में मंदार वृक्ष का होना उचित ही है, और यहाँ के वृक्ष मंदार अर्थात् कल्पवृक्ष से भी अधिक उदार और सुन्दर हैं) अतः छहो ऋतुओं के फूल फल वहाँ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। संवधातिशयोक्ति।

मूल—कहूँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरें। चुनेँ ओस के बुंद

मुक्तान भोरें ॥ शुक्काली कहैं शारिकाली विराजें । पढ़ें वेद
मंत्रावली भेद सार्जें ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—स्यों=सहित । भोरें=घोले में । भेदसार्जें=उदात्त
अनुदात्त स्वरों के भेद ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे वहाँ के
षट्गण ।

भावार्थ—इस आश्रम में कहीं तो हंसों सहित हंसिनियाँ घूमती
फिरती हैं जो अपनी सुन्दरता से सबके चित्तों को मोहती
हैं, और वे मोतियों के घोले में ओसबुंदों को चुनने लगती
हैं । कहीं शुक्कशारिकाओं के समूह बैठे हुए वेदमन्त्रों का
पाठ ठीक स्वरभेद से करते हैं ।

अलंकार—ध्रम । उल्लास का पहला भेद ।

मूल—कहैं वृक्ष मूलस्थली तोय पीवें । महामत्त मातंगसर्मा
न छीवें ॥ कहैं विप्र पूजा कहैं देव अर्चा । कहैं योगशिक्षा कहैं
वेदचर्चा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—मूलस्थली=वृक्षों के थाले (आलवाल) । तोय=
पानी । न छीवें=नहीं छूते ।

भावार्थ—कहीं बड़े बड़े मद्रमस्त हाथी वृक्षों के थालों में
अपना हुआ पानी तो पीते हैं, पर वृक्षों की शाखाओं को
तोड़ते फोड़ते नहीं । कहीं विप्रगण पूजन करते हैं, कहीं
देवाचन हो रहा है, कहीं योगशिक्षा और कहीं वेदपाठकी
चर्चा हो रही है ।

मूल—कहूँ साधु पौराणकी गाथ गावैं। कहूँ यज्ञ की शुभ्र शाला बनावैं। कहूँ होम मंत्रादि के धर्म धारैं। कहूँ वैठि कै ब्रह्मविद्या विचारैं ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—पौराणकी=(पौराणिक) पुराणसंबंधी। ब्रह्मविद्या= वेदान्त वा उपनिषद्।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—सुवा ही जहाँ देखिये वक्र रागी। चलै पिप्पलै तिक्ष बुध्दै सभागी ॥ कंचै श्रीफलैपत्र हैं यत्र नाके। सुरामानुरागी सवै राम ही के ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—सुवा=शुक, तोता। वक्ररागी=लालमुखका। चलै=(चल) चंचल। तिक्ष=तीक्षण। सभागी=भाग्यवान। श्रीफलै=कदली, केला। रामा=स्त्री। रामानुरागी=(१) रामके अनुरागी (२) स्त्री के अनुरागी।

नोट—परिसंख्यालंकार समझ कर इस छंद का अर्थ समझिये।

भावार्थ—भरद्वाज जी के आश्रम में कोई भी लाल मुखवाला नहीं है (पान नहीं खाता) यदि कोई है तो केवल तोते ही लाल मुख के हैं। केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं, भाग्यवानों की बुद्धि ही तीक्षण है, और वहाँ केवल कदली-पत्र ही कंपायमान हैं (और कोई किसी से डर कर काँपता नहीं) और रामानुरागी होने के नाते केवल राम के अनुरागी हैं, रामा (स्त्री) के अनुरागी नहीं हैं।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—जहाँ वरिंद छंद बाजानि साजें ।
मयूरै जहाँ नृत्यकारी बिराजें ॥ भरद्वाज बैठे तहाँ विम मोहैं ।
मनो एक ही वक्र लोकेश सोहैं ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—वक्र=मुख । लोकेश=ब्रह्मा ।

भावार्थ—स आश्रममें केवल वादल ही बाजा बजाते हैं,
और केवल मयूर ही नाचते हैं (अर्थात् वहाँ सिवाय वादलों
और मोरों के और कोई बजाने नाचने का शौकान नहीं है)
वहाँ भरद्वाज जी बैठे हुए वेद पुराणादि के पाठद्वारा ब्राह्मणों
को मोहित कर रहे हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो एक
मुख के ब्रह्मा हैं ।

अलंकार—पूर्वाह्न में परिसंख्या, उत्तराह्न में उत्प्रेक्षा से पुष्ट
हीन तद्रूप रूपक ।

(ऋषि-आश्रम की शांतिका वर्णन)

मूल—(लक्ष्मण)—दंडकछंद—'केशोदास' मृगज-बछेरु
चोपै बाघिनीन, घाटत सुरभि बाघबालक वदन है । सिंहन
की सटा चैंचै कलम करनि करि सिंहनको आसन गयंद को
रदन है ॥ फणी के फणन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न
विरोध जहाँ मदन मदन है । घानर फिरत डोरे डोरे अंध
तापसनि शिव को समाज कैथीं ऋषि को सदन है ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—मृगजबछेरु=मृगों के बच्चे । चोपै=दूध पीते हैं ।
सुरभि=गाय । सटा=सिंहकी गर्दन परके बाल । कलम=हाथी
का बच्चा । करनि करि=सबों में । फणी=साँप । मदन=काम ।

डोरे डोर फिरत=डोरिआये फिरते हैं, हाथ पकड़े लिये फिरते हैं । तापसनि=तपस्वियों को ।

भावार्थ—(केशवदास जी लक्ष्मण के मुख से कहलाते हैं कि) इस आश्रम में तो अद्भुत दृश्य दिखलाई पड़ते हैं । दोस्रिये ! मृगों के बच्चे बाघिनियों का दूध पीते हैं, गायें बाघबालक का मुँह चाटती हैं, हाथी के बच्चे अपनी सूँड़ों से सिंहों के बाल खींचते हैं, और सिंह हाथियों के दातों पर आसन जमाये बैठे हैं । साँपों के फणों पर मोर नाचते हैं । यहाँ तो किसी के भी क्रोध, विरोध, मद वा काम नहीं है । बंदर अंधे तपस्वियों के हाथ पकड़े हुए उन्हें रास्ता बताते फिरते हैं (जहाँ वे जाना चाहते हैं वहाँ उन्हें बंदर लिवा जाते हैं) । बड़ा आश्चर्य है, यह भरद्वाज जी का आश्रम है या साक्षात् शिवजी का समाज है ।

नाट—इस छंद में अद्भुत रस है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—जहाँ क्रोमलै बल्कलै वास सोहैं ।
जिन्हें अल्पधी कल्पसाखी विमोहैं ॥ धरे शृंखला दुःख
दाहैं दुरंतै । मनो शंभु जी संग लीन्है अनंतै ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—बल्कलै वास=बल्कल वस्त्र । अल्पधी=कमी की बुद्धि से । कल्पसाखी=कल्प-वृक्ष । शृंखला=भेखला, मौंजी । दुरंत=बहुत बड़े बड़े । अनंत=शेषनाग ।

भावार्थ—इस आशय में कोई भी कोमलंग (सुकुमार) नहीं है, यदि कोई कोमल वस्तु है तो केवल भोजपत्र के बने वल्कलवस्त्र ही हैं। उन वल्कल वस्त्र धारी तपस्वियों को देख कर और अपनेको उनसे कम समझकर कल्पवृक्ष भी विमोहित होते हैं। वे तपस्वीगण केवल एक मौंजी कोपीन धारण किये हुए हैं, पर बड़े बड़े दुःखों को जलाने का सामर्थ्य रखते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो शेष सहित शिव जी हैं।

अलंकार—परिसंख्या, ललितोपमा, उत्प्रेक्षा।

(भरद्वाज मुनि के रूप का वर्णन)

मूल—मालिनीछन्द—प्रशमित रज रोजें हर्षे वर्षा समै से।
विरल जटन शास्त्री स्वर्नदी कूल कैसे ॥ जगमग दरशाई
सुर के अंशु ऐसे। सुरग नरक हता नाम थी राम कैसे ॥ ४२॥

शब्दार्थ—प्रशमित रज=(१) नष्ट हो गई है घूल जिसकी (वर्षा काल के लिये)-(२)दब गया है रजोगुण जिनका।
विरल जटन=(१) प्रगट हैं जड़ें जिसकी (२)खुलें हुए हैं जटन जिनके। शास्त्री=वृक्ष। स्वर्नदी=गंगा। कूल=किनारा। जगमग दरशाई=जगत का मार्ग दिखानेवाले। अंशु=किरण।

भावार्थ—(भरद्वाज जी के मुनिरूप का वर्णन है कि)
भरद्वाज जी का रूप हर्षमय वर्षाकाल के समान है, क्योंकि जैसे वर्षाकाल में रज (घूल) नहीं रहती वैसे ही इनके मन में भी रजोगुण नहीं है (रजोगुण को दया दिया है केवल सतोगुण

का प्रकाश है) और मुनि जी गंगाकिनारे के वृक्ष के समान हैं क्योंकि जैसे नदीतीर के वृक्ष की जड़ें प्रगट रहती हैं वैसेही इनके जटा भी प्रगट हैं । सूर्यकिरण के समान जगमार्ग को दरशानेवाले हैं और रामनाम के समान स्वर्ग और नरक के हंता हैं (रामनाम की बर्कत से जैसे स्वर्गनरक का झगड़ा मिट कर जापक मोक्ष का भागी होता है वैसेही यह भी मोक्षदाता हैं) ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

गहे केशपाशै प्रिया सी बखानो । कँपे शापके ब्रासते गात मानो
मनो चंद्रमा चंद्रिका चारु साजै। जरा सों मिले यों भरद्वाज राजें ॥

शब्दार्थ—केशपाश=वाल । प्रिया=प्रेयसी । जरा=वृद्धावस्था ।

भावार्थ—भरद्वाज जी जरावस्था से युक्त ऐसे राजते हैं, कि जरावस्था ने मुनि के वाले को पकड़ लिया है, जैसे कोई प्रिया कभी कभी अति धृष्ट हो प्यार से पति के केश पकड़ लेती है । केश पकड़ने से मुनि क्रुद्ध होकर शाप न दे बैठे इस डर से मानो उस जरा के गात काँपते हैं (मुनि के अंग जरा से काँपते हैं) और कैसे शोभित हैं, मानो चाँदनी पहने चंद्रमा ही है (शरीर के रोम तक सपेद होगये हैं) ।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—भस्म त्रिपुंडक शोभिजै वरणत बुद्धि उदार ।
मनो त्रिखोता-स्रोत दुति वंदति लगी लिलार ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ— त्रिपुंडक—तीन रेखावाला तिलक जैसा शैबलोग लगाते हैं । त्रिसोता=गंगा ।

भावार्थ—मुनि के मस्तक पर मस्म का त्रिपुंड लगा हुआ है, उसकी शोभा युद्धिमान लोग यों वर्णन करते हैं, मानो गंगा की कांति त्रिघार होकर मस्तक पर लगी हुई मुनि की सेवा करती है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

मनो अंकुराली लसै सत्य कीसी। किधौं वेदविद्या-प्रभा ईं नमी सी
रमै गंग की जोति ज्यौं जन्हु नीकी। चिराजै सदा शोभ दंतावली की
शब्दार्थ—ई=ही । शोभ=शोभा ।

भावार्थ—(दंतावली की शोभा कहते हैं) मुनि की दंतावली की शोभा कैसी जान पड़ती है मानो सत्यकी अंकुरावली है, या वेदविद्या की प्रभा ही है जो मुनि के मुख में अमण सी कर रही है, या जन्हु मुनि के मुख में गंगा की सी ज्योति है (जन्हु ने गंगा को पी लिया था उस समय की ज्योति) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—हरिगीतिका छंद—स्रकुटी विराजति स्वैत मानहु मंत्र
अद्भुत साम के । जिनके विलोकत ही विलात अशेष कार्मुक
काम के ॥ मुख पास पास प्रकाश केशव भौर भीरन साजहाँ ।
जनु साम के शुभ स्वच्छ अक्षर है सपक्ष विराजहाँ ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—साम=सामवेद । विलात=नष्ट हो जाते हैं ।
अशेष=सब । कार्मुक=धनुष । प्रकाश=प्रगट, प्रत्यक्ष । भीरन
साजहीं=एकत्र होकर भीड़ लगाये हुए हैं । सपक्ष=पंखवाले,
पंख सहित ।

भावार्थ—भरद्वाज मुनि की भौहें सफेद हो गई हैं वे ऐसी
जान पड़ती हैं मानो सामवेद के अद्भुत मंत्र हैं । उनका
प्रभाव ऐसा है (जैसा कि सामवेद के मंत्रों का होता है) कि
उनको देखते ही काम के सब धनुष विलीन हो जाते हैं
(काम भी जिन भौहों से डरता है) । उनके मुखसे ऐसी
मनेमोहक वास आती है कि उसकी आशा से प्रत्यक्ष भौर
उनके मुखमंडल पर भीड़ लगाये रहते हैं । वह भौर-भीर
ऐसी जान पड़ती है मानो सामवेद के पवित्र अक्षर पंखधारी
हो कर उनके मुख के सम्मुख ही रहते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—हरिगीतिका—तनु कंबु कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी
उनमानिये । अविनीत इन्द्री निग्रही तिनके निबंधन जानिये ॥
उपवीत उज्जल शोभिजै उर देखि यौ वरणौ सवै । सुर आपगा
तपसिधु में जस सेतश्री दरसै अवै ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—तनु=वारीक । उनमानिये=अनुमान करते हैं ।
अविनीत=हठी, जिद्दी । निग्रही=ताड़न करनेवाले । निबंधन=
बंधन । उपवीत=जनेऊ । सुर आपगा=गंगा । जस=जैसे ।

सेतश्री=सफेद कांति । अर्धे=(अव्यय) जिसमें से कुछ स्वर्च न हुआ हो (सम्पूर्ण) ।

भावार्थ—मरद्वाज मुनि के शंखवत् कंठ में पारीक तीन रेखायें राजती हैं, वे मानो हठी इंद्रियों को ताड़ना देने के लिये उनको बाँधने की रस्तियाँ हैं, हृदय पर सफेद जनेऊ पड़ा हुआ है, उसे देख कर सब लोग यों कहते हैं कि वह जनेऊ ऐसा देख पड़ता है जैसे तपस्विभु में गंगा की सम्पूर्ण सफेद कान्ति (त्रिधाया होकर) दिखाई पड़ती हो ।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—फटिकमाल शुभ शोभिजै उर अपिराज उदार ।
अमल सकल श्रुति धरणमय मनो गिरा को हार ॥ ४८ ॥

भावार्थ—मरद्वाज मुनि के उदार हृदय पर (चौड़े सीने पर) स्फटिक की माला शोभित है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो वेद के समस्त निर्मल अक्षरों का बना हुआ सरस्वती के पहनने का हार है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—मोदक छंद—

हे रस सत्य रस्यो तनु । दंडाहि सौ अयलंघित है मनु ॥

मोदक छंद । देवपुरी कहँ पंथ रच्यौ मुनि ॥ ४९ ॥

मरद्वाज जी का शरीर सत्यरससे रसा हुआ है (सतोगुणमय है—जरा से सब रोग सफेद हों गये ह—

बहुत ही बृद्ध हैं) तो भी उनका मन दंड का अवलंबन किये रहता है (इंद्रियों के निग्रह के लिये—दंड देने के लिये) दंड धारण किये रहते हैं—लाठी या छड़ी लिये रहते हैं । और (सदैव अग्निहोत्रादि किया करते हैं सो) मानो खूब सोच विचार कर अग्नि के वहाने से मुनि जी ने स्वर्ग की सड़क बनादी है—अर्थात् हवनादि का तो वहाना मात्र है, हवन का धुवाँ धुवाँ नहीं है वरन् स्वर्ग की सड़क है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—मोदकछंद—

रूप धरे बड़वानल को जनु । पोषत है पय पानहिं सों तनु ।
क्रोध भुजङ्गमं मंत्र ब्रह्मानहु । मोह महा तम को रबि जानहु ५०

शब्दार्थ—पय=(१) दूध (२) जल ।

भावार्थ—भरद्वाज जी मानो बड़वानल के रूपही हैं, जैसे बड़वानल समुद्र जल से पुष्ट रहती है वैसे ही ये भी दूध ही से अपने तन को पोसते हैं (केवल दुग्धाहार ही करते है) । क्रोधरूपी सर्प के लिये मंत्र ही हैं (क्रोध के विकार को शांत कर देते हैं)—और मोहरूपी महान् अंधकार के लिये सूर्य ही समझो ।

अलंकार—श्लेष और पंरपरित रूपक ।

मूल—मोदकछंद—सत्य—सखा असखा कलि के जनु । पर्वत औषधि सिद्धि के मनु ॥ पाप कलापन के दिनदूपन । देखि प्रणाम कियो जगभूपन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—असखा=शत्रु । दिन=प्रतिदिन । दूपन=नाशक ।
जगमूपन=श्रीराम जी ।

भावार्थ—भरद्वाज जी कैसे देख पड़े मानो सतयुग के मित्र और कलिकाल के शत्रु हैं; और मानो अष्टसिद्धिरूपी ऋषियों के पर्वत हैं; पापसमूहों को नित्य नाशकरनेवाले हैं । ऐसे भरद्वाजजी को देख कर श्री राम जी ने हाथ जोड़ मस्तक नवा प्रणाम किया ।

अलंकार—परंपरित रूपक ।

मूल—पद्मटिकाछंद—

सीता समेत शेषावतार । दंडवत किये ऋषि के अपार ॥
नरं भेष विभीषण.जामवंत । सुग्रीव घालिसुत हनुमंत ॥१२॥

भावार्थ—श्रीराम जी के प्रणाम करने के बाद सीता सहित लक्ष्मणजी ने ऋषि को घड़ी भक्ति से दंडवत प्रणाम किया । तदनंतर नर-भेष धारण किये हुए विभीषण जामवंत, सुग्रीव, अंगद और हनुमान ने भी यथोचित प्रणाम किया ।

मूल—पद्मटिकाछंद—

ऋषिराज करी पूजा अपार । पुनि कुशलप्रश्न पूछी उदार ।
शत्रुप्र भरत कुशली निकेत । सय मित्र मंत्रि मातनि समेत ५३

भावार्थ—फिर श्रीराम जी ने ऋषिराज की बहुत पूजा की, अनेक प्रकार के उपहार भेंट किये । तदनंतर आश्रम की तथा देश और अयोध्या की सैरखुशी का हाल पूछा (निकट होने तथा नित्यप्रति लोगों के गमनागमन से अयोध्या का हाल

ऋषि को मालूम होता रहता था) कि हे महाराज ! भरत शत्रुघ्न, मित्र, मंत्री और माताओं सहित कुशल से तो हैं न ?

मूल—(भरद्वाज)—पद्मटिका छंद—कह कुशल कहों तुम आदि देव । सब जानत हौ संसार भव ॥ दिधि विष्णु रवि ससि उदार । सब पावकादि अंशावतार ॥ ५४ ॥

भावार्थ—भरद्वाज जी ने उत्तर दिया कि हे राम ! तुम तो आदि देव परब्रह्म अंतर्यामी हो, मैं यहाँ की कुशल क्या कहूँ । तुम तो सब संसार का भेद जानते ही हो (कि जहाँ तुम नहीं वहाँ कुशल कैसी ?) । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चंद्र और सब प्रकारकी अग्नि केवल तुम्हारे अंशावतार ही हैं (अर्थात् यही सब देवगण सब की कुशल के हेतु हैं सो तुम्हारे अंश हैं, अतः आपको सब खबर इन्होंने दी ही होगी, मेरे कहने की जरूरत नहीं) ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—पद्मटिका छंद—

ब्रह्मादि सकल परमाणु अंत । तुमही हौ रघुपति अज नतंत ।
अब सकल दान दै पूजि विप्र । पुनि करहु विजै वैकुण्ठ छिप्र ५५ ॥

शब्दार्थ—परमाणु=किसी वस्तु का अति छोटा अंश, जरा ।
अंत=तक । विजय करना=(बिहार और मिथिला का शब्द है) भोजन करना । वैकुण्ठ=(विष्णु, यहाँ) श्री रामजी ।
छिप्र=शीघ्र ।

भावार्थ—ब्रह्मा से लेकर ज़रें तक सब तुम्ही हो । हे राम ! तुम अज और अनंत हो (यद्यपि तुम्हें कर्म का दोष नहीं लग सकता, तथापि रावण ब्राह्मण को मारा है, अतः तुम्हें ब्रह्महत्या का दोष है, अतः) त्रिवेणी स्नान करके प्रायश्चित्त रूप अनेक दान देकर, ब्राह्मणों को पूज कर शुद्ध हो लो, तब हे पवित्रात्मा ! मेरे यहाँ का आतिथ्य स्वीकार करके शीघ्र ही भोजन करो । तात्पर्य यह कि पहले ब्रह्महत्या-पाप से निवृत्त हो लो तब भोजन करके मुझसे बातें करो तब मैं सब बत-लाऊँगा ।

वीसवाँ प्रकाश समाप्त

श्रीरामचन्द्रिका पूर्वाह्न सम्पूर्ण



हिन्दी-साहित्योन्नति के लिये

प्रयत्न करना

प्रत्येक साहित्य-सेवी का

कर्त्तव्य है

अतः अधिक नहीं, केवल स्थायी ग्राहक

बनकर इस कार्यमें हमारी सहायता करें यही

प्रार्थना है। स्थायी ग्राहक बनजाने

से आपको भी विशेष

लाभ होगा।

नियम पृष्ठ पर देखिये।



साहित्य-सेवा-सदन, काशी

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

- (१) प्रवेश-शुल्क धारद आना मात्र देना पड़ता है।
- (२) स्थायी ग्राहकों को इस कार्यालय के समस्त पुष्प प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की एक २ प्रति पीने मूल्य में दी जायगी।
- (३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिये कोई पन्धन नहीं है। किन्तु वर्षभर में कम से कम ३) तीन रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकों लेनी पड़ती हैं।
- (४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेजी जाती है और १५ दिवस पश्चात् उसकी वी. पी. भेजी जाती है। यदि किसी सज्जन की कोई पुस्तक न लेनी हो तो पत्र पीने ही सूचना देनी चाहिये। वी. पी. लौटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पड़ेगा, अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से पृथक् कर दिया जायगा।
- (५) के इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिये एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।
को अल्प पुस्तकों पर भी प्रायः एक जाता है और साहित्य-पुस्तकों की सूचना भी

॥ ग्राहक-नम्बर, पता,

सदनद्वारा प्रकाशित पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थरत्नमाला का प्रथम रत्न

विहारी-सतसई सटीक

विहारी-सतसई को हिन्दी-संसार में काफी धूम मच चुकी है। अतः उसका परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल प्रस्तुत टीकाके विषय में ही बतलाना ठीक होगा। आज २५० वर्षों में इस पुस्तकपर कोई ३५-३६ टीकाएँ बन चुकी हैं। लेकिन वे सभी या तो प्राचीन ढंग की हैं जो समझ ही में मुश्किल से आती हैं या अधूरी हैं।

इसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीनजी ने अर्वाचीन ढंग की पूरी टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नाम से ही कर लें। इसमें विहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकारआदिसभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। स्थान स्थान पर कवि के चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह जगह पर सूचनाएँ दी गई हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीका में आ गई हैं। सरस्वती, शारदा, सौरभ आदि प्रत्रिकाओं ने तथा बड़े २ दिग्गज विद्वानों ने इस टीका की मुककंठ से प्रशंसा की है। इतना सब कुछ होने पर भी इस पौने चार सौ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का मूल्य २) मात्र है। (सजिल्द२॥)

काव्य-ग्रन्थरत्न माला का द्वितीय रत्न
श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देशी प्रसाद 'प्रौढम' । यह यही है जिसकी बाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोड़ और जिसके शीघ्र प्रकाशन के लिये तकाज़ पर रहे । पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही और परस पर छोड़ कर इसके परिचय में केवल यह कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की सम्बन्धिता पौराणिक कथाओंका एक खासा दर्पण है । क्रम, घणन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने किया है । भाषा भी यही सरल है । मूल्य केवला-), कागज़ के संस्करण का ३५ ।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का तृतीय रत्न

महाकवि आचार्य केशवदत्त

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य-शिरोमणि रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा नात होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरिचित हो । हिन्दी-साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है । एक अच्छे साहित्यज्ञ होने के लिये जितनों भी सामग्रियों की आवश्यकता है वे सभी इसमें मौजूद विश्वविद्यालयों-यूनिवर्सिटियों-मा-पाठ्य-पुस्तक-नियत किया गया के लिए शब्द-कोष-युक्त टिप्पणी रामचन्द्रिका का पाठ अन्य शुद्ध है (छप रही है) ।

सदन-ग्रन्थ रत्न-माला का चतुर्थ रत्न

केशव-कौमुदी

प्रथम भाग

यह उपर्युक्त रामचन्द्रिका की टीका है। इस में रामचन्द्रिका के मूल छन्दों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कवि के चमत्कार-निदर्शन के साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा अप्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तालिखित प्रतियों से मिलानकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवान दीन जी हैं। अभी इस भाग में केवल रामचन्द्रिका के २० प्रकाश तक की ही टीका की गई है। बाकी की टीका भी तैयार हो रही है। मूल्य साढ़ पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक का केवल २।), सजिल्द २।।)। राजसंस्करण का जिसमें रंग-चित्र भी हैं, मूल्य ३।।।), सजिल्द ३।)।

रहिमनविलास

यों तो रहीम की कविताओं के संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करण में रहीम-काव्य, मद्दनाष्टक, शृंगार-सोरठ, पाठान्तर आदि दिये गये हैं, जो कि अन्य संस्करणों में नहीं मिलते हैं। का-टिप्पणी भी भरपूर दी गई है, ताकि अर्थ समझने में सुभीता हो। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य १=)।

काव्य-ग्रन्थरत्न माला का द्वितीय रत्न
श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवी प्रसाद 'प्रीतम' । यह वही है जिसकी घाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोड़ रहा और जिसके शीघ्र प्रकाशन के लिये तकाज़े पर तकाज़े रहे । पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही और परख पर छोड़ कर इसके परिचय में केवल इतना कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है । यद्यपि कर्म, वर्णन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने किया है । भाषा भी बड़ी सरल है । मूल्य केवल (—), "काव्य-ग्रन्थरत्न माला" के संस्करण का है ।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का तृतीय रत्न

महाकवि आचार्य केशवचरित

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य-शिरोमणि रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा शान्त होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरिचित हो । हिन्दी-साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है । एक अच्छे साहित्यज्ञ होने के लिये जितनी भी सामग्रियों की आवश्यकता है वे सभी इसमें मौजूद हैं । यह ग्रन्थ बड़े बड़े विश्वविद्यालयों-यूनिवर्सिटियों-साहित्य-सम्मेलनों आदि में पाठ्य-पुस्तक नियत किया गया है । इसमें अर्थ-सरलता के लिए शब्द-कोष-युक्त टिप्पणी भी भरपूर दी गई है । हमारा रामचन्द्रिका का पाठ अन्य सभी संस्करणों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है ।

सदन-ग्रन्थ रत्न-माला का चतुर्थ रत्न

केशव-कौमुदी

प्रथम भाग

यह उपर्युक्त रामचन्द्रिका की टीका है। इस में रामचन्द्र के मूल छन्दों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशयार्थ, नाट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कवि के चमत्कार-निदर्शन के साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा प्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तालिखित प्रतियों से मिलानकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवान दीन जी हैं। अभी इस भाग में केवल रामचन्द्रिका के २० प्रकाश तक की ही टीका की गई है। बाकी की टीका भी तैयार हो रही है। मूल्य साढ़ पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक का केवल २।), सजिल्द २।।), राजसंस्करण का जिसमें रंग-विरंगे चित्र भी हैं, मूल्य २।।।), सजिल्द ३।)।

रहिमनविलास

यों तो रहीम की कविताओं के संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करण रहीम-काव्य, मद्दनाष्टक, धृंगार-सोरठ, पाठान्तर आदि दिये गये हैं, जो कि अन्य संस्करणों में नहीं मिलते हैं। टीका-टिप्पणियाँ भी भरपूर दी गई हैं, ताकि अर्थ समझने में सुभीता हो। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य १=)।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का छठवाँ रत्न

गोस्वामी तुलसीदासकृत

विनय-पत्रिका सटीक

महात्मा तुलसीदासजी की विनयपत्रिका का अब तक कोई सरल तथा वेदान्तों के गूढ़ रहस्य को समझानेवाली टीका के न होने से भगवद्भक्तों तथा अध्येताओं को विशेष कठिनाई पड़ती थी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादक विद्योगी हरिजी ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ की टीका की है। टीका कैसी होगी यह तो आप विद्योगीजी के नाम से ही अनुमान कर लें। इसमें मूल के नीचे शब्दार्थ, भावार्थ, पदच्छेद, प्रसंग आदि दे देने के बाद टिप्पणियों में वेदान्त की बारीकियाँ, अन्तर्-अलंकार, टीका-समाधान तथा प्रसंग-पुष्टि के लिए हिन्दी तथा संस्कृत कवियों के चुने हुए अवतरण भी दिये गये हैं। टीका अपने ढंगकी एक ही है। पृष्ठ-संख्या लगभग ७०० मूल्य २॥१॥

अमरगीत

महात्मा नन्ददासकृत । भरपुर टिप्पणियों सहित ३१

प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ

नन्द-ग्रन्थावली-नन्ददासजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ ।

शुलदस्तप विहारी-विहारी के दोहों पर उत्तम शेर । लेखक

देवीप्रसाद प्रतियम ।

मानकुमारी-अत्युत्तम ऐतिहासिक उपन्यास । मूल लेखक-

धण्डीचरण सेन । द्वितीयावृत्ति ।

अमरगीत-महात्मा सुरदासजी की सर्वोत्कृष्ट रचना ।

सम्पादक, पं० रामचन्द्र शुक्ल ।

